कामशक्ति ॐ भी मुक्ति का मार्ग

भाग- प्रथम

थलचर
जलचर
से मुक्ति के

नभचर
मनुष्ययोनि
सहज उपाय

साधना
विहंगममार्ग
प्रसंग आधारित

धेजन !

क्या आप जानते हैं कि आईन्सटीन के अणुवाद की तरह हमारा स्वाभाविक एवं प्राकृतिक कामवाद भी अणु-अणु में समाया हुआ है ? इस पृथ्वीतत्त्व के जगत में हमारे शिव-परिवार के परिवेश में प्रेम, आस्था, विश्वास के आह्लादित , आनंदित हिलोरे पर, हृदयगह्वर में लोरी गुनगुनाती पत्नी-स्वरूपा शक्ति एवं पति स्वरूप शिव के रूप में हम ही साक्षीभाव में समाज के अभिन्न अंग हैं। विश्वशांति की संस्कारगत नींव तो प्रत्येक समाज के अनुपात की तरह घन एवं ऋण विद्युत में शिव - शक्ति का समागम हो-व्यासदेव,राम,कृष्ण, गौतम, महावीर, कबीर, रजनीश, गाँधी एवं संस्कारवान राजनायक और ऋषि सम्मत समाज को जन्म दे सकता है , जो नाभिक के न्यूक्युलियर की तरह हम मानव समाज को प्रकृतिप्रदत्त प्राप्त है।

ध्रुव

गुरुदेव

[illegible]

धिजन ।

न प्रन ...

दयगह्वर में ...

वरूप शिव के ...

ंग हैं। विश्व...

नुपात की तरह...

मागम हो-व्या...

ँधी एवं संस्का...

न्म दे सकता ...

नव समाज को...

ख१/३२५[

कामशक्ति भी मुक्ति का मार्ग
भाग - प्रथम

कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी
भाग - प्रथम

ख१/३२५·८

काम शक्ति भी मुक्ति का मार्ग
कुण्डलिनी साधना का मूल सिद्धान्त है- सहजता
ॐ का ध्यान एवं काम-कामेश्वरी की प्राकृतिक क्रीड़ा लीला।
ॐ है मंत्र एवं काम-कामेश्वरी की प्रेम पूर्ण प्राकृतिक लीला है तंत्र !
स्थूल शरीर मात्र साधन है एवं साध्यगति सूक्ष्म शरीर द्वारा है !

ध्रुव नारायण

कामशक्ति भी मुक्ति का मार्ग
भाग – प्रथम

सचित्र बर्णन
कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी
भाग प्रथम

प्रकाशन : प्राप्ति

सुरभि प्रकाशन

इन्टरनेशनल

मो०+पो०-बहेड़ी, जिला-दरभंगा (बिहार)

पिन-847105

दूरभाष–(06272) 283232

मो0–09473066260 ध्रुव

09234579759

Email-surabhiprakashan@gmail.com

I.S.B.N. No-978-81-923274-1-9

न्याय क्षेत्र दरभंगा (बिहार)

सर्वाधिकार प्रकाशकाधिन

प्रथम संस्करण 2013

मूल्य : 350/-

कम्प्यूटरीकृत पृष्ट सज्जा :

माणिक

चन्दन प्रिन्टर्स, कटिहार

मो०-8298963515

सहयोग : सिंकू

कटिहार प्रिंटिंग प्रेस, कटिहार

कम्प्यूटरीकृत चित्र सज्जा :

चन्दन-राजीव

आर० के० स्टूडियो, बहेड़ी

मुद्रक :

प्रीतिका आफसेट प्रिन्टर्स, न्यू दिल्ली

मो0- 09810546567

२५९/३२५.८

पाठको

प्रिय्य पाठक !

आचार्य रजनीश ने जरूर दिशा निर्देश दिये हैं !

लेकिन इस कुण्डलिनी जागरण कि पद्धति पर पहली बार प्रायोगिक एवं व्यावहारिक रूप में पुस्तक लिखी जा रही है।

जिस कुण्डलिनी के पवित्र ऊर्जा को प्राप्त करने हेतु ऋषि, महर्षि अपने तप्प के भागीरथ प्रयत्न में कई जन्मों को होम कर डालते हैं !

उस देवत्व रहस्वादी ऊर्जा को हम संतृप्त भावदशा में पारिवारिक एवं सामाजिक गृहस्थी के मायाजाल में रहकर, मानवता का कर्त्तब्य का निर्वाहन करते हुए भी, सहजता में दाम्पत्य जीवन के प्रेमरस द्वारा प्राप्त करना है एवं अधोगमन से सदा के लिए मुक्त हो जाना है !

"आत्मा तो अमर एवं अविनाषी है"!

लेकिन उसका परिभ्रमण अधोगति में नहीं होकर, केवल उर्ध्वगति का योनिगत चक्रवात पकड़, हमें आत्मकेन्द्रीत कर पाये ! काम-कामेश्वरी के व्यवहारिक जीवन में रहते हुए !

भागो मत, जागो !

इस काम-रति के तुम्ही मूल केन्द्रक नहीं हो ! पूरी सृष्टि इस काम-रति में घूम रही है !

दाम्पत्य जीवन के नैसर्गिक प्रेमरस में, काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा के संकलन द्वारा हम 'ऊँ' के कम्पन्न तरंग के रथ पर चढ़कर उर्ध्वगामी होकर, जीवन की सत्य की परिधि में प्रवेश कर पायें एवं संस्कारवान समाज की स्थापना कर पाये ! इस की सम्पूर्ण ब्याख्या तीन भाग पुस्तक में की गयी है।

आशा है !

आप पाठक बृन्द सहजता की भावदशा में आकर, इसके मूलबिन्दु की व्याख्या समझते हुए, अपने मानव जीवन को कृतार्थ करेंगें !

लेखक

ध्रुव

अनुक्रमणिका

क्र०	विषय का नाम	पृष्ठ सं0
1.	अभिमत	01
2.	दो शब्द	07
3.	पत्र	09
4.	सफलता	13
5.	उदगार	14
6.	मनुष्य के आन्तरिक अनुभूति का चित्रण	23
	चित्रों का चित्रण	
7.	**चित्र 1** शिव शक्ति	29
8.	**चित्र 2** शंकर की अभिव्यक्ति में षष्ट्चक्र	35
9.	**चित्र 3** स्थूल, सूक्ष्म कारण का दिग्दर्शन	37
10.	**चित्र 4** नैसर्गिक मिलन	38
11.	काम शक्ति भी मुक्ति का मार्ग	39
12.	काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा का संकलन	47
13.	काम क्रीड़ा द्वारा कुण्डलिनी जागरण	53
14.	कुण्डलिनी शक्ति का मूल केन्द्र कामकेन्द्र	56
15.	काम ''देवता'' कामेश्वरी ''देवालय''	59
16.	कुण्डलिनी जागरण	62
17.	सावधानियाँ	72
18.	कर्मिक गति	80
	चित्रों का चित्रण	
19.	**चित्र 5** स्पर्श समाधि (गौतमतंत्र)	87
20.	**चित्र 6** कुण्डलिनी शक्ति बज्रा योगिनी साधनाक्रम	91
21.	**चित्र 7** भग समाधि	102
22.	**चित्र 8** कुण्डलिनी शक्ति में स्त्रैण एवं पुरूषत्व	105
23.	अहंकार	113
24.	ब्रह्मचर्य	115
25.	सम्भावनाएँ - मन (126)	120-126
26.	लक्ष्मी, सरस्वती, काली जीवनगति	130
27.	स्वछंद आकाश	134

क्र०	विषय का नाम	पृष्ठ सं0
	चित्रों का चित्रण	
28.	**चित्र 9** सूक्ष्म जगत में शब्दब्रह्म	137
29.	**चित्र 10** षोडशी विद्या	145
30.	चित्र 11 क) ऊँ ब्रह्म स्वरूपा	148
31.	ख) मैथुनी ग्राफ	149
32.	ग) कुण्डलिनी शक्ति में ऊँ का आकाश	150
33.	घ) योग की भावदशा (ग्राफ)	151
34.	**चित्र 12** शिवशक्ति तांत्रिक साधना सूत्र	152
35.	नारीत्व की पूर्णता	153
36.	पुत्र-पुत्री प्राप्त करने में स्वर एवं तिथिवार	157
37.	स्त्री-पुरूष में ''स्त्रैन एवं पुरूषत्व''	159
38.	नागलोक	163
39.	शरीर के अंगो एवं ग्रन्थियों के साथ ग्रह एवं चक्रों का सम्बंध	164
40.	सूर्य वलय एवं मनुष्य जीवन	166
41.	वैश्वानर लोक	168
	चित्रों का चित्रण	
42.	**चित्र 13** कुण्डलिनी सिद्धि एवं षट्दल चक्र	170
43.	**चित्र 14** ब्रह्मरंध्र तक षट्चक्र दर्शन एवं	177
44.	**चित्र 15** सम्मोहन से तुर्यावस्था	177
45.	**चित्र 16** स्वशनक्रिया में कुण्डलिनी गति	180
46.	सूक्ष्मलोक	184
47.	रामा, विहंगम मार्ग एवं मातंगी मार्ग	189
48.	श्यामा मार्ग	193
49.	मूर्ति का सिद्धान्त गलत प्रयोग (196)	195-196
50.	ब्राहम्ण, ऋषियों का उत्कृष्ट आविष्कार	198
	चित्रों का चित्रण	
51.	अ) मस्तिष्क का विकाश क्रम	200
52.	चित्र 17 ब) विष्णुरंध्र और न्युरान सेल	202
53.	चित्र 18 नृत्यावस्था मुदितावस्था कुं० साधना	204
54.	चित्र 19 आज्ञाचक्र तपलोक	207

क्र०	विषय का नाम	पृष्ठ सं0
55.	चित्र 20 जन्मचक्र में नारी की प्रधानता	217
56.	क्रियारूप	222
	शैक्षणिक प्रकरण	
57.	स्वप्न	235
58.	प्रसन्न कब होओगे ?	244
59.	अब के बिछुड़े कब मिलोगे ?	246
60.	आयु पर विजय	248
61.	आयु की पूर्णता में जरवी प्रणयाम की भूमिका	264
62.	भग समाधि द्वारा भव मुक्ति	268
63.	जीयो तो ऐसे जीयो जैसे तुम्हारा कुछ भी नही	271
64	अभिभाषन	274
65	उपसंहार	277

शैक्षणिक उद्दरण एवं कविता

1.	पूर्णता	22
2.	आदमी-आदमी को सुहाता नहीं (कविता)	37
3.	चेतना	46
4.	इन्सान (कविता)	52
5.	गुंज	58
6.	यह जीवन किस काम का (कविता)	61
7.	मन	71
8.	वासना	133
9.	क्रोध	179
10.	समाधि	192
11.	बीज	197
12.	अकेली किरण ही बहुत है (कविता)	252
13.	मन (कविता)	257

अभिमत:

''तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात् सम्प्राप्यते मनः
मनसा प्राप्यते ह्यात्मा ह्यात्मापत्त्यानिवर्त्तते'',

संसार में मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाय तो वह निश्चित रूप से अज्ञान के अंधकार से बाहर एक ऐसे संसार में प्रवेश करेगा जहाँ जागृति होगी, संयम होगा और जीवन सफल होने का कर्मक्षेत्र होगा ।

मन और इन्द्रियों को संयमित करने से सत्त्व अर्थात् परिशुद्ध अन्तःकरण की प्राप्ति होती है, इसी सत्त्व से मन की अर्थात् शक्ति का विकास होता है तथा मन से आत्मा की प्राप्ति होती है । आत्मज्ञान प्राप्त होता है । किसी साधना में आत्मज्ञान की प्राप्ति मनुष्य की नियति की प्रथम उपलब्धि होती है ।

इस उपलब्धि के मूल में एकनिष्ट तथा एकांत भाव सन्निहित है । तभी उसका जीवन सफल हो सकता है । प्रो. अक्षय कुमार वन्द्योपाध्याय ने लिखा है- ''मनुष्य अमृत पुत्र है । अमृत ही उसका स्वरूप है । अमृत से ही उसका जन्म हुआ है । अमृत के आश्रय ही उसकी स्थिति, गति और श्रीवृद्धि है ।

अमृत को लक्ष्य करके ही उसकी साधना होती है । अमृत स्वरूप में स्थिति प्राप्त करने में ही उसके मानव-जन्म की सार्थकता है ।'' मृत्यु से अमृत की ओर'- श्री अक्षय कुमार वन्द्योपाध्याय, कल्याण, वर्ष- 15, सं-1, पृष्ट अगस्त-1940)

इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि मानव जीवन की सार्थकता साधना से ही संभव है । अपने-आप को जान लेना ही साधना है । स्वयं को साध लेना ही साधना है । उपनिषद् ग्रंथ में एक प्रश्न उठता है- 'कोह्ऽम्' अर्थात् जो आप समझ रहे हैं, वह हम नहीं है !

तब हम क्या है ?

उत्तर मिलता है- 'सोहम्' हम वही हैं जो वो हैं !

अर्थात् जो ईश्वर है, हम वही हैं !

वह परमात्मा हैं और हम आत्मा !

हम अपने कर्मों से, आचरण से, आत्मा से परमात्मा की दूरी तय कर सकते हैं । हम कितने सामर्थ्यवान हैं, इसका अंदाजा हमें ही नहीं होता है । कबीर ने तो स्पष्ट कहा है 'तेरा साई तुज्झ में' । जिस दिन यह समझदारी मनुष्य में आ

जायेगी, उस दिन मनुष्य साधक हो जायेगा । सब कुछ सह जाने की क्षमता उसमें आ जायेगी । हमारे पूर्वज में ऋषि-मुनियों ने विभिन्न शास्त्रों के माध्यम से यह संकेत दे दिया है ।

पथ का अभाव नहीं! बल्कि पथ को पहचानने की आवश्यकता है । अतः जीवन को समझना तथा अपने-आपको समझना भी साधना ही है, अन्यथा जीवनपर्यंत भटकाव की स्थिति बनी रहेगी । फिर वही बात होगी जो एक शायर ने लिखी थी-

''बस एक कदम उठा था गलत राहे शौक में
मंजिल, तमाम उम्र मुझे ढूंढ़ती रही ।''

इस मंजिल को पाने के लिए जीवन में संयम रखना ही होगा । अपने आप को साधना ही होगा ।

उपर्युक्त भावना को तलाशते हुए ''कुण्डलिनी जागरणः द्वार है गृहस्थी'' के लेखक श्री ध्रुवनारायण जी ने एक ऐसे मार्ग की तलाश की है, जो जन-सामान्य के लिए भी साधना सुगम हो जाये । मनुष्य जब घर-गृहस्थी से बंध जाता है, तब इस व्यूह से निकलना आसान नहीं होता है । महावीर और बुद्ध इसके अपवाद माने जा सकते हैं । परन्तु गार्हस्थ जीवन में भी साधना सफ़ल हो सकती है । ईश्वर ने सांसारिक रचना में स्त्री और पुरुष आवद्ध किया है । फिर एक दूसरे से विलग रहकर, सृष्टि रचना की कामना निर्मूल ही है । जब सृष्टि-रचना ही नहीं तब साधना का औचित्य ही क्या है !

श्री ध्रुव जी ने अनेक तथ्यों एवं वैज्ञानिक साक्ष्यों के आलोक में गार्हस्थ्य जीवन में संलिप्त रहकर भी साधना के मर्म को समझाने की पूरी कोशिश की है । उनकी साधना का आधार स्त्री प्रसंग रहा है । स्त्राी तो सृष्टि की अधिष्ठात्री है । सारा संसार उन्हीं के आँचल में पलता है । स्त्री की महत्ता को स्वीकारते हुए लाला जगदलपुरी ने लिखा है-

''नारी के आँचल में जीवन
उसके आँचल में सुधा वृष्टि
और प्रेम-प्यार में पली सृष्टि ।''

नारी पराशक्ति की मूर्ति है । इस सत्ता को अस्वीकृत तो नहीं ही किया जा सकता है ! चाहे कबीर के मत में नारी 'महाविकार' ही क्यों न हो ! मैं समझता हूँ,

नारी की सार्थकता समाज-सापेक्ष है । उसे कहीं भी पुरुष से अलग रखकर नहीं देखा गया है । फिर 'धर्म-कर्म में सदा संगिनी' रहने वाली नारी को साधना से विलग रखकर अपने अस्तित्व की तलाश करना कहाँ तक युक्ति संगत है ?

श्री ध्रुवजी ने इस पुस्तक में साधना के उन पक्षों को रखा है जो मनुष्य की प्रकृति के अनुरूप है । जिसका प्रयोग कुछ संयम के उपरांत सहज है, तो परिणाम विलक्षण । गार्हस्थ जीवन में कुण्डलिनी जागरण की चेष्टा हमारी साधना में सन्निहित है ।

श्री ध्रुव जी ने अनेक साक्ष्यों के आधार पर इसकी पुष्टि करने की चेष्टा की है । इसे मनुष्य योनि से सदा के लिए मुक्ति का सार्थक प्रयास माना गया है । " यह भोग भी एक तपस्या है" की भावना को अन्तर्निहित कर जन-मन के बीच संचारित करने वाले लेखक की भावना, इस पुस्तक में व्यावहारिक जीवन की संगतियों की ओर ध्यान केन्द्रीत कराती है । यहाँ कुण्डलिनी जागरण के विविध आयामों की पुष्टि शास्त्रागत तथा वैज्ञानिक है ।

साधना के चार सहायक माने गये हैं, यथा- शास्त्र, उत्साह, गुरु और काल । सम्यक रूप से जीवन को सफल बनाने के निमित्त उपर्युक्त तथ्यों को स्वीकारना पड़ता है । अन्यथा इस जीवन को सफल बनाना दुष्कर ही है । आज के दौर में आदमी जिस विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है, वह अत्यंत कष्टसाध्य है । उसका जीवन सुगम नहीं बल्कि दुर्गम ही है ।

इस स्थिति में उसके गार्हस्थ जीवन में साधना के कुछ पल उन्हें संतोष और शांति प्रदान कर सकता है । जिसने गार्हस्थ जीवन को सुगमता से व्यतीत कर लिया है, उसका जीवन सफल हो जाता है । उस सफलता के मूल में कुण्डलिनी-जागरण की महत्ता तो ईश्वरत्व की प्राप्ति के बराबर होती है ।

काम भावना जीवन का आधारभूत तत्व है । फाईड ने मनुष्य में काम भावना की उत्पत्ति बचपन से ही माना है । जब बच्चा अपने पैर और हाथ का अंगूठा चूसने लगता है; अर्थात् मनुष्य से इस भावना को विलग करना शायद संभव नहीं है ।

परन्तु जो साधक उस भावना को अपने अन्तर्मन से निरस्त कर देते हैं, वह विरले ही होते हैं । मैं समझता हूँ संसार के सभी लोग अज्ञानता की अवस्था में काम भावना से प्रेरित रहे हैं । यदि फाईड के सिद्धांत को सत्य माना जाय, तो मन के

गत्यात्मक पहलू के अन्तर्गत ईड (ED) की महिमा का दिग्दर्शन सभी ने किया है । साधक अपनी चेतनावस्था में भले संयमित रहे, लेकिन यौन भावना को कभी न कभी भोगा अवश्य है । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधक पहले इस संसार को भोगता है, फिर भागता है ।

प्राचीन समय में दक्षिण एवं मध्य भारत के कुछ मंदिरों की बाह्य दीवारों पर काम-भावना से प्रेरित मूर्तियों को उत्कीर्ण किया जाता था । कोणार्क और खजुराहो इसके ज्वलंत प्रमाण है । आखिर इसका क्या अभिप्राय है ? जन सामान्य के मन में इस तरह के प्रश्न उठते रहे हैं । मैं समझता हूँ, इन मूर्तियों के माध्यम से यहाँ जीवन की व्याख्या प्रस्तुत हुई है । बचपन, युवा और वृद्धावस्था को रूपायित करनेवाली इन मूर्तियों में जीवन की आश्रम व्यवस्था के साथ, कला साधना की सृजनात्मकता भी देखी जा सकती है ।

संयमी लोग ही उस मंदिर में प्रवेश के अधिकारी हो सकते हैं । यह भी एक प्रतीक के रूप में अंकित है । युवावस्था के गार्हस्थ धर्म को मूर्तियों के माध्यम से दिखाया गया है । काम भावना से प्रेरित भारतीय संस्कृति में कामदेव पूजा; चैत्र शुक्ल द्वादशी को इस व्रत का अनुष्ठान, काम महोत्सव चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को इस व्रत का विधान आदि भी भारतीय संस्कृति में विद्यमान है । इस प्रकार देखा जा सकता है कि काम भावना मनुष्य की अक्षुण्ण भावना है ।

श्री ध्रुव जी ने 'ऊर्जा' शीर्षक आलेख के अन्तर्गत लिखा है कि 'परिधि का मन हमेशा हमारी वासनाओं का मन है; जो मृत्यु के बाद भी हमारी अतृप्त वासनाओं को दूसरे के स्थूल शरीर का आश्रय लेकर तृप्त करने का प्रयास करता रहता है।" कई उदाहरणों के माध्यम से लेखक ने इसकी पुष्टि की है ।

पुस्तक में सात शरीर के सप्त आयामों की चर्चा हुई है । लेखक ने भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनोमय शरीर, आत्म शरीर, ब्रह्ममय शरीर और निर्वाण शरीर के माध्यम से मनुष्य की वाल्यावस्था से निर्वाण तक के मध्य मानवीय विविध चेतनाओं से अवगत कराकर मनुष्य के स्वयं की स्थिति से परिचित कराया है ।

मनुष्य यदि स्वयं को समझ पाता है तो साधना सहज हो जाती है । पुस्तक में विविध माध्यमों से जीवन को समझाने का प्रयास किया गया है । मनुष्य को

ऊर्जावान बनने के लिए साधना के कई स्तर से गुजरना पड़ता है । शरीर में चक्रों का वर्णन कर लेखक ने सिद्धियाँ प्राप्ति के उपाय बताए हैं । ये चक्र-मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धाय चक्र, आज्ञा चक्र, सहस्त्रार चक्र हैं । इस सबकी साधनामय मनोवृत्तियाँ, अपने में अनुपम विशिष्टाओं को अर्न्तनिहित कर सकती है ।

मूलाधार चक्र से नित्यानन्द-परम्परा का फल प्राप्त होता है, पीयूषधारा प्रवाहित होती है । स्वाधिष्ठान चक्र से अहंकार और मोह का विनाश होता है । मणिपुर चक्र से मनुष्य में शक्ति चेतना प्रवाहित होती है । अनाहत चक्र की विशेषता में शक्ति चालन तथा परकाया प्रवेश की क्षमता समाहित है । विशुद्धाय चक्र की साधना से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है । सहस्त्रार से परमपद की प्राप्ति होती है ।

अर्थात् मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है । उसकी क्षमता, साहस आदि असीम हो जाती है । जहाँ शून्य की स्थिति उपस्थित होती है । इन सबके लिए आस्था, विश्वास, साधना, निष्ठा इत्यादि परम गुण का होना अनिवार्य है । चक्रों की सांकेतिक भावनाएँ तथा शक्तियाँ समझ में आ सकती है ।

लेखक ने 'बिष और अमृत' का सम्बंध मनुष्य के मस्तिष्क से जोड़ा है । इस अध्याय में धार्मिकता के साथ वैज्ञानिक तथ्य को भी प्रेषित किया गया है । जिसमें मनुष्य के अनुभव, स्मृति और संस्कार को मापा गया है । लेखक ने संकल्प शक्ति और इच्छा शक्ति की प्रबलता के सम्बंध में लिखा है - ''दृढ़ संकल्प बल की तीव्रता अर्जुन के बाण चलाने की तरह है । अर्जुन ने बाण चलाने में जितनी एकाग्रता दिखाई है, वैसी एकाग्रता अगर हममें हो, तो हमारी संकल्प शक्ति द्वारा प्रभावित इच्छाशक्ति भी किसी के हृदय को चीर सकती है । चाहे भगवान ही सामने क्यों न हों !''

इसका अभिप्राय तो यही है कि मनुष्य की सफलता के लिए इच्छाशक्ति की प्रबलता आवश्यक है । वही मनुष्य अपनी जिन्दगी में कुछ अच्छा कर सकता है ! हमारे यहाँ जितने भी महापुरुष हुए उनकी सफलता के मूल में इच्छाशक्ति की ही प्रधानता रही है । साधना के प्रतिफलन में भी इसका योगदान है ।

इस पुस्तक की यह विशेषता है कि प्रत्येक अध्याय को सहज और सामान्य भाषा में प्रस्तुत किया गया है । अन्यथा साधना, ध्यान और ज्ञान को समझना सहज नहीं होता । परन्तु यहाँ सहजता का बोध होता है । आत्मा को परिभाषित करना

आसान नहीं है । "आत्मा अमर है" में लेखक ने आत्मा और ध्यान के सम्बन्ध में लिखा है- "मतलब अदृश्य शरीर का नाम आत्मा है, जो प्रकाश ऊर्जा संचालित है और दृश्य आत्मा का नाम शरीर है । जो स्थूल है एवं प्राणवायु संचालित है । शरीर स्थिति से दूसरी आत्म स्थिति में पहुँचना ही ध्यान है ।"

पुस्तक में इस तरह के सैकड़ों स्थल हैं ; जहाँ लेखक श्री ध्रुव जी ने साधना के कठिन शब्दों को सहज और सुगम भाषा में पाठकों के सामने रखा है । कहीं-कहीं बोझिलता के भी दर्शन होते है तथापि विषयवस्तु को समझाने का ख्याल रखा गया है । आशा है, पुस्तक में आध्यात्मिक, शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित सामग्रिया पाठकों के जीवन में सहायक सिद्ध होगी ।

बहरहाल मूलतः यह कहा जा सकता है, कि गृहस्थ जीवन में रहकर साधना करना कठिन कार्य नहीं है। इस पुस्तक में यह तथ्य प्रस्तुत किया गया है, कि सांसारिकता को भोगते हुए, काम भावना को लेकर भी, मनुष्य साधना में प्रवृत हो सकता है! यह अपने आप में आश्चर्य की बात लगती है! परन्तु सैद्धांतिक स्तर पर लेखक ने जिस तत्वों की ओर इशारा किया है, वह अपने आप में अद्वितीय है।

इसकी व्याख्या में कहीं-कहीं शब्द भी असमर्थ होते नजर आते हैं। लेकिन प्राचीन समय की लुप्तप्राय काम और साधना के सम्बंध और उससे सम्बंधित विचार धाराओं को प्रकाश में लाने का प्रयास श्री ध्रुव जी ने किया है। साक्ष्य को अनेक चित्रों के माध्यम से भी समझाया गया है।

डॉ. उमेश कुमार (उत्पल)
वरीय व्याख्याता, हिन्दी-विभाग,
बि. म. आदर्श महाविद्यालय,
बटेड़ी (दरभंगा) - 847105.
मो०: +919430827320
9471006602

दो शब्द (आत्मगत)

यह पुस्तक साधु संतों की भावदशा में नहीं लिखी गयी है। ऋषि-मुनियों के लिए यह तप एवं साधना दुरूह एवं दुष्कर है। लेकिन हम सद्गृहस्थ के लिए परम साध्य एवं सहज है। पारिवारिक प्रारूप में भी काम-कामेश्वरी की साधना कर ईश्वरीय आकाश को छू लेने के सहज उपाय हैं। जहाँ से शक्तिरूपा ईश्वर नैसर्गिक प्रेम द्वारा परम साध्य एवं प्राप्य है। साधु-संत तो सांसारिक कर्तव्यों से भागकर ही अपने को मुक्त करना चाते हैं। जो सम्भव है ही नहीं !

जिस वस्तु को हम जितना छोड़ना चाहते हैं, वह हमें उतनी मजबूती से मनःशक्ति के रूप में पकड़ती है। जबतक मानसिक पकड़ शान्त नहीं होगी, तबतक न सहजता आयेगी और न संकल्पबल सधेगा।

कामुक्ता की भावदशा तो सृष्टि का मूल है एवं मूलाधार से शुरू होती है, जो कामवासना का मूलकेन्द्र है। यह पुस्तक भोगवाद से तृप्त होकर थलचर, जलचर, नभचर की सभी योनियों से मुक्त होने के सिद्धांत पर लिखी गयी है।

इस काम-कामेश्वरी की लीला सें तृप्त होते हुए, धन-वैभव, राजप्रासाद की भिभिक्षा शान्त करते हुए, सिद्धलोक एवं ऋषिलोक के चतुर्थ आयामी योनियों के परिधिगत चक्रवात में आ जाना है।

हम साम्यरस के अर्द्धनारीश्वर शिव-शक्ति की केन्द्रीभूत भावदशा में, ॐ के सप्त आयामी कम्पन्न क्षेत्र में आ सकते हैं। जहां से निर्वाण से ऊपर की गति दिव्यलोक की है। दक्षिण के कई मंदिरों में, जैसे जगन्नाथपुरी, कोणार्क, खजुराहो वगैरह में इसी भोगवाद का चित्रण ऋषि-मुनियों एवं देवियों की रति क्रिया में लिप्त रह कर दिखलाया गया है। हम अपनी रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास में उन सूत्रों की गम्भीरता एवं भाव भंगिमा को नहीं समझ पा रहे हैं।

कई धार्मिक समुदाय में नग्नता का लक्षण ओढ़कर साधु-संत, नग्न भाव में अपनी साधना को प्रदर्शित कर रहे हैं। लेकिन हमारा समाज तो कामुकता एवं वासना से अनुप्राणित हो रहा है। अतः उनपर मानसिक प्रतिक्रियाओं का उथल-पुथल तो स्वाभाविक ही है। वो कितना भी आस्थावान हों, विनीत हों लेकिन यह नग्न भाग जो कामकला की अधोगति का मुख्य शारीरिक प्रभाग है, अपनी कामुक ऊर्जा के दमित होने से, अवचेतन मन में मानसिक विकार पैदा करेगा ही !

क्योंकि कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में ही अधोगति की सारी ऊर्जा उर्ध्वगति पकड़ती है। साधु संतों की भावदशा में यह कुण्डलिनी जागरण, हजार में नहीं बल्कि लाखों, साधु-संतों में कुछेक में ही हो सकता है! नग्न चित्रों में कामुकता का कोई विकिरण नहीं होता है। वह तो हमारी मानसिक दशा का उत्कर्षण है !

लेकिन नग्नभाव में स्त्री-पुरूष को देखने में अधोगति का कामक्षेत्र का आकर्षण तो रहता ही है! नग्नता तो बच्चों में निर्मलता एवं सहजता की भावदशा है।

क्या ?

साधु संत भी इस भावदशा में आ पाते हैं!

दुनिया में हजारो धर्म की सीमित परिधि है एवं लाखो जातियां हैं। लेकिन जातिवाद एवं धार्मिक परिवेश से ऊपर काम का तो विश्व में स्वक्षंद आकाश है। ध्यानस्थ अन्तर मैथुनी गति से ही तृप्ति की पूर्णात्मक भावदशा है एवं मुक्ति का कारण है।

बन्धुओं,

इस पुस्तक के आवरण चित्र एवं आन्तरिक सिद्धान्त को गहराई से समझ कर ही, भोगवाद से तृप्त होते हुए "कुण्डलिनी जागरण द्वारा है गृहस्थी" की साधना कर वैश्वानर लोक एवं देवलोक की कामना कर, स्वयं देवस्वरूपा होकर लेखक को कृतार्थ करें!

शुभेच्छू

ध्रुव नारायण

सूर्य चक्र

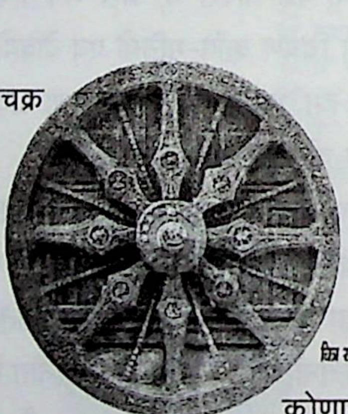

चित्र संख्या- 30

कोणार्क

२४१/३२५·I

पत्र

ॐ

पूज्यवर गुरूदेव

चरण स्पर्श।

टेलीफोन पर ऊँ का अनहद नाद सुनकर आत्म विमोहित हुआ। लेकिन बाबा साहब केवल संगीत का रूप लिए ''ऊँ गुरू'' का शब्द कान में श्रवण, शहद के रूप में लेकर हृदय को आह्लादित करने से हम आत्म विमोहित हो रहे हैं। तो यह ईश्वर के और हमारे बीच पड़े झीने मलमल के जैसे पर्दे को नहीं गिरा पाएगा !

हमारा हृदय तो कोई भी भावनात्मक लोरी सुनकर आत्म विमोदित हो जाता है। लेकिन क्या हृदय भावना का केन्द्र है?

मेरे अन्वेषण में तो हृदय केवल शरीर संचालक के लिए एक पम्प स्टेशन है। आत्मा भी जरूर हृदय गहवर में ही पोस्टक दाना के बराबर बहुत छोटे ग्लैन्डस में बैठी है। जहां से वह अपनी ऊर्जा हमारे मानव जीवन को चलाने के लिए चित्त्शक्ति को देती है और चित्त्शक्ति, मनःशक्ति को संचालित करती है। जो मन कुछ क्षण भी बैठने को तैयार नहीं है।

एक पर एक वह अपने आज्ञाचक्र के सिंहासन पर बैठकर हमारे नस नाड़ियों पर बैठे कर्मबंधन एवं रस रसायन का केन्द्र सत्तर ग्लैन्डस, जो सप्त धातु मूलाधार पर निर्मित होती है, वह 150 गांठ कर्मबंधन जो मरूआ दाने के बराबर हमारे शरीर में फैले सोलह मुख्य नाड़ी एवं सोलह हजार एक सौ आठ उपनाड़ी एवं सभी नाड़ियों के जोड़ में बहत्तर हजार महीन जाल की तरह फैले शरीर रूपी ब्रहमाण्ड में, अपना आदेश चलाती रहती है। इनका संचालन कुछ ग्रह नक्षत्रों से भी होता रहता है।

लेकिन हमारा प्रयोग तो कुण्डलिनी जागरण द्वार गृहस्थी के लिए है, जो भावना के केन्द्र मूलाधार से खुलता है। जहां करूणा का सागर हिलोरे मार रहा है।

हृदय में शरीर का अशुद्ध रक्त आता है और जो **"धप"** शब्द करके भल्व खोलकर हृदय में प्रवेश करता है एवं **"ठप"** शब्द करके फिर हृदय के भल्व को बन्द करके शरीर रूपी ब्रहमाण्ड में अपनी यात्रा शुरू कर देता है।

हृदय गह्वर में काम, क्रोध, लोभ, मोह के परिधिगत चक्र के जेल में बैठी

आत्मा तो निराकार भाव से बैठी है लेकिन दस इन्द्रियों से जुड़े काम, क्रोध, लोभ, मोह के परिधिगत चक्रवात से अपने कर्मो, एवं कर्मबंधन के अनुसार एग्यारहवें इन्द्रीय मन को संचालित कर रही है।

हम समझते हैं कि मैं अपना राज्य चला रहा हूँ। लेकिन राज्य तो दोनों बिभू का राजा मन चला रहा है। जो ग्रह, नक्षत्रों से भी ज्यादा प्रभावित हो रहा है।

द्वैत तक हमारी आत्मा हमारे हृदय गह्वर में बैठी है। लेकिन जबही हम चौथे शरीर से ऊपर अपने अनहद नाद "ऊँ" के कम्पन क्षेत्र में आते हैं। तो आत्मा तो चित्रणी नाड़ी के द्वारा जाकर गुहानी नाड़ी, जिससे सुषुप्ना द्वारा कुण्डलिनी रूपी सर्पनी ब्रह्मरंध्र में बैठे विष्णु रूपी ब्रह्मस्वरूपा 1008 बाल से भी पतले मटर के दाने के बराबर ब्रह्मरंध से मिलकर हमारी आत्मा एकाकार हो जाती है और साधक के लिए केवल हृदय का धड़कना ही मूल्यवान नहीं रह जाता। वह तो प्राण शक्ति के ऊर्जा संचालन का कम्पन क्षेत्र है। जो ब्रह्माण्ड रूपी पूरे शरीर को ऊर्जा देती रहती है।

तो "ऊँ गुरू" का अनहद नाद हम किस क्रियारूप में अपने भावना के मूल बिन्दु मूलाधार पर कुण्डलिनी रूपी सर्पनी को विमोहित करने के लिए करते है, यह बहुत ही महत्वपूर्ण है।

"ऊँ गुरू" के हर अनहद नाद के ताल पर श्रृंखलाबद्ध क्या प्रतिक्रिया चल रही है। यह तो किसी का व्यक्तिगत विषय है।

रामायण की कथानक में सर्वविदित है कि रावण अथवा दशानन जो दस इन्द्रीय और एकादस मन का प्रतीक है। जब नहीं मारा जा रहा था तो विभिषण ने राज खोला, की रावण अपनी साधना द्वारा अपने आत्मा को अधोगति में नाभि कुण्ड पर ले लाया है, तो प्राण शक्ति भी नाभि कुण्ड पर केन्द्रित हो रहा है। इसलिए नाभि कुण्ड पर बाण मारकर जबतक उसके अमृत को नहीं जलाया जायेगा, जहाँ आत्मा बैठी है; तबतक रावण नहीं मरेगा। फिर राम को अगस्त्य मुनि से संकल्पित मंत्र लेकर अपने बाण पर आवाह्न कर रावण के नाभिकुण्ड पर बाण मारने पर रावण की मृत्यु हुई।

तांत्रिक साधक चौथे शरीर से ऊपर जा नहीं सकता। रावण चौथे शरीर का बहुत मायावी साधक था। कामना थी कि मैं राम के द्वारा मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग

लोक को जाऊँ या मोक्ष पाऊँ।

निर्भीकता, योद्धाओं को ज्यादा प्रबल रूप से कुण्डलिनी की अग्नि को जलाकर चौथे शरीर तक खींच लेती है । जो नाभिकुण्ड पर संकल्पशक्ति के कारण ही सम्भव हो पाता है। और योद्धा भी युद्ध भूमि में मरणोपरान्त स्वर्गारोहण को जाते हैं।

वैसे राम रावण का युद्ध तो हमेशा हमारे विवेक और अविवेक क्रूरता और प्रेम के रूप में द्वन्द्वात्मक युद्ध के रूप में आज्ञाचक्र पर बैठे, मन में चलता रहता है। हमारी विचारधारा दया, प्रेम, शान्ति ही तो, विवेक रूपी राम है तथा क्रोध हिंसा और अशान्ति ही तो रावण है। सवाल है दोनों के द्वन्द्व में किसकी जीत होती है ? विवेक की या अविवेक की।

हम अपने बच्चों का नामकरण राम के नाम का जरूर रखना चाहते हैं। लेकिन रावण के नाम का कोई नामकरण नहीं करता।

राम मनुष्य के उच्चतम मानवता के गुण से भरे पाये गये। लेकिन रावण मानवता के क्रूरतम हिंसक एवं अभिमानी के रूप में पाया गया।

लेकिन हमारे मूलाधार का करूणा और प्रेम, का केन्द्र भी रावण की तरह अभिमानी हिंसक जैसे मल-मूत्र के नर्क के बीच है। लेकिन रक्त का संचालन जो हृदय के पम्प स्टेशन से है। रक्त तो शुद्धतम रूप लिए नस, नाड़ियों द्वारा मूलाधार पर भी आती है।

इसलिए योग के किसी साधना के क्रम में हमें भावनात्मक गंगा के बहाव को मूलाधार तक ले जाने का प्रयोग, हमें बहुत जल्द कुण्डलिनी जागरण में सहयोग दे सकता है।

स्त्री का मनोमय शरीर बहुत शस्क्त होता है। जो हृदय से बहुत जुड़ाव रखता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो कई माह तक उसका पोषण स्तनपान करने से होता है। इसलिए कोई भी स्त्री-पुरूष का जुड़ाव, माता के स्तनपान करने के कारण बच्चों के सयाने हो जाने तक भी ममत्व से काफी जुड़ा होता है। अगर माता पिता में कोई आतंरिक या बाहरी द्वन्द्व की समस्या आती है, तो युवा हो जाने के बावजूद वह माता के पक्ष में खड़ा हो जाता है। पिता का साथ नहीं दे पाता। लेकिन यह तो मनुष्य की बाहरी स्थिति है।

आंतरिक स्थिति की जो भी अध्यात्मिक कदम हो मूलाधार पर भाव राज्य में कैसे प्रवेश करे इसका होना चाहिए। चूंकि मूलाधार करूणा, स्वाधिष्ठान मैत्री, आधा नाभि कुण्ड मुदिता का केन्द्र है एवं सबों पर व्यवहारिक जीवन में कामुकता की उर्जा प्राणशक्ति से ज्यादा उपलब्ध हो रही है। जो इस सृष्टि की कर्मबन्धन को चलाने का कारण है।

हमें इन्हीं केन्द्रों से प्रवेश कर ब्रह्मरंध्र तक जाकर ब्रह्मस्वरूपा हो जाना है। जबतक हम इनके भावराज्य में प्रवेश करने का मार्ग नहीं ढूंढेंगे, तब तक आत्मस्वरूपा या ब्रह्मस्वरूपा कैसे हो पायेंगे।

हम हृदय की धड़कन को बराबर सुन रहे हैं। लेकिन **"सम्बोधि"** जो बराबर प्रकृति में रव कर रहा है और हमारे शरीर के अध्यात्मिक केन्द्रों एवं चक्रों को प्राण ऊर्जा दे रहा है। उसको क्यों नहीं सुन रहे?

वो हमें हमारी चेतना में हमारे अन्दर ही बैठी हमारे रेणु में अपनी झंकार छोड़ रहा है। हम क्यों नहीं सुनना चाहते?

हमारे अन्दर ही एक झीने मलमल के पर्दे की तरह पर्दा डाले बैठा है जो हमारे साम्यावस्था में आने पर स्वयं गिर जाता है और अपने में समाहित कर एकाकार हो जाता है। उस झीने मलमल के पीछे बैठे रेणू में ईश्वर में हम अपनी भावना के प्रवेग से क्यों नहीं अन्दर जाकर **सम्बोधी** के रव में रव मिलाकर एकाकार हो जाना चाहते?

गौतम और महावीर, मीरा की तरह नाचना चाहे तो सम्भव नहीं है और मीरा नग्न हो महावीर की तरह सतज्भाव से बैठ जाय तो यह भी सम्भव नहीं है। यह तो उनकी अपनी भावदशा है जो किस तरह प्रेम करूणा, दया, क्षमा और मुदिता का रूप धारण करती है।

पुस्तक में मैने क्रियारूप-1 से लेकर 14 तक हर क्रिया में भावनात्मक ध्यान का स्वरूप रखने का प्रयास किया है।

मुदिता आकांक्षी

शिष्य

ध्रुवनारायण

सफलता

चौसठ वर्ष की आयु में भी सफलता का प्रतिफल मेरी पत्नी का दृढ़संकल्प बल एवं निष्ठावान होकर दिव्य आभामंडल लिए गायत्री मंत्र के जाप से तप की ऊर्जा जमा हो रही थी उसका रूपान्तरण है। क्योंकि पाप या पुण्य की ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती है, उसका रूपान्तरण होता है।

गुरू मंत्र ऊँ की उच्चतम् कम्पन्न क्षेत्र की साधना, प्राणाकर्षण, कपालभाँती भ्रामरी एवं उदगित प्राणायाम के ऊर्जा क्षेत्र में करने से संकल्प बल सधता है एवं हम ऊर्जावान हो जाते हैं।

प्रकृति में कोई भी ऊर्जा बिनष्ट होने के उपाय नहीं हैं। एक रेत का कण भी चाहें एटमबम के बिस्फोट से नष्ट कर दें, तो रेत कण असंख्य टुकड़ों में टूट कर ऊर्जा का रूपान्तरण कर लेगा।

बाल्मिकि मरा-मरा जपते राम की भक्ति को उपलब्ध होकर आत्मस्वरूपा हो गये। मरा-मरा की ऊर्जा भी बिनष्ट नहीं हो पायी। हम भी अनन्त यात्रा पर कभी मरते नहीं, वस्त्र की तरह शरीर बदलते रहते हैं। मरने के कोई उपाय ही नहीं हैं। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर तो प्रलयकाल तक नहीं मरता। हम मुट्ठी बाँधे केवल मनुष्य जन्म की उपलब्धियाँ लेकर भूमि को स्पर्श करते है।

लेकिन कुण्डलिनी जागरण हमें ब्यालिस लाख ऊपर की योनि की श्रृंखला की उपलब्धि प्रदान करती है और हम हाथ खोले केवल भौतिक शरीर को छोड़ते हैं। लेकिन सूक्ष्म और कारण शरीर अभूतपूर्व पश्यन्ति और पराबाणी की उपलब्धियाँ लेते हुए दिव्यलोक की श्रृखला से जुड़ जाती है।

कामऊर्जा या साधना से प्राप्त ऊर्जा भी नष्ट करने के उपाय नही हैं। या तो उसकी दासता स्वीकार करे, या उसकी ऊर्जा को रूपान्तरित कर मनुष्य जीवन को परमउत्कर्ष से भर दें।

ऊँ में स्वयं अ+ऊ+म = ऊँ का ब्रह्माणडीय मैथुन हो जाता है एवं उँच्चतम कम्पन्न पैदा कर लक्ष्य बिन्दु को भेद डालता है। दोनों के संकलित ऊर्जा के मैथुनी चक्र एवं पूर्वजन्म के संस्कार का प्रतिफल कुण्डलिनी जागरण है। कोई भी मंत्र विखंडित होते चलती है। ध्यान और सहजता सफलता की मूलभित्ती है।

उद्‌गार

जबतक संसार में चाहत रहेगी मन को बिल्कुल साम्यावस्था में लाना मुश्किल है।

दोनों छोर से मध्य में जाया जा सकता है। कुण्डलिनी जागरण में ऋषि, महात्मा तो शुद्धतम रूप के रास्ते से अन्तरजगत का दर्शन करते हुए शून्य में जा पाये हैं, लेकिन उसकी संख्या करोड़ो साधक में एक की हो सकती है।

गृहस्थाश्रम के द्वार से जाने में हजार में दस साधक को अन्तरदर्शन करते हुए शून्य में जाकर परमब्रह्म में एकाकार होने के सिद्धान्त हैं। चूँकि सृष्टि ही काम-कामेश्वरी के सिद्धान्त पर बना है। उस सूत्र को हम बारीकी से समझकर साधनारत होते हैं, तो हमारा मानव जीवन धन्य हो जाता है। चूँकि मानव तन के साधना से ही हम ऋषि, मुनियों के संस्कार में जा सकते हैं।

पुस्तक में सम्मोहन के ऊपर भी संक्षिप्त विवरण दिया गया है। जिसके साधना से भी मानव अन्तरजगत के दर्शन में सक्षम हो सकता है। सम्मोहन तो बहिर्मुखी साधना है लेकिन इसको अन्तर्मुखी करने पर हजार में सौं साधक अपने अन्तरजगत को जानते हुए अपने या दूसरे के पूर्व जन्म को आसानी से अपने या माध्यम के दृष्टिपटल पर ले सकते हैं।

ऋषि हमेशा जगत को नया विज्ञान देते आये हैं और मुनि मनन कर हमें जगत एवं अन्तरजगत का सिद्धान्त सामने रखते आये हैं।

सवाल उठता है कि, प्रतिदिन देश-विदेश में लाखों पंडाल, चर्च, गिरजाघर, मंदिर, मस्जिद में आस्था और विश्वास से अर्चना किये गये प्रार्थना से मनुष्य क्यों नहीं परम उत्कर्ष तक पहुँच पा रहें हैं ?

भौतिक और आणविक ज्ञान तो इस चेतन-अचेतन संसार की प्रगति के लिए परम उत्कर्ष पर है। लेकिन चेतना के जिस छोर पर हमें पहुँचना है, वह बिल्कुल अछूता पड़ रहा है।

आज दुनिया में संत, पादरी, महात्मा रूपया और धन सम्पत्ति की होड़ में सबसे आगे जा रहे हैं। धनवान, श्रद्धावान लोग अंधविश्वास में अपनी सम्पदा को लुटाकर शान्ति चाहते हैं। जो अन्तरजगत के आनन्द के झरना में प्रवेश किये बगैर सम्भव नहीं है।

कितने संत हमें आसन प्राणायाम द्वारा रोग थेरापी दे रहे हैं। बहुत सारे संत हमें प्रेम का संदेश दे, जलते तबे पर कुछ प्यार और प्रेम का संदेश देकर प्रेम थेरापी दे रहे हैं। कुछ संतों, ऋषियों के सारे प्रतिपादित सूत्रो के माध्यम से हमें योग थेरापी दी जा रही हैं। **लेकिन जो सिद्धान्त सामने क्रियारूप में रख रहा हूँ यह व्योम तक जाने की मुक्ति थेरापी है।**

जो खोई हुई कुण्डलिनी जागरणा के साधना का व्यवहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, वह हिन्दू मुस्लिम, सिख, ईसाई,जैन, बौद्ध किसी भी सम्प्रदाय के धर्म आँकलन से ऊपर समझ में आती है।

चूँकि ध्यान और कामकामेश्वरी तो इस सार्वभौम सत्ता को चलाने के लिए केन्द्र का कील है।

''ऊँ'' तो निराकार ब्रह्म में जाने का परमपथ है। जो सभी धर्मों में किसी न किसी शब्द में रब करता है। हिन्दू अगर **ऊँ** उच्चारण करते हैं, तो मोहम्मडन **आमीन** उच्चारण करते हैं। अंग्रेज **ओमनी पोटेन्ट** उच्चरण करते हैं। ध्वनियों का फ्रिक्वेन्शी तो पूरे मानव जगत में केन्द्र तक जाने का माध्यम है।

याद रखें बिना केन्द्र का ब्रह्माण्ड में कुछ भी नहीं है। आश्चर्य तो समझ में आती है, कि ब्रह्माण्ड में अणु, परमाणु, चेतन, अचेतन सभी परिधि के केन्द्र के खिचाव में चक्कर काट रहे हैं। उससे भी आश्चर्य यह है कि इस मानव के छोटे तन में मूलाधार पर अगम अनन्त ब्रह्माण्ड का चेतन, अचेतन शक्ति का अंतरिक्ष अनन्त छोर तक दृश्यमान है। जिसका फैलाव सहस्त्रार से ऊपर ''ऊँ'' के (36) फ्रिक्वेन्शी तक है।

केन्द्र तो चेतन और दिव्यराज का प्रतीक है। लेकिन परिधि तो हमेशा टूटती रहेगी। चाँद, सूरज, ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाश गंगा सभी नष्ट बिनष्ट एवं निमार्ण, जीवन्त होते रहेंगे।

उस परमपद की तो कल्पना ही की जा सकती है। जो दिव्यराज के आनन्द का झरना है। परिधि का निर्माण तो कर्मफल के कर्मबंधन द्वारा होता रहेगा। लेकिन केन्द्र तो अनित्य है, कभी नहीं टूटेगी। सृष्टि बनती बिगड़ती रहेगी।

किसी भी बिन्दुओं को हजार भाग में काटे तो, दोनों छोर और मध्य तो रहेगा ही। एक अणु भी हाइड्रोजन का 1960 वाँ भाग है। जबकि हाईड्रोजन को

भी नंगी आंखों से देखा नहीं जा सकता। उस परमाणु में भी इलेक्ट्रोन (–) विद्युत प्रोटोन (+) विद्युत और मध्य में न्यूट्रॉन है, जो निष्क्रिय है। लेकिन क्वान्टम के सिद्धान्त में अगर उस मध्य के निष्क्रिय न्यूक्लियर को तोड़ा जाय, तो परमाणु बम से अपार क्षमता वाले बिनाशक बम तैयार किये जा सकते हैं। अगर सेकेण्ड के हजारवाँ भाग तक टूटता है, तो हजार तरह की नई उपलब्धियाँ भी प्राप्त हो सकती है। उस न्यूक्लियर में भी ऋण (-) विद्यूत और धन (+) विद्युत अपार क्षमता के साथ विद्यमान है और (–) ऋण विद्युत ज्यादा प्रबल है।

शक्ति तो हर ऐटम या ब्रह्माण्ड के छोड़ तक फैली है। जहाँ दो पत्थर भी टकरा दे तो आग के रूप में शक्ति निकल आती है।

किसी भी रूप में ध्यान और सृष्टि संचालन में काम कामेश्वरी की परिस्थिति, हर मनुष्य में हर परिस्थिति में मौजूद है।

ध्यान और काम कामेश्वरी का क्रीड़ा जैसी शक्ति, हर एटम में मौजूद है। वैसे ही एटम रूपी हर मानव में मौजूद है। एवं कुण्डलिनी की शक्ति जो आत्मशक्ति 186000 मील प्रति सेकन्ड है, उससे दुगुना के लगभग 345000 मील प्रति सेकेण्ड के दर से पूरे ब्रह्माण्ड में सक्रिय है। जरूरत है कुण्डलिनी के सिद्धान्त को समझकर, अपने घर के देवालय से आराध्य की साधना कर इस मानव तन को परमगति देने की।

स्त्री ऋण विद्युत है और शक्तिरूपा सृष्टि के संचालन में ज्यादा प्रबल है।

महावीर के निर्माण में जाने की स्थिति कों सहस्त्र दल की स्थिति में 1008 कमलदल पर दर्शाया गया है। उसी तरह मुख्य पृष्ठ पर काम कामेश्वरी के व्यष्टि से समष्टि में 1008 कमलदल तक साधना के स्तर को दर्शाया गया है। और इस रास्ते से भी सहस्त्रार के सहस्त्र-दल तक की साधना कर मोक्ष के रास्ते पर जाने का सिद्धान्त, इस छोटी सी पुस्तक में व्यवहारिक रूप में दर्शाने का प्रयास किया है।

एटम के दोनों छोड़ की तरह दोनो रास्ते से केन्द्र तक जाने के सिद्धान्त हैं। पोल धन विद़्युत (+) के रास्ते से अगर महावीर मोक्ष पा सकते हैं, तो हम गृहस्थ भी ऋण विद्युत (-) के काम कामेश्वरी के विशुद्ध रूप द्वारा मोक्ष पा सकते हैं। लेकिन मोक्ष चाहता कौन है? वह तो काल राज्य से दिव्यराज्य में प्रवेश कर जाने का रास्ता है।

साधना के स्तर से, जब पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नितत्व, वायु तत्व का भार साँसों पर कम हो जाता है, तो साधक की स्थिति साम्यावस्था की हो जाती है। उसके संकल्पबल में इतनी क्षमता चली आती है कि चाहे जैसा श्राप या आशीर्वाद साधक दे दे, वह अर्जुन की बाण की तरह केन्द्र पर ही लगती है एवं फलीभूत हो जाती है। साधक सृष्टि के नियन्ता के श्रेणी में चला आता है।

स्त्रियों को प्रकृति ने वैसे ही पूर्ण, मृदुभाषिणी एवं प्रियदर्शनी बनाया है। लेकिन उनके स्वभाव, रूपगर्विता होने से, आज पूरे दुनियाँ में ब्यूटीपार्लर को जन्म दे दिया है। **जबकि इन दिव्य देवी स्वरूपा स्त्रियों में पति के हृदय में बसने का सौन्दर्य चाहिए। जो रूपगर्विता नहीं, प्रेम गर्विता होने का गौरब, परिवार, समाज एवं देश को दे पायें।**

ताकि इस कुण्डलिनी जागरण के सिद्धान्त से प्रज्वलित अग्नि के नीचे के कर्मबंधन से जुड़े योनियों का दरवाजा बन्दकर- विवेकानन्द, सुभाषचन्द्र बोस, महात्मागाँधी, गौतम, महावीर, जिसेस क्राइस्ट, मोहम्मद, रजनीश जैसे उच्च्व आत्माओं के आगमन की नींव पति-पत्नी के प्रेमसागर रूपी काम कामेश्वरी के समुद्र मथन से पड़ता रहे। चूँकि प्रकृति का सैद्धान्तिक विधान है कि जिस केन्द्र से मृत्यु होती है, उसी केन्द्र से फिर वे महान आत्माएं जन्म ले पाती है। जो आधार विशुद्ध प्रेमप्रसंग के हिलौरे के बगैर सम्भव नहीं है।

भूः (मूलाधार) भूवः (स्वाधिष्ठान)
(थलचर) (जलचर)
स्वः (माणीपुर) मह (अनाहत)
नभचर मनुष्य योनि

मनुष्य योनि के पूर्णता तक तो द्वैत है। जहाँतक काम कामेश्वरी के विशुद्धतम रूप से काम क्रीड़ा के महत्व द्वारा आवागमन की श्रृंखला हमारे कर्मबंधन में है। लेकिन उससे ऊपर तो अद्वैत है, जहाँ से हमारे "ऊँ" के ध्यान विधा का स्थिरीकरण है एवं आत्मदर्शन के स्वरूप को समझते हुए ब्रह्मलीन होकर हमें अर्द्धनारीश्वर हो जाना है।

वैभव से वैभवशाली राज्य और राज्यप्रसाद आज समय के थपेड़े में खण्डहर में तबदील हो चुके हैं।

अच्छे से अच्छे ऋषि-मुनि हजारों रास्तों से मानवता के उच्चतर शिखर पर पहुँच चुके हैं। हमारे सप्तऋषि आज व्योम के नक्षत्रमंडल में नक्षत्रों के रूप में दृश्यमान हो रहे हैं। भक्त ध्रुव भी ऋषि मंडल के अधिष्ठाता के रूप में ध्रुव तारा के रूप में रात्री के अन्तिम प्रहर में उत्तर-पूरब के कोने में स्पष्ट अवस्थित नजर आते हैं।

लेकिन वे भी अपने रास्ते के पहले व्यक्ति थे और आप भी आज अपने रास्ते के पहले व्यक्ति हैं, व्योम के सौ प्रतिशत गुणों से भरे हुए ! तो क्यो उन खण्डहर और उन ऋषिमुनियों के रास्ते में बंधे, हम अपने उच्चतर शिखर को देख नहीं पा रहे?

पश्यन्ति भाषा का कम्पन्न तो खरबों में है और विस्तृत ब्रह्माण्ड के अनन्त छोर तक कम्पायमान है।

उठो और तोड़ डालो ? सारे कर्मबंधन के श्रृंखला को क्योंकि उस पश्यन्ति भाषा की कम्पन्न के पथ की सिढ़ियाँ तुमसे शुरू होती है। जो तुम्हारे आत्मशक्ति के ब्रह्मस्वरूपा रूप के सामने यह अनन्त विस्तार छोटी पड़ रही है !

मेरूदण्ड (स्पाइनल कौड) के ब्यालिसवे हड्डी पर मणिपुर चक्र तक ब्यालिस लाख योनि पर मनुष्य खड़ा है। ऊपर के ब्यालिस लाख योनि तो मेरूदण्ड के ऊपर के ब्यालिस हड्डी के द्योतक पर पश्यन्ति के खरबों कम्पन्न के क्षेत्र में है।

जो मनुष्य योनि से ऊपर के योनियो के द्योतक के रूप में हैं। यानि ऊपर के ब्यालिस लाख योनि मनुष्य योनि से ऊपर की गति है। जो लाखों, खरबों तारे और नक्षत्रग्रह की स्थिति पर मनुष्य योनि से विकसित योनि के क्षेत्र में आती है।

जब तुम किसी योगी और शास्त्राकारों से ईश्वर के बारे में पूछते हो ! तो वह तुम्हे पहले से प्रतिपादित शास्त्रीय शब्दों में केवल ईश्वर को समझाने का प्रयत्न करते हैं ?

लेकिन ईश्वर तो तुम्हारा आत्मदर्शन ही है तो कौन ईश्वर का पता बता पाएगा ? महावीर और गौतम तो ईश्वर के बारे में पुछने पर बिल्कुल चुप ही रहे। क्योंकि तुम्ही आत्मस्वरूपा होने पर ब्रह्मस्वरूपा हो जाते हो! आज ता० 17.04.10 के पेपर में मैने पढ़ा कि ब्रह्माण्ड का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है।

न्यूयार्क के खगोल विद ने लिखा है, कि ब्रिटेन जार्डल ब्लैक सेन्टर फॉर एस्ट्रोफिजिक्स के शोध कर्ताओं ने हमारे नजदीक के आकाशगंगा एम 82 के एक अज्ञात खगोलीय पिंड से रेडियो तरंग भेजी जा रही है, उन तरंगो को पकड़ा है। रेडियो तरंगो का एक चमकता पिंड देखा गया, जो सुपरनोवा के रेडियो तरंग की तरह नहीं था, जिसकी चमक कुछ हफ्तों में धीमी पड़ जाती है। इस रेडियो तरंग के पिण्ड की चमक बराबर बरकरार बनी हुई है।

हम साधक भी जब पश्यन्ति के सतज् रेडियो तरंग के कम्पन्न में आते हैं। तो इन रेडियो तरंग की तरह किसी दूसरे आकाशगंगा के रेडियो तरंग के कम्पन्न में आने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं।

प्राण शक्ति का कम्पन्न भी रेडियो तरंग की तरह ही है, जो जड़ और चेतन सबों में उनके तमस्, रजस् एवं सतज् क्षमता के अनुसार कम्पायमान हो रहे हैं। कोई भी प्राणी मृत्यु नहीं चाहता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक जीवन्त रहने का हर प्रयास करता है, चाहे अनेक प्राणियों की जीवनी शक्ति को नष्ट कर ही क्यों नही प्राप्त हो!

लेकिन कुण्डलिनी जागृत साधक जब कामक्षेत्र की साधना से उपर उठ जाते हैं। तो मृत्युभय से बिल्कुल मुक्त हो जाते हैं। तब मृत्यु उत्सव लगने लगता है। ताकि अगला जन्म मानवता के उच्चतर शिखर से हो और साधना की पश्यान्ति एवं परावाणी के कम्पन्न के खरबों रेडियो तरंग से ऊपर जा पायें !

गौतमबुद्ध ने एक अति निर्धन व्यक्ति का निमंत्रण स्वीकार कर लिया था, एक धनाढय व्यक्ति के निमंत्रण से पहले आने के कारण। वह अपने निर्धनता के कारण जंगल से गोवरछत्ता जिसको कुकुरमुत्ता भी बोलते हैं तथा बिषैले जगह पर पैदा होने के कारण काफी बिषैला हो जाता है। उसकी सब्जी बहुत प्रेम और सम्मान से गौतमबुद्ध को खिला दिया। गौतम ने सब्जी के बिषैला होने के बावजूद उसके प्रेम और सम्मान को ठेस न लगे, इसलिए बहुत शान्ति पूर्वक खा लिया। लेकिन वह उनके मृत्यु का कारण बना और शनै-शनै उनकी मृत्यु हो गयी।

दधिचि का इन्द्र का बज्र बनाने के लिएअपने मृत्यु का बरण कर अपने हड्डी का दान कर देना भी एक प्रमाण है, कि कुण्डलिनी से जागे व्यक्ति जनकल्याण के लिए हँसते-हँसते मृत्यु का भी वरण कर लेते हैं।

चौथे मनोमय शरीर में पहुँचे साधक गुरू आज्ञा या देवी देवता की अराधना में हँसते हँसते सर भी काटकर अपना बलिदान देने में नहीं हिचकते ! जिसकी व्याख्या, मुख्य पृष्ठ पर की गयी है।

रणभूमि में आज भी हमारे वीर सैनिक देश और समाज के हित के लिए अपना बलिदान हँसते हँसते दे देते हैं।

शास्त्रकारों एवं गीता में कृष्ण का उपदेश है कि वे वीरगति प्राप्त योद्धा स्वर्ग के अधिकारी हो जाते हैं।

होता ऐसा है कि संकल्पवान वीर सैनिक आत्मबली होते हैं। संकल्प शक्ति का स्थान नाभि कुण्ड निर्भयता का केन्द्र है। उनकी संकल्पशक्ति की निर्भयता ही कुण्डलिनी को ऊपर उठाकर उन्हें नाभिकेन्द्र के बाहर कर देता है। ऐसे सैनिक हँसते-हँसते प्राणों का न्योछावर कर वैश्वानर जगत, जो स्वर्गस्वरूपा ही है, उसके अधिकारी हो जाते हैं।

प्रकृति का नियम है कि जिस केन्द्र से प्राण निकलता है। उससे नीचे जन्म लेने की कोई सुविधा नहीं है और वीरगति प्राप्त योद्धा भी स्वर्गारोहण के अधिकारी हो जाते हैं।

कुछ साईन्टिस्ट जैसे वाटसन ने रेल बना डाला, मार्कोनी ने रेडियो बना डाला, एडीसन ने बल्व बना डाला, आईन्सटाइन ने एटमबम बना डाला, राइट ब्रदर्स ने हवाई जहाज, ग्राम वेल्ड ने टेलीफोन बना डाला, ये ऊँचे ग्रेड के वैज्ञानिक जो आजकल के उच्च्व शिखर पर पहुँचे आविष्कार के जन्मदाता है, ये चौथे शरीर के गर्भ धारण से पैदा लिए व्यत्तित्व के लोग समझ में आते है।

भक्त ध्रुव, भक्त प्रहलाद जो हमारे कथानक में बचपन में ही अध्यात्म के अच्छे शिखरको पकड़ लिया था। ऐसे बालकों का व्यक्तित्व पाँचवा केन्द्र अनाहत या छठा केन्द्र आज्ञाचक्र जो शिवलोक हैं, वहाँ के गर्भाधान से पैदा लिए समझ में आते हैं। चूंकि इन भक्तों ने शून्यचक्र जिसे ब्रह्मचक्र कहते हैं बाल्यावस्था की स्थिति में ही अपनी पहुँच बना ली थी।

पुस्तक में व्याख्या कर आया हूँ कि कुण्डलिनी जागृत लोग जिस केन्द्र से मृत्यु प्राप्त करते हैं उसी केन्द्र से उनका जन्म होता है। और उर्ध्वगति की साधना कर परमगति को प्राप्त करते हैं। चौथे शरीर के बाद अद्वैत है।

इसलिए वे मनोमय शरीर में ही कोई इच्छा या संकल्प का खूटा गाड़ देते हैं। ताकि बचे कर्मबंधन एवं संस्कारों द्वारा जनकल्याण कर या तपस्या कर ब्रह्मचक्र से ऊपर के लोकों में जा सके। पृथ्वी का मैगनेटिक फिल्ड ही पृथ्वी का ओरामंडल है। जो रेडियो तरंग का रूप लेकर ब्रह्माण्ड के अनन्त छोर तक फैला है।

वैज्ञानिक ने उन्हीं मैगनेटिक फिल्ड में रेडियो तरंग को प्रकाश तरंग में बदलकर टी०भी० मोबाइल का नेटवर्क कायम किया है, और उसी के फ्रिक्वेन्शी के वेभ लेन्थ और मेगा साईकल में अपना प्रसारणकर दुनियाँ के घर-घर में इस विज्ञान की गरिमा को विभिन्न आविष्कारों द्वारा पहुँचा रहे हैं।

आज के वैज्ञानिक चाँद या मंगल ग्रह या सूर्य की ओर अपने उपग्रह को भेजकर यहीं से रिमोट कन्ट्रोल द्वारा वहाँ के दृश्य का फोटो एवं वातावरण के कम्पन्न का अध्ययन करने में सक्षम हो रहे हैं।

पृथ्वी का मैगनेटिक फिल्ड जिसका प्रवाह पृथ्वी के दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव की ओर खरबों कम्पन्न में है। हमारे स्वर्ग-नर्क की व्याख्या जो पुस्तक में नौ लोक के रूप में बर्णन करते हुए, अन्य-अन्य लोकों के कम्पन में भी किया है। जो दूसरे आकाश गंगा के छोर तक जाने का मनुष्य जन्म का आत्मगति है।

इन्हीं कम्पन्नों के तमस्, रजस् और सतज् कम्पन्न में अपना कम्पन्न मिलाने की जो क्षमता हम कुण्डलिनी जागरण द्वारा प्राप्त करते हैं, जो आत्मगति से ज्यादा कम्पन्न में है एवं हमें शून्य चक्र से ऊपर भी ले जाने की क्षमता रखती है।

महाभारत काल में भी चौथे शरीर में पहुँचे महारथियों ने अनेकों-नेक अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार कर, बहुत सारे कौतुक का युद्ध किया। चौथे शरीर में कुण्डलिनी जागृत साधक का आग से खेल जाना, पानी पर भी दौड़ जाना, एक ही समय में एक शरीर से कई शरीर में दिख जाना, असम्भव से असम्भव कार्य भी कर जाना, ये उनके साधना का बल है।

पुनर्जन्म के कुण्डलिनी जागृत साधक अगले जन्म में किसी भी छोटी से छोटी घटना के स्पंदन से फिर जागृत हो सकते हैं। जैसे पेड़ के पत्ता गिरने के कम्पन्न से, घड़ा के फुटने के कम्पन्न से, ठेस लगकर गिर जाने के कम्पन से, या विज्ञान के किसी सिद्धान्त के प्रतिपादित होने के कम्पन्न से, दुर्घटना की चोट से, या गुरू के स्पर्शदीक्षा के प्रवलतम वेग से, समाधि की भी अवस्था प्राप्त हो सकती है।

चौथे शरीर तक में साधकों का काम कामेश्वरी के क्रियारूप द्वारा जो कुण्डलिनी जागरण की व्याख्या एवं उसके स्वरूप का दिग्दर्शन मुख्य पृष्ठ के चित्रित चित्र का वर्णन कई संदभों में किया गया है।

मनस शरीर तो मनुष्य का स्वगृह है। यहाँ तक भोगवाद योग से तृप्त होकर कुण्डलिनी जागृत कर अधोगत की योनियों से सदा के लिए मुक्ति पा कर मनस शरीर के ऊपर की योनियों में आ जा सकते हैं। जो चर्मचक्षू से परे है।

पूर्णता

चित्र संख्या 7, 9 एवं 16 में कुण्डल खुलने की गति से साधना के तीन अंध बिन्दु (ब्लैक होल) से निकलने की गति में क्रमशः- पशु भावदशा, वीर भावदशा एवं दिव्य भावदशा के स्वरूप में कुण्डलिनी गति को दर्शाया गया है।

भग समाधि की स्थिति में क्रमशः- पन्द्रह मिनट, आधा घंटा एवं तीन घंटा की स्त्री-पुरुष स्वरूप में ध्यानस्थ मुद्रा की नैसर्गिक समाधि स्थिति है। जहाँ दिव्य ओरामंडल बनता है एवं स्त्री-पुरूष का ऋण एवं धन विद्युत सर्किट एक दूसरे के अन्तरमिलन पूरक में है। भग समाधि के परमशुद्धतम काम-कामेश्वरी की साधना स्थिति में साल, तीनसाल से लेकर जीवन पर्यन्त तक हमें ब्रह्मचारी की श्रेणी में पहुँचा, हमें आत्म संतुष्टि से भर पूर्ण नर-नारी का स्वरूप दे देती है।

स्त्री-पुरूष के अन्दर का स्त्रैण एवं पुरूषत्व समागम में, एक दूसरे में निगेटिभ एवं पोजोटिभ पोल द्वारा अलग अण्डाकार आभामय सर्किट बनाकर हमें आत्मशक्ति दे देती है एवं स्खलन बिलकूल नहीं होता है। हम ज्यादा ऊर्जावान रहते हैं एवं ब्रह्मचर्यव्रत के पूरक में होते हैं।

दीक्षित पति-पत्नी में- व्रत, उपवास, फलाहार, ज्यादा से ज्यादा अन्तराल पर समागम एवं प्रेमरूस में पत्नीव्रत एवं पतिव्रत का निर्वाह आवश्यक है। चूँकि इन सब से शरीर का चुम्बकत्व बढ़ने से, शक्तिशाली विद्युत सर्किट बनता है एवं लम्बे समय तक तृप्ति की भावदशा रहती है। कुण्डल खुलने के प्रत्येक अंघ बिन्दु पर असावधाबी में विद्युत सर्किट भूमिगत होने से, साधना बहुत धातक स्थिति में हमें मृत्यु तक दे सकती है। साधना गुरू के सानिध्य एंव निर्देशन में आवश्यक है।

आवरण चित्र में आंतरिक अनुभूति का चित्रण

''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' के मुख्य आवरण चित्र में, सन्मुख एवं पृष्ठ भाग पर साधना के स्तर को, काली के रौद्र मुद्रा एवं साम्भवी मुद्रा में मूलाधार एवं अनाहत पर पैर रखते दिखलाया गया है। सोलह हाथ एवं मस्तक के दाहिने एवं बाएँ भाल पर चन्द्रमा का प्रतीकात्मक स्वरूप मनुष्य जीवन के सोलह कला से गुजरने का संस्कारगत प्रक्रिया का चित्रण है।

पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र में ही चन्द्रमा चक्कर काटता है एवं पृथ्वी का कील ही उसका नियंत्रण कक्ष है। पृथ्वी का मैग्नेटिक फिल्ड (चुम्बकीय क्षेत्र) ही राहू और केतू के रूप में, उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव है। इसलिए राहू और केतू का मैग्नेटिक फील्ड चन्द्रमा और पृथ्वी के रिजल्टेन्ट फोर्स के स्वरूप ही बनता है।

इसी मैग्नेटिक फिल्ड का नियंत्रण राहू और केतू द्वारा जन्म और मृत्यु के नियंत्रण में भी है। इसलिए मनुष्य के स्वगृह तक व्यालिस लाख का भ्रमण है और ऊपर का व्यालिस लाख योनि सूर्यवलय एवं चन्द्रवलय के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र से भी ऊपर घुला-मिला है।

इसलिए पृथ्वी का कोई प्राणी चन्द्रमा के प्रभाव से बच नहीं सकता। शरीर में 67 प्रतिशत रक्त जलीय तत्व में रहता है एवं चन्द्रमा के नियंत्रण में जलीय तत्व हैं ।

हृदय पर ऊँ साधना और उसका सम्पर्क ब्रह्मरंध्र के ब्रह्मकमल पर दिखलाया गया है। रक्त प्रवाह जो हृदयगति के कारण मनःशक्ति का कारण बनता है एवं हमारी सारी मानसिक संवेदनाएँ चन्द्रमा के 27) नक्षत्रीय पिण्ड के ऊपर से गुजरने से उसके भोग के अनुसार होती है।

शास्त्रों में मनीषियों ने बर्णन किया है, कि चन्द्रमा जिन-जिन 27) नक्षत्रीय पिण्ड ग्रह को भोग के रूप में उनपर से गुजरता है, उसी तरह की मानसिक गति, स्वास्थ्य एवं बीमारियां मनुष्य को होती रहती हैं।

मनुष्य का जन्म और मृत्यु भी चन्द्रमा के गणितीय अक्षांश पर होता रहता है। प्रेतत्व प्राप्त आत्मा भी उन्हीं अक्षांश पर जन्म और मृत्यु प्राप्त करती है। अतः सभी चन्द्रमा के 28 आकाशीय पिण्ड का स्वरूप और उनकी प्रकृति का विश्लेषण कर रोगी का इलाज किया जाय तो स्वस्थ जीवन जीया जा सकता है।

शास्त्र के "नारायण वली" नाम पुस्तक में चन्द्रमा के प्रक्रियात्मक उपभोग से 28 नक्षत्र के स्वरूप को जानते हुए, प्रेतत्व प्राप्त मनुष्य के शान्ति के उपाय बताए गए हैं।

मनुष्य के बाएं भाग के सारे अंग एवं नस नाड़ियों का संचालन मस्तिष्क के दाहिने भाग से है एवं दाहिने भाग का नियंत्रण एवं संचालन मस्तिष्क के बाएं भाग से है।

पशु भावदशा में चन्द्रमा को दाहिने भाग में दिखलाया गया है। दाहिना भाग मनुष्य के संस्कारगत अध्यात्मिक ग्लैन्ड्स (ग्रन्थि) के संचालन को भी नियंत्रित रखता है एवं मस्तिष्क का बायां भाग हमारे भौतिक शरीर को संचालन एवं नियंत्रण में रखता है।

शरीर का रक्त प्रवाह भी कुछ इन्हीं बाएं-दायें के क्रम में संचालित होकर, हम पर शारीरिक एवं अध्यात्मिक नियंत्रण रखे हुए है। इसलिए प्रायः देखा गया है, कि बायां हाथ के संचालन से काम करने एवं लिखने वाले लोग कुछ ज्यादा बुद्धिमान होते हैं एवं उनका बौद्धिक विवेक सभी कुछ अलग-थलग होता है।

चौरासी लाख योनि के भ्रमण में हम व्यालिस लाख की योनि तक, प्राण शक्ति श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया द्वारा लेते हैं। वहां तक पशु भावदशा है। लेकिन उससे ऊपर की योनियों में तो प्राण ऊर्जा ही सक्रिय है एवं योनि परिवर्तन का मूल कारण है।

जब तीनों चक्र-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, आधा नाभिचक्र से ऊपर आ जाते हैं, तो हमारी पशु भावदशा की ऊर्जा का रूपांतरण ही वीर भावदशा में बदल जाता है। हम मनुष्य के स्वगृह में आ जाते हैं। यहां तक मैथुनी जगत के लिए श्वांस-प्रश्वांस से प्राप्त प्राण ऊर्जा से सृष्टि का सचालन है।

जिसमें दो का होना आवश्यक है। अनाहत से ऊपर तो स्त्रैण और पुरूषत्व (निगेटिव और पोजिटीव) के केन्द्रीभूत हो जाने से एकाकार की स्थिति आ जाने पर, अर्द्धनारीश्वर का रूप पकड़ लेती है।

बिना नींव के कहीं मकान बना है! शरीर के चक्रों की साधना तो शारीरिक उपलब्धि का माध्यम है। जो चित्र संख्या-54 एवं 55 से छः चक्रों के स्थान पर नाड़ी गुच्छक के रूप में दिखाई गयी है।

जगत के चतुर्थ आयामी श्रृंखला को पार करते हुए ऊँ के सप्त

आयामी श्रृंखला पाने के लिए, मैथुनी जगत की मानवीय उपलब्धि के लिए, काम-कामेश्वरी के सिद्धान्त एवं क्रियात्मक रूप को समझना आवश्यक है। जो कभर पेज पर चित्रों द्वारा दर्शाने का प्रयास किया गया है।

योगी ध्यानस्थ होकर पद्मासन में ध्यान लगाते हैं। अपने चक्रों के ऋण एवं धन विद्युत पोल को साम्यरस में साधते हुए, ब्रह्मरंध्र तक पहुँच जाते हैं एवं पा लेते हैं परम उत्कर्ष को! लेकिन "कुण्डलिनी जागरण द्वारा है गृहस्थी" के सिद्धान्त में शक्तिरूपा पत्नी को भैरवी मान ईश्वरीय कील तक अपने ॐ साधना के सहजभाव में आकर, परमानन्द हो जाना, परम साध्य माना गया है।

दाम्पत्य जीवन के साम्यरस में आकर अन्तर्मन के सिंहासन, भृगुटी के तीसरी आँख के केन्द्र बिन्दु पर ध्यानस्थ हो जाना, इहलोक एवं परमलोक की परमगति की प्राप्ति का मूल कारण है। इसी साधना के स्तर को, काम-क्रीड़ा के आनन्दमय स्वरूप में, पुस्तक के दोनों भाग के आवरण एवं पृष्ठ पेज पर दर्शाया गया है।

शिव के वक्ष (छाती) पर काली का जीभ निकाल कर अचंभित होना, शिव और शक्ति की काम-कामेश्वरी की लीला को, युद्ध के मैदान की तरह इस कोलाहल भरे संसार में भी साम्यरस के भाव में आकर एकाकार हो, सहजता में आ जाने का प्रतीक है एवं हमारी योगनिद्रा के सफलीभूत प्रक्रिया का संवेदनशील बिन्दु है।

इस काली विद्या के प्रतीक को दस महाविद्या में प्रथम स्थान में माना गया है। नील वर्ण की तारा का भी बर्णन द्वितीय स्थान की महाविद्या में वर्णित है।

इनके हाथ में भी कैंची, कपाल, कमल और खड़ग का चित्रण, नरमुण्ड की माला पहने, शववत् मनुष्य के नितम्ब एवं छाती पर अपना पैर रखते हुए सवार दिखलाया गया है। जो मूलाधार से अनाहत तक में पशु भावदशा से वीर भावदशा तक पहुँच जाने का चित्रण है।

जो सर्वप्रथम महर्षि वशिष्ट जैसे ऋषि के द्वारा वैदिक रूप से असफल होने पर, तांत्रिक विधि से सिद्धि प्राप्त कर पापनासिनी देवी के रूप में तारा का अवतरीत रूप जाना गया है। जो काली विद्या का ही सवरूप है। तांत्रिक विधि तो बिना काम-कामेश्वरी के सिद्धान्त के बगैर, तो सम्भव है नहीं! चाहे प्रत्यक्ष भोगवाद से या चित्रित यंत्र के योगवाद से, प्रतीक के रूप में हो !

तीसरी महाविद्या छिन्नमस्ता के तांत्रिक रूप का वर्णन ईंगला-पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के नियंत्रण के रूप में, अपना सर काटकर तीन धारा में रूधिर प्रवाह के पान के रूप में दिखलाया गया है। यह तांत्रिक विधि भी बिना काम-कामेश्वरी के विशुद्ध लीला के सम्भव नहीं है।

षोडशी विद्या जो महाविद्या के चौथे स्थान पर स्थित है और तांत्रिक विधि में सोलह अक्षर विशुद्धाय के कमलदल के कम्पन्न क्षेत्र में है; उनको भी शिव पर आरूढ़ कमलदल पर दिखलाया गया है। जो चारों पायों पर ब्रह्मा, विष्णु रूपा, ईश के सिंहासन पर आरूढ़ हैं। इस षोडशी विद्या को ही कौलमार्ग में, वाममार्गी साधना में पशु भावदशा एवं तीसरे शरीर से ऊपर की उपलब्धि में वीर भावदशा में आने के प्रतीक में साधना को माना गया है।

दोनों भावदशा में योनि का उपभोग एवं वीर भावदशा में, श्री विद्या के रूप में योनि का रेखांकित चित्र की उपासना के रूप को वर्णित किया गया है। शास्त्रों में वर्णित है, कि यह देवी भोग और मोक्ष दोनों देने वाली है एवं सहजता के साम्यरस में साधना द्वारा परमसाध्य है।

इसी की उपासना साधना का प्रारूप चित्रों द्वारा एवं पुस्तक में काम-कामेश्वरी की काम-क्रीड़ा के रसानुभूति के रूप में ऊँ की साधना में सहजता का भाव प्राप्त कर, वीर भावदशा के आनन्द स्वरूपा एकाकार होने का चित्रण किया गया है।

वीरभाव की श्रृंखला में दिव्य भावदशा के स्वरूप तक में भुवनेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, मातंगी, लक्ष्मीरूपा कमला, इत्यादि देवियों की साधना, सिद्धलोक और ऋषिलोक तक पहुँचने का तांत्रिक साध्य मार्ग माना गया है । लेकिन शव् साधना शिव और शक्ति की साम्यरस की साधना है ।

कमला की साधना ब्रह्मरंध्र स्थित विष्णु और आत्म स्वरूपा लक्ष्मी की उपासना है । धुमावती एवं बगला मुखी तांत्रिक साधना उर्ध्वगति में शान्ति दायक एवं अधोगति में आने पर विनाशकारी ब्रह्मास्त्र के रूप में जाना गया है ।

लेकिन सभी तांत्रिक साधना तो हमें कर्मफल देती है, लेकिन कर्मबंधन में बाँधती है । मुक्ति और निर्वाण तो है ही नहीं ! क्योंकि साधना का जो भी स्तर है सभी कामना के भिभिक्षा में है और दो स्वरूप तो एक दूसरे से बाँधेगा ही !

जबतक हमारी साधना एकाकार होकर अकम्प लौ सदृश्य नहीं हो जाती,

तबतक निर्वाण की स्थिति सम्भव नहीं है । मुख्य पृष्ठ पर काली के हाथ में कैची हमारे साधना के साम्यरस में आने पर कर्मबंधन काटने के प्रतीक में है । दूसरे हाथ में तलवार और तीसरे हाथ में नरमुण्ड, साधक-साधिका के साम्यरस में आ जाने पर चेतन मन का नरभेध कर; अचेतन मन के सिंहासन पर बैठ जाने के प्रतीक में है ।

युग-युग से अश्वमेघ यज्ञ की चर्चा चली आ रही है । अश्वमेघ मतलब घोड़ा काटना । क्या यज्ञ में घोड़े को काटा जाता था ?

नहीं ! नहीं !

यह तो हमारे घोड़े की गति में मन के तरंग को शान्त कर अचेतन मन पर राज्य कर सम्राट हो जाने का प्रतीक है ।

जो हमारे बलिदान के रूप में काली के तीसरे हाथ पर दिखलाया गया है । जहाँ पशु भावदशा के मानसिक गति से ऊपर आ कर वीर भावदशा की गति में आ जाना है ।

जो मनुष्य का स्वगृह है । वहाँ काली के हाथ में कामोदनी या कमलपुष्प स्वरूपा नर-नारी के मानसिक गति को- प्रेम, दया, क्षमा, करूणा में आकर; काम-कामेश्वरी के साम्यरस में 'ऊँ' में एकाकार हो, अर्द्धनारीश्वर हो, मूलाधार के कुण्डलिनी सर्पनी से विष्णुरंध्र के शेषनाग से मिल जाने के प्रतीक में है ।

काली के दोनों पैर एवं दोनों हाथ पर सर्प का लिपटना मूलाधार और विष्णुरंध्र के शेषनाग का अनाहत में एकाकार हो जाने का प्रतीकात्मक है ।

सहस्त्र कमलदल का आसन, नर-नारी के साम्यरस की स्थिति में आ जाने पर, चिदानन्द हो जाने का प्रतीकात्मक है । अग्नि ज्वाला के रूप में सैया पर कमलपुष्प के आसन पर आनन्दमय साम्यरस में आ कर 'ऊँ' के सप्तआयामी कम्पन्न क्षेत्र पर केन्द्रीभूत होने पर- दैहिक, दैविक, भौतिक ताप में भी आनन्दस्वरूप हो; कुण्डलिनी जागृत कर अर्द्धनारीश्वर हो जाने का प्रतीकात्मक स्वरूप का चित्रण किया गया है ।

काली के मुखाकृति के चारो ओर- काम, क्रोध, लोभ, मोह के ओरामंडल को उनके प्रकृति के स्वरूप के रंगों में चित्रित किया गया है

जो मनुष्य रूपी प्रत्येक नर-नारी के ओरामंडल का चित्रण है । जो विशुद्ध साम्यरस में आने पर सुनहला एवं उजला में परिवर्तित हो जाता है ।

आज का विज्ञान चौथे शरीर की स्थिति में आ चुका है । जहाँ आग-पानी, वायु का प्रयोग नियंत्रित ढंग से किया जा सकता है । लेकिन विज्ञान इस चौथे आयाम से ऊपर जा नहीं सकता !

क्योंकि विज्ञान के हर प्रयोग में दो का होना आवश्यक है । करने वाला एवं वस्तु की उपस्थिति । लेकिन अध्यात्म में सप्त आयामी क्षेत्र तक जाने के सिद्धान्त हैं ! अनाहत पर शक्ति और शिव दोनों एक में मिलकर एकाकार होकर अर्द्धनारीश्वर का रूप पकड़ लेती है ।

आज समाज अपने अधोगति में आकर, वासनामय जीवन जी कर, अपनी मनुष्यगत संस्कार की सारी सम्भावनाओं को धुमिल कर रहा है । जबकि इस वासनामय जीवन की उर्ध्वगति की उपलब्धि काम-कामेश्वरी के शिव एवं शक्ति स्वरूपा साधनामय जीवन में आ कर- थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि से भी ऊपर आ कर ईश्वर में एकाकार होने के सिद्धान्त हैं ।

इसी सिद्धान्त को "कुण्डलिनी जागरण द्वारा है गृहस्थी के तीनों भाग पुस्तक में व्यवहारिक एवं प्रायोगिक रूप से समझाने का प्रयास किया गया है।

सर्पदंश का औषधि सर्प का विष ही है । उसी तरह काम-पीड़ा से व्यथित अतृप्त समाज को इसी काम-कामेश्वरी के उर्ध्वगति के स्वरूप को समझ एवं जान भोगवाद के इस सिद्धान्त को जानते, समझते हुए तृप्त हो कर भवसागर से पार हो जाने की परिकल्पना को साकार होने के मूलभित्ति पर यह पुस्तक लिखी गई है ।

थूक

आकाश की ओर मुँह करके थुकेगें, तो अपने मुँह पर ही गिरेगा !

अतः दूसरे की निन्दा एवं पाप चर्चा छोड़ अपने स्वाध्याय में जीयें !

शिव-शक्ति (<u>चित्र संख्या-1</u>)

यह चित्रण काली स्वरूप में मनःशक्ति के प्रतीक में है। इस स्थूल जगत में मानव योनि की चित्त् शक्ति और आत्म शक्ति का सेतु (पुल) है, मनःशक्ति ! जो इनर्जी के रूप में मनुष्य के चित्त् शक्ति से ब्रह्म तक व्याप्त है । बिना मनःशक्ति के इस मानव योनि का कोई तात्पर्य ही नहीं है ।

जहाँ इच्छा शक्ति पर सप्त धातु के रसायन द्वारा मनःशक्ति अपना नियंत्रण रखे हुए है। मनःशक्ति की कल्पना शिवलोक के रूप में कि जा सकती है जहाँ हम मानव जीवन का प्रतीक शिव परिवार, मनःशक्ति का ही विस्तार है ।

बल स्वरूप में हमारा यह स्थूल जगत है । जो ध्वनी एवं ज्योति कम्पन्न तरंग पर, ऊर्जा (इनर्जी) के स्वरूप में हमारे सूक्ष्म शरीर को, सूक्ष्म जगत से जोड़े हुए है । हमारे स्थूल शरीर की परिधियाँ योनियों में विभक्त होकर, गिनती के चौरासी लाख योनियों में व्याप्त है ।

लेकिन इसकी व्यापकता सूक्ष्म शरीर के ज्योति कम्पन्न तरंग पर ही है । ऐसा शास्त्रोक्ति है, कि पृथ्वी पर चार मौसम के समभाव में आने पर सूर्यलोक के कम्पन्न तरंग से, नौ ज्योर्तिमय सूक्ष्म प्रकाश तरंग पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव के गुरूत्वाकर्षण द्वारा, पृथ्वी के चुम्बकीय परिधि (मैगनेटिक फिल्ड) में अपनी विशिष्टा कायम कर लेती है । उसी के अनुवेषन में ऋषियों ने नौ देवियों के रूप में अर्चना पूजा का विधि विधान बनाया है ।

लेकिन इन नौ देवियों में सभी देवियों में व्याप्त, त्वरित विद्युत वेग के शक्तिरूपा, इस काली स्वरूप की पूजा तो सर्व सम्मत एवं विधानतः है । शब्दों की उच्चरण शैली हमारे मनिषियों ने कुछ इस तरह व्यवस्थित की है, कि दो या तीन अक्षर के उच्चारण वाली प्रत्येक शब्दावली मैथुनिक शक्ति के उदघोष में होता है । क्योंकि ब्रह्म में बिना मैथुन के न कोई सृष्टि है और न कोई गति है !

प्रायः सभी देवियों की पूजा पद्धति में सिन्दूर चढ़ाने की प्रथा हमारे हिन्दू समाज में है । यह प्रतीक है, कि प्रत्येक देवी को मैथुनी संस्कार में माना गया है एवं शब्दावली द्वारा उदघोषित मंत्र भी मैथुनिक गति में है ।

स्त्रीतत्व प्राकृतिक रूप से समतुल्य अणुओं से बनी है । पुरूष का लैंगिक

सहयोग तो, इस मैथुनी जगत को सृष्टि के रूप में चलाने का, आणविक गति में गतिमान होने की घटना है ।

लेकिन प्रकृति तो स्त्रैण कम्पन्न तरंग में पूरे सृष्टि का संचालन कर रही है । किसी न किसी रूप में स्त्रीतत्व में पुरूषत्व स्वयं में पैदा करने की क्षमता है । यह कथानक है, कि पार्वती ने गणेश की उत्पत्ति अपने शरीर के मैल से कर ली । मैल, भारीय पृथ्वी तत्व है । जिसके कारण गणेश को ईश्या एवं द्वेश के भावगत् स्वरूप में भी, शास्त्रों ने अपनी अभिव्यक्ति में प्रस्तुत किया है एवं पृथ्वी तत्व के मूलाधार केन्द्र पर इनकी उपस्थिति को माना है ।

जहाँ पृथ्वी तत्व के योनिगत श्रृंखला में थलचर की योनियाँ हैं एवं हाथी के शिर के द्वारा प्राण ऊर्जा प्राप्ति का बर्णन है । क्योंकि हाथी इस मानवतन के स्थूल शरीर के प्राप्ति के कारण में, थलचर के पवित्र जानवर की श्रृंखला में है ।

काली को मुर्तिकार काले पत्थर में एवं चित्रकार काले रंग में कर, इनके सौम्यरूप को जीभ निकाले भयानक रूप के मुद्रा में दिखाते हैं । जो उनके तांत्रिक गति में आने पर संहारक की मानसिक दशा है । संहार की स्थिति में भी ऊर्जा (इनर्जी) का रूपान्तरण होता है । सृष्टि में तो किसी ऊर्जा (इनर्जी) का बिनष्टीकरण नहीं है और इस काली स्वरूप का भी, ऊर्जा के रूप में बिनष्टीकरण नहीं है ।

ऊर्जा का कम्पन्न तरंग पाकर, इलेक्ट्राँन एवं प्रोटाँन नाभिक के चारो ओर ातिमान रहती है । इस गतिमान ऊर्जा को चलायमान रखने के लिए नाभिक पर भी इलेक्ट्राँन एवं प्रोटाँन रूपी बल और ऊर्जा का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप होता है । जो चक्कर काटते इस इलेक्ट्राँन एवं प्रोटाँन से काफी शक्तिशाली होता है । इलेक्ट्राँन एवं प्रोटाँन की नाभिक पर गतिमान ऊर्जा बनाने के लिए, इसे आत्मगति के प्रकाश तरंग में देखा जा सकता है ।

लेकिन नाभिक पर जो इलेक्ट्राँन एवं प्रोटाँन अपना समन्वय बिन्दु बनाकर निष्क्रिय स्थिति में अर्द्धनारीश्वर के रूप में पड़ी रहती है । उसको न्यूत्राण की गति एवं कुण्डलिनी गति के 346000 (तीन लाख छीयालिस हजार) मील प्रति सेकेण्ड में देखा जा सकता है । जो इस बल रूपी स्टेटिक इनर्जी (स्थिर ऊर्जा) पर त्वरित विद्युत वेग के गतिशील ऊर्जा स्वरूप में रहने पर भी, निष्क्रिय अवस्था में अर्द्धनारीश्वर का रूप ले लेता है।

हमारी साधना भी इन्हीं शक्ति रूपा त्वरित विद्युत वेग में, अर्द्धनारीश्वर का रूप अनाहत से ऊपर पकड़ती है, तो हम बाह्य बिन्दु के चित्शक्ति पर स्थिर होने लगते हैं एवं विष्णुरंध्र में समाकर स्थितिप्रज्ञ की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं ।

काली को काले रंग के स्वरूप में इसलिए दिखलाया जाता है, कि प्रकाश तरंग की गति को कुछ खास ल्युमेन्स पावर (प्रकाश तीव्रता) तक योनिगत हिसाब से देखा जा सकता है । निश्चित ल्यूमेन्स पावर (प्रकाश तीव्रता) से कम या ज्यादा प्रकाश तरंग, हम मानव या कोई भी प्राणी जब अपने आँख की कौरनियाँ पर महसूस करते हैं, तो अंधेरा ही अंधेरा दृष्टिगोचर होता है ।

इसका मतलब यह नही है, कि पुरे ब्रह्माण्ड में अंधेरा ही व्याप्त है ! जैसे मनुष्य की आँख का ल्यूमेन्स पावर (प्रकाश तीव्रता) ग्रहण करने की क्षमता छः सौ (600) प्रकाश तीव्रता है । तो मनुष्य की उससे ऊपर प्रकाश तीव्रता में कौरनियाँ जल जा सकती हैं एवं कम प्रकाश की तीव्रता में बिलकूल अंधेरा छा जाता है ।

उसी तरह सूर्य की सातो किरण का ल्यूमेन्स पावर जहाँ तक है, उस ल्यूमेन्स पावर (प्रकाश तीव्रता) तक, वह अपनी प्रकाश तरंग की रोशनियाँ बिखेर सकता है । लेकिन अंतरिक्ष में अन्तोगत्वा उसे भी अंधेरा का सामना करना पड़ता है ।

सूर्य में भी प्राण ऊर्जा संचरण की गतिशील ऊर्जा में सात किरण द्वारा, प्राण शक्ति कहीं अनंत से प्राप्त होती है । जो शक्तिरूपा प्रकृति के अनंत स्रोत से उदगम् स्थल द्वारा माना जा सकता है । लेकिन यह त्वरित प्रकाश तरंग तो किसी अनंत के शक्ति केन्द्र से त्वरित ऊर्जावेग से ही प्राप्त होता है ।

इसलिए अंधेरे के रेणु-रेणु में भी, इस प्राण ऊर्जा के तरंगगति में, हम काली के अभिव्यक्ति की कल्पना कर सकते हैं एवं काली को संहारक एवं सृष्टि की मैथुनिक प्राण ऊर्जा में आकर्षित एवं विकसित होते देख सकते हैं ।

यह चित्रण अर्द्धनारीश्वर के रूप में भी चित्रित किया जा सकता है । जब ऋण और धन विद्युत अलग-अलग होते हैं, तो सृष्टि में भी इनकी अभिव्यक्ति नर

और मादा के रूप में अलग-अलग होती है ।

हम देख रहे हैं, कि काली के चार हाथ हैं, जो हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह के प्रतीक में है । नीचे के एक दाहिने हाथ में खरग है, तो बांये हाथ में खून से भरी थाली है । यह हमारे पृथ्वी तत्व के हिंसात्मक द्वेष, घृणा के भारीय चक्रवात को काटकर, हमारा बलिदान हमारा ध्यानस्थ प्राण ऊर्जा ही कर लेती है ।

ऊपर के दाहिने हाथ में अग्नि की लपटें लिए लौ एवं बांये हाथ में त्रिशुल एवं नरमुण्ड है । यह प्रतीक हमारे कुण्डलिनी के तीन कुण्डल खुल जाने तक में, मणिपुर के सूर्यचक्र में हमारा योनिगत चक्रवात भस्म होकर, मनुष्य के ऋषि सम्मत स्वरूप में आ जाने के प्रतीक में है ।

चारो हाथ पर सर्प स्वरूप में साढ़े तीन फेरा दिये सर्पों का चित्रण, हमारे चारो चक्रवातीय प्रतीक काम, क्रोध, लोभ, मोह का कुण्डलिनी गति का तीन कुण्डल खुलने पर, काली के हाथ में अग्नि की लौ के प्रदर्शन में भष्म हो जाने के प्रतीक में है ।

त्रिशुल हमारे तीनों शूल-दैहिक, दैविक, भौतिक-दुख रूपी ताप के नारकीय यंत्रणा से कुण्डलिनी जागरण होने पर निकल जाने के संकेत में है। जो बलिदानी स्वरूप में ऋषि के नरमुण्ड को त्रिशुल के साथ थामने के प्रतीक में है एवं कुण्डलिनी गति के कम्पन्न अग्नि तरंग में सभी योनिगत चक्रवात से निकल जाने पर, आत्मगति के स्वरूप में है।

ऋषि के मुण्ड काली रूपी देवी ने शिर के जटा से पकड़ रखा है। यह प्रतीक हमारे कुण्डलिनी के उर्ध्वगति में आने पर, अपने बालो के द्वारा हम ब्रह्म से जुड़ने लगते हैं एवं एड़ीयल (सूँग) की तरह कुण्डलिनी जागृत होने पर साधक का बाल अग्नि शिखा की तरह, प्रज्वलित रूप में दिखलाई देने लगता है।

देवी के कमर में चार मुण्ड की कमरधनी है । यह प्रतीक हमारे चारो चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुरक, अनाहत पर हमारा मनुष्य तक का योनिगत चक्रवात पूरा कर लेने का एवं सारी तामसिक योनियों को अपने कुण्डलिनी गति में भस्म कर, अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप पकड़ लेने में है।

देवी के गले में नरमुण्ड की माला में नौ मुण्ड एवं दस निबूं सद्वश्य फल की प्रतीति दृष्टीगोचर हो रही है। यह प्रतीक है, हमारे नौ लोको तक मानव योनि

चित्र संख्या- 1

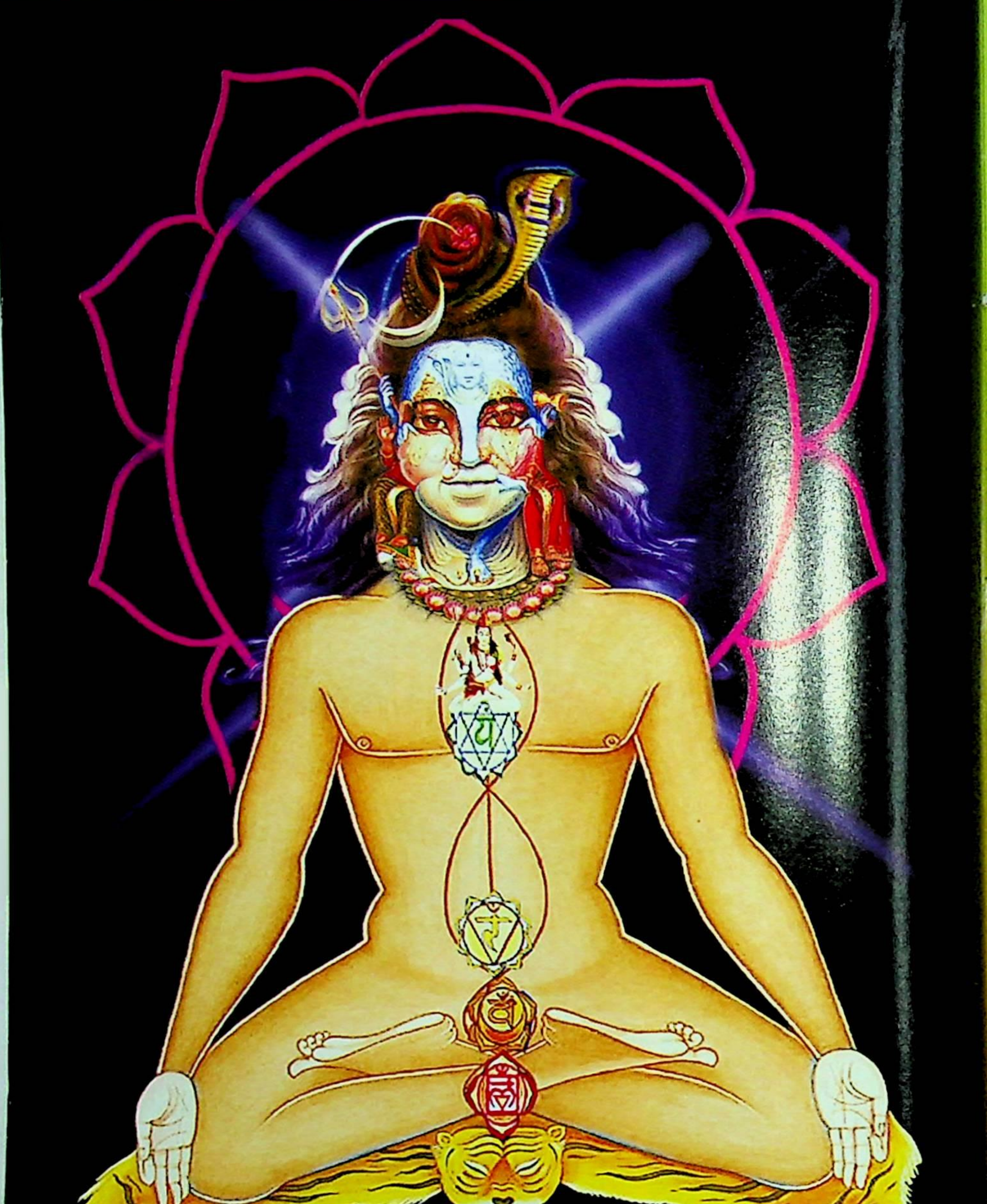

शंकर की अभिव्यक्ति में षट्चक्र एवं कुण्डलिनी

चित्र संख्या- 2

स्थूल सूक्ष्म और कारण
शरीर का
दिग्दर्शन
सुषुम्ना नाड़ी पर
सुषुम्ना नाड़ी पर
स्तर से जलते
साधना के
दीप शिखा

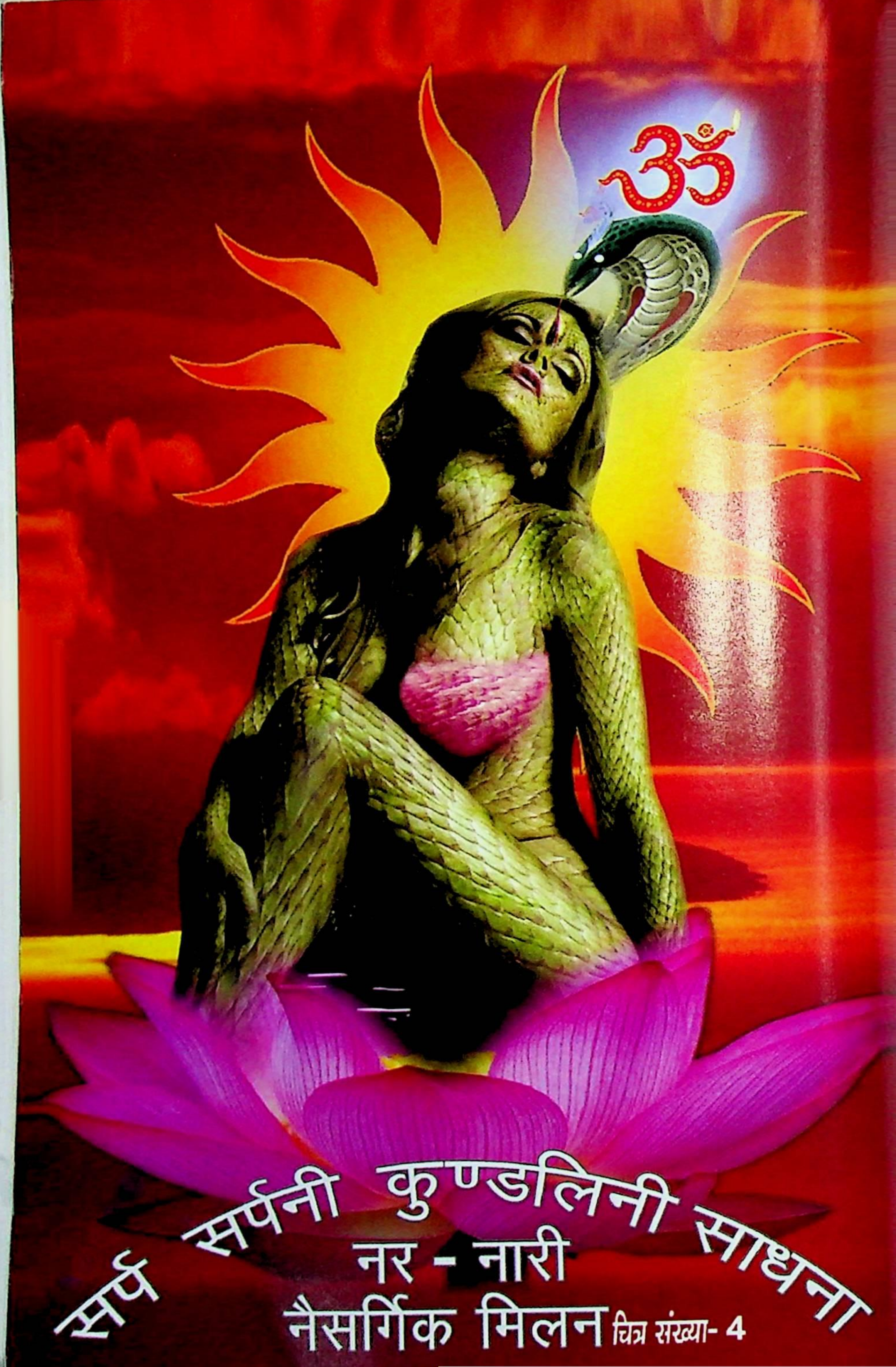
ॐ
सर्प सर्पनी कुण्डलिनी साधना
नर - नारी
नैसर्गिक मिलन
चित्र संख्या- 4

की साधनामय कुण्डलिनी जागरण से, अपना आकाश बदलते रहने का एवं निंबू प्रतीक है, हमारे दस इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करते सप्त धातू के रसायन से मानसिक गति के नियंत्रण का ।

हम जैसे भोजन, आवास, वातावरण में रहते हैं, वैसी ही हमारी मानसिक स्थिति बनती है एवं हमारे साधना का वैसा ही तमस्, रजस् एवं सतज् स्वरूप बनता है। दाहिने हाथ में खरग एवं बांये हाथ में त्रिशुल हैं। यह प्रतीक है; हमारे अर्द्धनारीश्वर हो जाने पर सत्य, अहिंसा की तलवार से दूष्टता, हिंसा, अहंकार के भावानात्मक प्रवृति को काट देने का एवं त्रिशुल-त्रिलोक स्वरूपा पृथ्वी, पाताल, आकाश तक में अपने सतज् कम्पन्न तरंग में आकर, स्वयं को अर्द्धनारीश्वर कर लेने का।

देवी बांया पैर राक्षस के सरकटे मुण्ड पर वीरभाव मुद्रा में रखे हुए है। बगल में पशुवत नरकंकाल का मुण्ड पड़ा है। यह प्रतीक है देवी स्वरूपा ऋण विद्युत में जो प्रकृति की ग्राह्रकता का विशिष्ट गुण है, उसके उर्ध्वगति आने पर-थलचर, जलचर, नभचर के पशुवत निकृष्ट योनियों से मुक्ति के लिए अपने-क्रोध, अहंकार, द्वेष, घृणा के रूधिरवत् तमस् संस्कार को काट कर, देवी के मातृत्व के संस्कार में आ जाने का।

देवी के ललाट पर त्रिपुण्ड चन्दन एवं तीसरा नेत्र, प्रतीक है, अन्तर दृष्टि एवं अन्तरयामी होने का । त्रिपुण्ड चन्दन एवं त्रिनेत्र के अभिव्यक्ति में देवी के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में त्रिपुरारी एवं शक्ति स्वरूप में काली के समन्वय बिन्दु पर आ जाने पर, सृष्टि के निर्माण एवं संहार की गति पा लेना है।

बिना संहार के सृष्टि में निर्माण नहीं है। अतः देवी को सौम्यरूप में दिखलाते हुए भी, संहारक अस्त्र-शस्त्र एवं कालगति में राक्षसी प्रवृति एवं ऋषि प्रवृति में देव-दानव के संस्कार में दिखलाया जा रहा है।

चौथे शरीर की गति में अनाहत पर पुरूष में ऋण विद्युत की प्रबलता एवं स्त्री में धन विद्युत की प्रबलता रहती है। लेकिन समर्पित नर-नारी में कुण्डलिनी जागरण के स्वरूप में, अनाहत पर दोनो विद्युत समन्वय भाव में आ जाने पर, पुरूष में करूणा, मैत्री, मुदिता एवं स्त्री

में मातृत्व, प्रेम, आस्था का स्वरूप ले, अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप दे देता है। जिसके प्रतीक में मूलाधार से विशुद्धाय तक, दो प्रकाश तरंग को एक समन्वय बिन्दु पर मिलते दिखलाया जा रहा है।

साधक के अनाहत तक में कुण्डलिनी जागरण में करूणा, मैत्री का भाव इतना भर जाता है कि शक्तिरूपा स्त्रैण प्रवृति के पैदा हो जाने पर प्रेम का निर्झर झरना बहने लगे, यह स्वभाविक है ! इसी के प्रतिती में रामकृष्ण परमहंस ने प्रत्येक स्त्री में माँ का स्वरूप देखा। यहाँ तक की उनके स्त्रैण शक्ति के अनाहत पर प्रेम का स्वरूप पकड़ने में, छाती से दूध निकलने लगा। जिसको अन्ततः छीपाने का प्रयास किया गया ।

देवी के मुखमंडल पर दिव्य प्रकाश का ओरामंडल है, जो कामरहित होने पर काम, क्रोध, लोभ, मोह के सारे वलय को तोड़कर, विशुद्ध आभामय दिव्य सफेद निराकार स्वरूप पकड़ लेता है। ऊपर ओरामंडल में कुछ हरा और ब्लू लिए रंग की अभिव्यक्ति है, जो अनन्त आकाश में भी ज्ञान-विज्ञान के अनन्त अभिव्यक्ति में दर्शायी जा रही है।

नीचे सम्पुर्ण शरीर के आस-पास विभिन्न रंगो का प्रकाश तरंग है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के हिंसक चक्रवात में भी दिव्यस्वरूपा शिव-शक्ति का स्वरूप पा लेने के प्रतीक में है।

देवी को मणि माणिक्य से युक्त, मुकुट, आभूषण में एवं रेशमी वस्त्र में दिखलाया जा रहा है। यह प्रतीक है, हमारे गृहस्थ जीवन की सुख समृद्धि में रहकर भी-प्रेम, आस्था, विश्वास का जीवन जीकर, कुण्डलिनी जागरण कर अर्द्धनारीश्वर हो जाने का ।

देवी के गले में सुहाग की निशानी मंगलसूत्र है । जो हमारे वैवाहिक जीवन में भी त्रिपुरारी एवं शक्ति स्वरूपा काली के आदर्श प्रेम पूर्ण जीवन शैली को दर्शाता है। चारो हाथ में रूद्राक्ष की माला का बाला है। यह प्रतीक है, हमारे वैराग्य पूर्ण गृहस्थ जीवन में भी रहकर प्रकृति के मैथुनि गति के संस्कारयुक्त श्रृंखला में भी आत्मगति पा लेने का !

शंकर की अभिव्यक्ति में षष्ट्चक्र

(चित्र संख्या - 2)

यह चित्र शंकर के दिव्य भावदशा में आकर पारिवारिक परिवेश में, हमारे आपके गृहस्थ जीवन के दिग्दर्शन में है। कुण्डलिनी गति प्रत्येक मानव के पुरूष संस्कार में मूलाधार पर स्त्रीत्व रूपी सर्पनी एवं ब्रह्मरंध्र पर पुरूषत्व सर्प रूपी शेषनाग के रूप में दिग्दर्शित किया गया है।

प्रत्येक नारी संस्कार में मूलाधार की गर्भाशय ग्रीवा (काम बिन्दु) द्वारा, इस सृष्टि की रचना में सहभागी के रूप में पारिवारिक जीवन के, जीवन्त दर्शन को दर्शाता है।

चित्र में अनाहत चक्र तीसरे कुण्डल के खुलने के प्रारंभिक अवस्था में अर्द्धनारीश्वर के स्वरूप, कुण्डलिनी के समभाव में आ जाने पर महारेणु (न्युक्यूलियर) की गति में, स्त्री-पुरूष का लिंगिय जन्म संस्कार के एकाकार होने की स्थिति में, परम चेतन ब्रह्मदशा में आ जाने के प्रतिकात्मक में है।

जहां शिव-पार्वती, शिव स्वरूपा होकर सृष्टि के नियन्ता की श्रेणी में स्थिति प्रज्ञ हो जाते हैं। एक आंख में गणेश एवं दूसरे आंख में कार्तिकेय का चित्रण पैर नीचे करके दिखलाया गया है। मूलाधार चक्र को गणेश चक्र भी बोलते हैं। चूँकि मूलाधार पर दोनों गति अधोगति या ऊर्ध्वगति पर जाने का रास्ता है।

वास्तुशास्त्र की दृष्टि में सन्मुख गणेश, सिद्धी दायक हैं एवं पृष्टभाग दरिद्री दायक है। गणेश की प्रतिकात्मक भावदशा मूलाधार पर मल-मूत्र के गह्वर पर रहते हुए भी, मुक्तिदायनी एवं शक्तिदायनी दो मुंहे रास्ते पर साधना के अनुकूल है।

इसलिए भवन में गणेश के चित्र को गृह के पिछले दिवाल पर लगाया जाता है। दो मूर्तियों या फोटो को आगे पीछे डालकर, दोनों तरफ सन्मुख गणेश की अभिव्यक्ति में चित्र या मूर्ति को स्थापित की जाती है।

ऋद्धि-सिद्धि दो पत्नियों के रूप में एवं **द्वेशात्मक** प्रवृति में भी गणेश को दर्शाया गया है।

कार्तिकेय का चित्रण षट्चक्र के छः चक्र के प्रतिकात्मक छः सिर वाले वीरभाव में दर्शाया जाता है। ब्रह्मचर्य, अजेय, दिव्य ज्योतिर्मय एवं उज्ज्वल स्वरूप में कार्तिकेय का दिग्दर्शन है। शंकर को केवल संहारक के रूप में हम जानते हैं। लेकिन शास्त्रोक्ति है ।

शंकर, शिव-शक्ति रूपा आदिशक्ति के रूप में होने से ब्रह्मा को बांए कन्धे से एवं विष्णु को दाहिने कन्धे से उत्पन्न कर; ब्रह्मा को सृष्टि निर्माण का एवं विष्णु को पालनकर्ता के रूप में सृष्टि संचालन का दायित्व दिये। इन्हीं आध्यात्मिक चिन्तन के परिवेश में नासिक के त्र्यंवकेश्वर महादेव में सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्ता एवं संहारक के रूप में शिव को दिखलाया गया है।

लेकिन पारिवारिक परिवेश में हम आवें !

तो यह हमारे माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, बन्धु-बान्धव के आध्यात्मिक दर्शन को अभिव्यक्त करता है। हम अनादि काल से अपने पूर्वजों के वंश संस्कार द्वारा इस चौरासी लाख योनि के चक्रवात को थामे हुए हैं।

इन्हीं चक्रवात को तोड़ कर केन्द्रक में अवस्थित होने के स्वरूप में शंकर-पार्वती के साधना स्वरूप में आकर - थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि से ऊपर आ जाने का चित्रण, चित्र द्वारा मनिषियों ने समझाने का प्रयास किया है।

शिव अराधना में लिंग पूजा की विधि, द्वादश लिंग के रूप में वर्णित हैं एवं महामृत्युंजय मंत्र भी द्वादश स्वरूप में उच्चारण एवं साधना का स्वरूप है। लेकिन इस महामृत्युंजय मंत्र को राक्षस गुरु शुक्राचार्य ने प्रथमतः अर्भिभाव कर, साधना का पथ प्रशस्त किया एवं अमरत्व की बुनियाद डाली।

अतः हमें अपने पारिवारिक परिवेश को समझ, शिव और शक्ति के साधना स्वरूप में आ जाना है एवं सूक्ष्म प्राण ऊर्जा के स्वरूप को समझ, अपनी जीवन शैली को ज्योतिर्मय करना है।

बंधन

समुद्र के पास बैठने पर शीतलता माँगनी नहीं पड़ती, स्वयं आती है। वैसे ही परमात्मा के नजदीक जाने पर शान्ति, प्रेम स्वयं हमारे भावना में हिलोरे मारने लगता है और हम बंधन से नहीं बच सकते ! क्योंकि किसी को बाँधने के लिए हमें भी बंधना होगा ! चाहे प्रेम में ही बंध रहे हों !

स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर का दिग्दर्शन

(चित्र संख्या - 3)

यह चित्रण हमारे तीन शरीर स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जिसमें आत्मा अवस्थित है, उसके दिग्दर्शन में किया हैं। हमारे मेरूदण्ड का एक्स-रे लिया जाय, तो मेरूदण्ड की हड्डी, एक दूसरे पर दीप शिखा की तरह सुसज्जित दिखलाई देगी।

जो कुण्डलिनी साधना के अनुरुप जिन क्षेत्रों के कमलदल तक प्राण ऊर्जा का ज्योर्तिमय प्रकाश फैलता है, वहां तक की दीपशिखा ज्यादा प्रज्चलित दिखलाई देती है। सहस्त्रार पर एक हजार आठ कमलदल की पंखुरी, साधना ब्रह्मरंध्र तक पहुंच जाने पर, ब्रह्माण्डीय स्तर के सूक्ष्म तरंग को पकड़ लेने के संकेत में है।

पुस्तक में समझाने का प्रयास किया गया है, कि किस तरह सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर को मानसिक गति पैदाकर, अपने नियंत्रण में रखती है एवं सूक्ष्म शरीर को कारण शरीर में अवस्थित आत्मा, चित्शक्ति द्वारा अपने नियंत्रण में रखते हुए, अनन्त से प्राण ऊर्जा ग्रहण करती रहती है।

मन कोई इन्द्रीय नहीं है। यह तो ईथरीक बहाव है, जो दस इन्द्रीय को अपना गति देती रहती है। दस इन्द्रीयाँ तो अपना कार्यक्षेत्र का अलग-अलग बंटवारा करती रहती है। मन तो अन्तरमन एवं बहिरमन के सिंहासन पर बैठकर, स्थूलगामी एवं सूक्ष्मगामी नियंत्रण को अपने योनिगत चक्रवात द्वारा कायम किये रहती है।

आदमी-आदमी को सुहाता नहीं।

आदमी-आदमी को सुहाता नहीं, आदमी से अरेऽ डर रहा आदमी !
हाल इतना बुरा है, विश्वास भी, आदमी पर नहीं कर रहा आदमी !!
पालतू पशु बने पात्र विश्वास के, संग-साथी बनेगें रूदन, उपहास के !
आज विश्वास पशु पर भले हम करें, पर परोसी न विश्वास पास के !!
है न विश्वासघाती मनुज से अधिक, बस इसी भाव से भर रहा आदमी !
इस वतन का ही देखो ये परिणाम है, इस तरह आदमी आज बदनाम है !!
हम मनुज हैं मनुज का सहारा बने, डुबतो के लिए हम सहारा बने !
क्यों न पाने हमें लोग बेचैन हो, हम अगर स्नेह की पुण्य धारा बने !!
लोग कहने लगे, फिर हमें देखकर, धन्य इतिहास को कर रहा आदमी !

नैसर्गिक मिलन

(चित्र संख्या - 4)

यह चित्रण कुण्डलिनी स्वरूपा मूलाधार की सर्पनी एवं विष्णुरंध्र पर शेषनाग रूपी, विष्णु सर्प सैया पर छतरी रूपा, सर्प के रूप में दर्शायी गई है।

जीवन में अनन्तकाल से सर्प की महत्ता को मनुष्य जीवन के क्रिया-कलापों से जोड़ा गया है। बासुकी नाग को समुद्र मथन में साढ़े तीन फेरा देकर, राक्षस और देव द्वारा समुद्र मथन की प्रक्रिया, हमारे आपके मानसिक गति, अविवेक एवं विवेक के मथन गति के रूप में दर्शायी गई है। समुद्र मथन के अभिव्यक्ति को आज भी अनन्त चतुर्दशी के रूप में मनाकर बासुकी नाग की पूजा की जाती है।

सिर के पीछे दिव्य अग्नि का ओरा मंडल विशुद्धाय के सोलह कमलदल, यानि शिव-शक्ति के दिव्य भावदशा में आ जाने के द्योतक में है। जहां चारों वेद की व्याख्या ब्रह्मव्यापी होकर की गयी है।

बारह कमलदल पर आसीन कुण्डलिनी रूपा सर्पनी का स्वरूप, अनाहत के उच्चतम सूक्ष्म कम्पन्न तरंग पर पहुंच जाने के संकेत में है। जहां तक द्वैत है एवं मनुष्य योनि की ज्योतिर्मय जन्म श्रृंखला की परिधि है। जहां तक कुण्डलिनी रूपा सर्पनी, साधना स्वरूप में सुषुम्ना द्वारा पहुंचकर, मनुष्य योनि को अच्छून प्राकृतिक प्राण ऊर्जा सम्पदा से भर देती है। इन्हीं केन्द्रों तक पहुंचकर हमारे मनिषी मानव समाज को बराबर ज्योतिर्मय साधना पथ देते रहे हैं।

पुस्तक में इसी नैसर्गिक साधना स्वरूप में **भग समाधि** की व्याख्या की गयी है। पांच मिनट,पन्द्रह मिनट, आधा घंटा एवं तीन घंटे की भग समाधि को क्रमशः कुण्डलिनी जागरण कर-उर्ध्वगति, कामक्षेत्र से निकलने की गति, ज्ञानक्षेत्र में छलांग एवं ब्रह्मभाव के भावदशा में आकर, शिव-शक्ति स्वरूपा अर्द्धनारीश्वर हो जाने के स्वरूप में व्याख्या की गयी है।

थलचर, जलचर, नभचर के योनिय चक्रवात को तोड़ते हुए मनुष्य योनि के ऊपर भी जाकर दिव्य भावदशा में आ जाने के द्योतक में पुस्तक में सिद्धान्त एवं क्रियारूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ब्रह्मरंध्र की चक्रिय गति, सिर से चार अंगुल ऊपर है एवं वहीं से हम विश्व ब्रह्माण्ड के कम्पन्न गति द्वारा सम्पर्क कर पाते है। इसी के द्योतक में शेषनाग के सहत्रमुख की छतरी की व्याख्या है।

काम शक्ति भी मुक्ति का मार्ग

जिस तरह ब्रह्माण्ड की एक ईकाई परमाणु है एवं ब्रह्माण्ड की सारी प्रतीति परमुाण के ईकाई में समाहित है। इलेक्ट्राँन-प्रोटाँन; न्यूट्राँन का चक्कर काट रहा है। जो मैथुनी जगत के प्रतीति में है एवं नाभिक धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के समागम बिन्दु पर अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में महारेणु के केन्द्रक में समायी हुई, सृष्टि के नियंत्रण को थामें हुए है।

जिस तरह मनुष्य के नर-नारी स्वरूपा काम कामेश्वरी का मैथुनी ऊर्जा इस चौरासी लाख के भ्रमण चक्र को थाते हुए है। तारे, नक्षत्र, पुच्छल तारा, आकाश गंगा, ग्रह, उपग्रह सभी एक दूसरे के आकर्षण में सृष्टि की कील का परिभ्रमण कर रहे हैं।

उसी तरह हम मानव, नर-नारी स्वरूप में चौरासी लाख योनि के भ्रमण बिन्दु के अर्द्धनारीश्वर स्वरूपा, काम ऊर्जा एवं ज्ञान उर्जा के आकर्षण बिन्दु पर नाभिक के केन्द्रक की तरह अपने कर्मफल के स्वरूप में, सृष्टि के प्राण संचरना की गति में, प्राण ऊर्जा के समयक बिन्दु पर सृष्टि को थामे हुए हैं!

हम अपने तथाकथित भगवान को उनके अनेक हाथ, अनेक मुख, अनेक अस्त्र-शस्त्र, रत्न जटित मुकुट, आभूषण एवं रेशमी वस्त्रों में सुशोभित देख रहे हैं। यह वगैर काम-कामेश्वरी के आकर्षण का कैसे सम्भव है ?

इतनी बड़ी सृष्टि में, क्या ईश्वर का मानव स्वरूप ही हो सकता है !

यह तो हमारी प्राकृतिक प्रकृति, हमारे आदमयुग के संस्कार बीज एवं चौरासी लाख के बदलते, हमारे प्राण ऊर्जा के प्रतीति में हमारा ही स्वरूप है।

क्या इतने बड़े ब्रह्माण्ड में, ईश्वर यही स्वरूप हो सकता हैं ?

यह तो हमारी परिकल्पना है, जो हमारी संस्कृति, हमारे अनुवांशिक अनुक्रमणिका एवं हमारे भावजगत के अनुरूप मनिषियों का शोध प्रकरण (थेसिस) है! जो युग-युगान्तर से इन देवी-देवता के प्राण ऊर्जा एवं काम ऊर्जा के संचरण गति में ज्ञान ऊर्जा का गति पाकर, हमारे मानव समाज पर उतर गया है।

कुण्डलिनी गति भी प्राकृतिक प्राण ऊर्जा के चौरासी लाख योनिगत चक्रवात को अपने कम्पन्न तरंग द्वारा थामे हुए है।

थलचर, जलचर, नभचर को अगर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर चक्र थामें हुए है, जो कामक्षेत्र में है! तो मनुष्य योनि, देवलोक, सिद्धलोक, ऋषिलोक के संगम स्थल के सूर्यमंडल में सातलोको के योनिगत चक्रवात को, कामक्षेत्र एवं ज्ञानक्षेत्र के अन्धबिन्दु से ऊपर; ज्ञानक्षेत्र में - अनाहत, विशुद्धाय, आज्ञा चक्र एवं ब्रह्म चक्र थामें हुए है!

नक्षत्र, उल्कापिण्ड, आकाश गंगा को भी योनिगत चक्रवात में माना जा सकता है। जिसमें करोड़ों परस्पर के आकर्षण एवं विकर्षण की परिधिगत चक्रवात में, सृष्टि के अनन्त विस्तार में समागम बिन्दु बनाते हुए, ऋण और धन विद्युत की प्रतीति बनाते हुए, ईश्वर के केन्द्रक बिन्दु से आकर्षित है एवं केन्द्रक के नियन्ता बिन्दु से नियंत्रित एवं सृजित हो रहा है।

हम काम बिन्दु एवं ज्ञान बिन्दु के अंधबिन्दु पर द्वैत और अद्वैत के संगम मध्य बिन्दु पर, दिव्यराज्य में प्रवेश का द्वार मानते हैं!

लेकिन दिव्यराज्य की ज्योतिर्मय प्रकाश का साम्राज्य, वगैर अंधकार के अनन्त विस्तार के सम्भव है कहाँ !

क्योंकि ईश्वर महारेणु के केन्द्रक में समाया हुआ है! केन्द्रक तो अंधकार के असंख्य महारेणु की परिधि है! जहाँ ज्योतिर्मय प्रकाश है। तो फिर अंधकार कैसा ?

केन्द्रक के केन्द्र पर सृष्टि के नियंता की कल्पना कैसी ?

यह तो कामक्षेत्र एवं ज्ञानक्षेत्र के अन्धबिन्दु पर मैथुनी जगत की अभिव्यक्ति में, हमारा मानव जीवन है। जो चौथे शरीर, मनस शरीर की अभिव्यक्ति में सतत् हमें ईश्वरीय एवं अवतारीय सम्भावनाओं से भर, हमें एक उत्कृष्ट, नर-नारी का स्वरूप देने को प्रतिपल, प्रतिक्षण उद्त्त है।

हमारा मानवीय स्वभाव, गर्भ से ही ध्यानस्थ एवं समाधिस्थ होने की ही है

लेकिन इस मायावी संसार की योगमाया हमें- पृथ्वी, जल, वायु, आकाश के भारीय तत्वों से भर हमें अपने स्वाभावगत मानवीय संस्कार से दूर फेंकने के प्रयास में रहता है।

सृष्टि का कोई भी कम्पन का तरंग या गुरूत्वाकषण का आकर्षण, जब अपने स्वभाव के दो समंव्य बिन्दु पर आता है। तो एक नयी दिशा एवं टेलीपैथिक गति एवं बिस्फोट का स्वरूप लेता है।

जिसके आधार पर हमारी सारी इलेक्ट्रोनिक व्यवस्था कामय है।

उसी तरह जब ध्यान बिन्दु एवं काम बिन्दु अपने समागम स्थल ताण्डेन बिन्दु, जो नाभिकेन्द्र से नीचे और स्वाधिष्ठान से ऊपर का स्पर्श बिन्दु है; उसपर केवल स्पर्श बिन्दु बनाती है! तो कुण्डलिनी जैसी महाशक्ति, जो कुण्डन मारे सोई पड़ी है; एक विस्फोट पैदा कर लेती है एवं त्वरित बिजली स्वरूप में कुण्डलिनी चक्रो को स्पंदित करती दौड़ पड़ती है।

हम मानव जीवन में देखते एवं महसूस करते हैं, कि प्राणवायु लेने में क्रमवार तरीके से एक श्वॅास लेने में अन्दर के करोड़ों कोषा को ऑक्सिीजन दे जीवन्त कर देती है एवं एक श्वॅास निकलने में करोड़ों कोषा को मृत्युवत् कर कार्बनडाईऑकसाइड निकाल देती है। यह श्वॅास का आना-जाना तो क्रमवार जीवन के अन्तिम क्षण तक लगा ही रहता है।

लेकिन रेई के मथनी की तरह श्वाँस एक बिन्दु पर क्रमवार में एक बार, क्षण के छोटे अन्तराल पर जरूर रूकती है !

क्योंकि श्वाँस को पाली बदलने में कुछ क्षण का समय तो लगता ही है! जो हमें जीवन पर्यन्त प्राण शक्ति से भरे रहता है।

उसी तरह काम शक्ति अपने अद्योगति एवं उर्ध्वगति के जीवन प्रवाह में, हमें कुण्डलिनी शक्ति प्रवाह में -थलचर, जलचर एवं नभचर से सदा के लिए मुक्ति के रास्ते पर डाल, हमें योनिगत अन्धबिन्दु मानव योनि पर लाकर खड़ा करता है। जहाँ से ईश्वर के अनन्त बिस्तार में प्रवेश का पथ प्रशस्त होता है।

भूख-प्यास, शरीर की परिधि है। दुख-सुख मन की परिधि है। लेकिन ब्रह्म का अनन्त बिस्तार हमारे आत्मा की परिधि है! आत्मा तो हमारी हमेशा से विशुद्ध है और विशुद्ध रहेगी!

यह तो कर्मगत प्रधान हमारे शरीर और मन की परिधि है, जो हमें योनिगत चक्रवात में डाले हुए है। हमने अपने मानवीय स्वभावगत स्वभाव-करूणा, मैत्री, मुदिता का प्राकृतिक स्वभाव छोड़, बहिर्मन के चाबूक से प्रतारित एवं सुखानुभूति का अहसास प्राप्त कर-द्वेश, हिंसा, अपराध, वासना को अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है।

लेकिन हमारा मानवीय संस्कार तो-सत्य, अहिंसा, प्रेम के महासागर से प्लावित है। बस हमें स्वभावगत मानवीय संस्कार में अपने ध्यान ऊर्जा एवं काम ऊर्जा को लाना है!

पुस्तक में चर्चा की गई है, कि जब-जब हमारा काम वासना जागता है, तब-तब ईश्वरीय स्वरूप में स्पंदित प्राण ऊर्जा का संचरण गति काम ऊर्जा में, कुण्डलिनी शक्ति द्वारा जागृत हो उठती है। काम ऊर्जा कें स्पंदन से ऋण विद्युत की कुण्डलिनी शक्ति के कुण्डलिनी ऊर्जा के सर्पिल गति में, पाँच नाड़ियों के आधार मूलाधार बिन्दुपर, कुण्डल मारेसर्पनी फन का अपना कुण्डल तोड़ लेती है ।

काम उद्वेग में अपना फन उठा कर स्वाधिष्ठान पर, ईंगला (सूर्य स्वर), पिंगला (चन्द्र स्वर) के रूप में, अपना तमस् स्वरूपा फुफकार मार कर, रज् और वीर्य के रूप में अपना फेन तामसिक बिशैले रूप में लिंग द्वारा बाहर फेंक देती है।

इसी कामात्मक तामसिक उद्वेग के विद्युत प्रवाह के सिद्धान्त में, दो तारो को योनिगत चंद्राकार स्वरूप में दोनों छोड़ को मिलाते हुए; अगर एक छोड़ के मिलन बिन्दु को काफी ताप देकर गर्म किया जाय एंव दूसरे छोड़ के दोनों तार के मिलन बिन्दु पर काफी ठंढ़ा किया जाय; तो त्वरित विद्युत का प्रवाह दौड़ पड़ता है।

उसी तरह जब काम ऊर्जा का तामसिक ऊर्जा प्रवाह भी, मूलाधार पर कुण्डलिनी स्वरूपा सर्पनी में काम ऊर्जा प्रवाह में गति पैदा करती है; तो आज्ञा चक्र पर ध्यान बिन्दु के सघने से विद्युत के दूसरे छोड़ पर ठंढ़ा करने का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है।

कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के स्पंदन गति में चक्रो को स्पंदित करते हुए, कुण्डलिनी गति में, उर्ध्वगति पकड़ लेती है। मूलाधार पर थलचर, स्वाधिष्ठान पर जलचर एवं नाभिकुण्ड पर नभचर के कर्मबन्धित योनियों को भस्म करते हुए और तोड़ते हुए, अपना क्रमवार दो कुण्डल खोल लेती है ।

हम कभी भी इन योनियों में जन्म नहीं ले सकते! जो हमारे कामक्षेत्र की योनियाँ हैं।

इस कुण्डलिनी गति की प्रतिक्रिया, पुरूष में प्रोस्टेट ग्रन्थि एवं स्त्री में गर्भाशय के ग्रीवा पर अण्डकोष स्वरूप में, अदृश्य स्वाधिष्ठान चक्र पर अवस्थित होती है। जो कामशक्ति के उद्वेग का प्रमुख केन्द्र है।

अगर पुरूष में प्रोस्टेट ग्रन्थि एवं स्त्री में गर्भाशय के साथ इस ग्रीवा पर स्थित अण्डकोष को ऑपरेशन करके हटा दिया जाय, तो काम की वासनात्मक उद्वेग ही समाप्त हो जाती है! आज के सर्जरी विज्ञान में पुरूष के प्रोस्टेट ग्रन्थि के फुले भाग को केवल छीलकर छँटनी कर दिया जाता हैं ।

स्त्री में गर्भाशय के ग्रीवा का अण्डकोष का भाग छोडकर बच्चेदानी का ऑपरेशन किया जाता है; तो काम का उद्वेग समय के अन्तराल पर बना रहता है। स्त्री में रजस्वला होने के समय पर उसका केवल प्रतिक्रिया (इफ्केट) महसूस होता है। रजस्वला होने की कोई सम्भावना तो होती नहीं!

सभी नर-नारी में यह प्रोस्टेट ग्रंथि (पौरूष ग्रन्थि) एवं गर्भाशय की ग्रीबा पर अण्डकोष की स्थिति-बचपन, जवानी एवं बुढ़ापा की स्थिति में मौजूद ही रहता है। चूँकि यह प्रकृति संचालन का केन्द्र है।

लेकिन जीवन क्रम में सात शरीर के विकासक्रम में यह अपने निश्चित अन्तराल पर ही पूर्णता की ओर बढ़ता है। जैसे- भौतिक, शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनस शरीर का क्रमवार विकास का समय 7x4 शरीर =28 वर्ष के उम्र तक कामात्मक सभी ग्रन्थियों का विकास क्रम प्राकृतिक है एवं इस मैथुनी सृष्टि के संचालन के लिए काफी पूर्णता की आयु है।

लेकिन इसी पूर्णता की आयु में इस कामात्मक ऊर्जा को जब ध्यानात्मक ऊर्जा द्वारा सृष्टि के नियन्ता की केन्द्र की ओर मोड़ दिया जाता है; तो हम एक अलग आकाश में प्रवेश कर जाते हैं। जिसका माध्यम हमारा सुषुम्ना नाड़ी गति है एवं अद्योगमन की दिशा से ही हम उर्ध्वगति पकड़ पाते हैं।

मनस शरीर तो हमारे मानव जीवन का केन्द्रक है; जहाँ हृदय की भावनात्मक गति में हम प्रेम और आस्था में सरावोर होने की दिशा पकड़ सकते हैं। इससे ऊपर मनस शरीर, आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर एवं निर्वाण शरीर की प्राकृतिक घटना में हमारे प्राण ऊर्जा का अंकुरण एंव विकास 7x3=21 वर्ष. 7x4=28 वर्ष कुल 49 वर्ष में पूरे सात शरीर का अंकुरण एवं विकासक्रम पूराकर लेता है।

जहाँ तक हमारी शारीरिक, मानसिक क्रम में अध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, वासनात्मक एवं कामात्मक सभी के मूल में कामात्मक ऊर्जा का विकास ही समझ

में आता है। जो हमारे पूर्ण मानसिक विकासक्रम की रीढ़ की हड्डी साबित होती है।

प्रायः देखा जाता है कि पच्चास के उम्र तक काम शक्ति एवं इसके भोग की प्रवृति तो एक उत्कर्ष तक बनी रहती है। लेकिन इसके बाद यह कामात्मक उद्वेग, प्राकृतिक ढ़ग से घटने लगता है। साठ के बाद तो यह अपने ढ़लान पर होता है।

अतः पुस्तक में चर्चा की गयी है कि इस भग समाधि एवं स्पर्श समाधि का प्रयोग मनस शरीर तक जो 28 वर्ष तक है; काफी उत्साहवर्द्धक निष्पत्तियाँ दे सकती है। इसके बाद साठ (60) वर्ष तक भी इस प्रयोग को सफलता से किया जा सकता है।

लेकिन इसके बाद के प्रयोग में सहजता, ध्यान, प्राणायाम से सधा जीवन ही इस प्रयोग को उम्र के कुछ दूरी तक ले जा सकता है।

चूँकि इस प्रयोग में मूलतः काम ऊर्जा एंव ध्यान ऊर्जा का संकलन ही कुण्डलिनी जागरण का मुख्य ऊर्जा गति है।

अतः इन ऊर्जा का संकलन, उम्र के विकास एवं ढलान पर क्रमशः तीन माह, छः माह एवं एक साल के अन्तराल पर सफलता की निष्पतियाँ दे सकती है। ऊर्जावान, संस्कारवान लावण्यमयी प्रेम और आस्था से भरी, पत्नी या प्रेमिका का सहयोग भी, इस प्रायोगिक साधनाक्रम में हमें मुक्ति के रास्ते पर डाल सकता है।

पुस्तक में चर्चा की गयी है, कि साधना क्रमानुसार मूलाधार पर झिंगुर की आवाज, चिल्लपों एवं रेल की सीटी का शोर-स्वाधिष्ठान पर समुद्र किनारे बसने का शोर-नाभिकुण्ड पर मृदंग की थाप का शोर एवं अनाहत पर बाँसुरी वादन की मधुर स्वर लहरी सूनाई देती है। यह बाँसुरी वादन की मधुर ध्वनी कृष्ण के अद्धैत से उतर, द्वैत में गीता के व्याख्या के रूप में देखी जा सकती है। जहाँ अनाहत पर प्रेम और आस्था का महासागर लहराता रहता है।

इन शोरो का सद्धौन्तिक स्वरूप क्रमशः थलचर, जलचर, नभचार एवं मनुष्य योनि के चक्रवात टूटते की साधनारत प्राकृतिक गति समझ में आती है। कर्मबंधन पर जिस योनि का जितना क्रमवार की विभिन्न योनियाँ होती है; उसके भस्म होने एवं टूटने के क्रमवार में उतने साल तक साधनामय जीवन में उसी क्रमवार की ध्वनी मस्तिष्क में गुंजती

रहती है। वैसे तो प्रत्येक केन्द्र का साधना समय प्रति तीन साल की मानी गयी है।

लेकिन क्रमवार में जिस चक्र पर, जो एवं जितनी योनियाँ होती है, उसी के अनुरूप साधना का स्वरवार क्रम चलता रहता है। चाहे किसी भी चक्र पर एक साल या चार साल का समय लग सकता है।

ऋषियों की तपचर्या का क्रम प्राय प्रत्येक बारह साल पर-तमस्, रजस् एवं सतज् भावदशा एवं योनिगत चक्रवात पर पाली; चक्रानुसार साधना के अनुरूप बदलता है।

लेकिन हम जहाँ कामक्षेत्र में खड़े है, वहाँ से तो अनाहत के द्वैत तक ही, हम इस भग समाधि एवं स्पर्शसमाधि का सहारा ले सकते हैं। जहाँ तक कुण्डलिनी की गति है एवं योनिगत चक्रवात है। इससे ऊपर आत्मगति से तो अद्वैत की स्थिति है।

पाप-पुण्य, दान-धर्म से तो केवल मनुष्य योनि पर ही स्वर्ग-नर्क का कर्मबंधन डाल सकते हैं। इससे ऊपर की कोई गति नहीं है।

लेकिन कुण्डलिनी जागरण के अर्ध्वगमन से हमारा आकाश ही बदल जायगा एवं हम नियंता के श्रेणी मे आने के अधिकारी हो जायेगें !

अतः बिश्लेषण से ऐसा लगता है, कि यह जो कुण्डलिनी जागरण का मूलभूल सिद्धान्त पुस्तक में भग समाधि एवं स्पर्श समाधि के रूप में व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है; उसका मूल सिद्धान्त है, ''कामात्मक अग्नि बिन्दु पर, ध्यानात्मक शान्ति दायक शीतल बिन्दु के समागम स्थल से, कुण्डलिनी गति द्वारा सुषुम्ना में ऊर्जा पैदा करना !''

लेकिन हम जब ध्यान बिन्दु में समाहित होने लगते है, तो स्वाभावगत रूप से हमारा श्वसन गति प्राणायाम में चलने लगता है। प्राणायाम में श्वसन गति चलने का मतलब श्वाँस पेट से चलना। श्वॅास पेट से चलने पर ही नाभिकुण्ड पर अपना शीतल स्पर्श बिन्दु बनायगा ! शीतल स्पर्श बिन्दु तभी बनेगा, जब हममें सहजता का भाव आयगा!

इसलिए इस प्रयोग में ध्यान बिन्दु एवं काम बिन्दु के साथ सहजता एवं निर्भयता का भाव भी आना बहुत आवश्यक है।

लेकिन अगर हमारा श्वसनक्रिया प्राणायाम की मुद्रा में सघने का अभ्यास नहीं है; तो यह प्रयोग बहुत विध्वंशकारी हो सकता है। जो हमारे शारीरिक एंव मानसिक सारे संतुलन को असंतुलित कर सकता है एवं हमारा मनुष्य योनि ही संकट में पड़ सकता है।

इसलिए पूरे सिद्धान्त एवं प्राणायाम की श्वसन व्यवस्था को समझे वगैर, इस कुण्डलिनी साधना के भग समाधि एवं स्पर्श समाधि में साधक का उतरना अनुचित एवं प्रतिबंधित है। गुरू का निर्देशन परम आवश्यक है।

चेतना

हमारी नैसर्गिक प्रेम के विशुद्धतम- काम-कामेश्वरी की सहज भावदशा में जब कुण्डल खुलने लगती है, तो नाभिचक्र के कामकेन्द्र तक पशु भावदशा की अधोगमन की थलचर, जलचर, नभचर की योनियों को सदा के लिए भस्म कर, हमें मनस शरीर के प्राणक्षेत्र में पहुँचा देती है। जहाँ के अन्धबिन्दु से हमारी मानव योनि की यात्रा शुरू होती है।

अधोगमन की सारी वृतिया, कम्पन्न तरंग एवं चुम्बकिय क्षेत्र हम पार कर जाते हैं एवं मनुष्य योनि से नीचे की योनि में, कभी जन्म नहीं ले सकते हैं। बार-बार मनुष्य योनि प्राप्त कर हमें उर्ध्वगमन हेतु साधनामय शरीर मिलता रहता है। शिव-शक्ति का ईश्वरीय स्वरूप हमें परमशुद्ध कर अपने में एकाकार करने को हमेशा आतुर है !

आत्मा तो अपने अमरत्व में सूक्ष्म शरीर के साथ इस नरश्वर, कर्मबंधित स्थूल शरीर को बराबर गति देता रहता है ! मन ही हमारे योनिगत परिभ्रमण का कारण है।

हम चेतें !

अपने मन को मित्रवत् बना, इस अमुल्य मानव स्वरूप देवालय को- करूणा, मैत्री, मुदिता के प्रेम सरोवर में ईश्वरीय स्वरूप दें ! अन्तर मन ही इस बिराट ब्रह्म का दिव्य सिंहासन है। अन्तर चेतना ही हमारी साक्षी भावदशा का अन्तर केन्द्रीभूत ईश्वरीय स्वरूप है।

काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा का संकलन

शरीर की तीन स्थिति, कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर की स्थिति में, षट्चक्र में सात चक्रो का वर्णन पुस्तक में किया गया है। जिसमें सहस्त्रार, आज्ञा चक्र - कारण शरीर में है, विशुद्धाय अनाहत एवं आधा नाभिकुण्ड का उर्ध्व भाग- सूक्ष्म शरीर में है । अनाहत से नीचे आधा नाभि चक्र, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार, स्थूल शरीर द्वारा आत्मगति एवं कुण्डलिनी गति का स्पंदन क्षेत्र है । जो सभी सुषुन्ना के प्रवाह नाड़ी पर है ।

हमारे स्थूल शरीर से जुड़े इन अढ़ाई चक्र की उर्ध्व गति की शक्ति प्रवाह से ही, ऊपर के सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर में, हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक स्पंदन गति है। जो मनः शक्ति, चितूशक्ति एवं आत्म शक्ति द्वारा इस पिण्ड स्वरूपा मनुष्य द्वारा, पिण्ड स्वरूप में ब्रह्मव्यापी है ।

इस स्थूल शरीर के किसी भी क्रिया-कलाप को छोड़कर हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं ! चूँकि जिस चक्र के द्वारा हमारा प्राण शरीर, स्थूल शरीर को छोड़कर मृत्यु की स्थिति में निकलता है ! वहीं चक्र फिर हमारे संस्कार जन्य इस वासना जगत में आने का गर्भ द्वार है !

लेकिन जैसी मानसिकता एवं कर्मबंधित, माता-पिता का संस्कार होता है एवं जैसा-जैसी भावदशा गर्भाधान के समय रहता है; वैसा ही कर्मबंधित आत्मा का प्रवेश गर्भ में होकर, हम मानव इस वासना जगत को चलाते है !

इसलिए इस स्थूल जगत से जुड़े इन अढ़ाई चक्रों की गति हमारे मानवीय क्रिया-कलाप एवं संस्कार के अनुरूप अपना स्वरूप पकड़े रहता है ।

मूलाधार शक्ति का केन्द्र, स्वाधिष्ठान काम केन्द्र और नाभिकुण्ड श्वसन क्रिया द्वारा संकल्प का केन्द्र है! जो हमारे इसी जगत के क्रिया-कलाप में है ।

सृष्टि के मैथुनात्मक गति में हमारी सारी ऊर्जा का केन्द्र हमारा काम केन्द्र हो जाता है। जिसको शक्ति ऊर्जा द्वारा मूलाधार पर एवं प्राणवायु द्वारा नाभिकेन्द्र पर, स्वाधिष्ठान को शक्ति दिये रहता है ।

इसलिए हमारे द्वन्द्व, हमारे अपमान, हमारी हिंसा, हमारी अहिंसा एवं हमारी सारी मनोवृतियों का केन्द्र हमारा कामक्षेत्र हो जाता है। इसी काम केन्द्र के शक्ति ऊर्जा के निर्देशन में हमारी मानसिक गति चलती रहती है।

चूँकि कामकेन्द्र स्वाधिष्ठान, शरीर में चक्रों की स्थिति में सबसे ज्यादा सक्रिय एवं सधन स्पंदन गति में रहता है।

इसलिए इसके शक्ति उत्पादन केन्द्र को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। जिसके साधना स्वरूप में यह काम ऊर्जा और ध्यान ऊर्जा के संकलन की पद्धति बतायी जा रही है ।

चूँकि जो कामकेन्द्र पर उपरोक्त शक्ति केन्द्रीत हो जाती है । अगर हम उसका रूपान्तरण ध्यान योग द्वारा कर लें। तो कामात्मक प्रवृत से ऊपर उठकर, हमें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने में सुविधा होगी एवं हम ब्रह्मचारी के श्रेणी में गिने जायेगें ! जैसे कृष्ण और जनक, ब्रह्मचारी कृष्ण एवं विदेह राजा जनक कहलाये !

हम गृहस्थ जीवन में रहकर भी, योग के उच्च श्रेणी में माने जाने वाले विंहगम योग की वीर भावदशा को साकार कर सकते हैं। जिसमें प्रेम की महत्वपूर्ण भूमिका है एवं कामात्मक ऊर्जा का रूपान्तरण ही, हमें विहंगम मार्ग एवं मातंगी मार्ग पर ले जा सकती है।

चूँकि प्रेम, स्नेह, ममता जो भी स्वरूप है, सब स्त्री प्रधान स्वरूप में शक्तिदायनी है। चाहे पत्नी, प्रेमिका, माता का ही स्वरूप क्यों नहीं हो! कामऊर्जा से रूपान्तरित स्वरूप ही प्रेम, स्नेह, ममता का भावनात्मक स्वरूप है एवं कुण्डलिनी गति में सूक्ष्म शरीर में प्रवेश का स्पंदनशील ऊर्जा गति है। जो काम ऊर्जा कुण्डलिनी के सर्पिल वेग के रूप में कामवेग में वीर्य को लिंग द्वारा बाहर फेंक देती है, वही कामऊर्जा ध्यान ऊर्जा का गति पाकर, हमें उर्ध्वगामी कर देती है।

अतः नीचे वर्णित प्रयोग काम ऊर्जा को ध्यान ऊर्जा में परिवर्तित करने का, प्रकृतिसम्मत सिद्धान्त पर आधरित विहंगम योग का स्वरूप है। जिसकी साधना से हम काम की वासनात्मक स्वरूप को नियंत्रित कर सकते हैं एवं उस शक्ति का उपयोग ध्यान ऊर्जा में कर, कुण्डलिनी गति को उर्ध्वगति दे सकते हैं। जहाँ बिन्दु साधना की परम उच्चगति है ।

पुस्तक में वर्णन किया गया है, कि ईंगला, पिंगला नाड़ी आपस में लिपटते हुए दोनो आँख की कौरनियाँ में फैल गयी है । अगर हम आँख बंद कर ही स्थिर हो जाने का स्वरूप, ध्यान का स्वरूप मानते हैं, तो हम कभी अपने साधना में

सफलीभूत नहीं हो सकते हैं। आँख की पुतलियाँ हमारे बहिरजगत को देखती है। लेकिन हमारे आज्ञा चक्र पर उपस्थित तीसरा नेत्र, जो पिनियल ग्लैण्ड द्वारा श्रावित सेरोटोनिन रसायन से प्रभावित होती हैं, वह सुषुप्तावस्था में रहने के करण हम अंतरजगत से बिलकुल टूट कर रह जाते है।

इसलिए ध्यान प्रक्रिया में हमारी आँख साम्भवी मुद्रा में कौरनियाँ ऊपर की ओर उलटी (चढ़ी) हुई होनी चाहिए । हम ध्यान की स्थिति में अपने निगेटिभ एव पोजेटिभ विद्युत क्रम का केन्द्र, कौरनियाँ ऊपर चढ़ाकर उसका केन्द्र भूमध्य के आज्ञा चक्र के मध्य में तीसरी आँख पर लगावें ! लगातार अभ्यास से कौरनियाँ ऊपर तो उलटेगी! लेकिन मस्तक पर बल नहीं पड़ेगा ! मस्तक पर बल, हमें तांत्रिक की श्रेणी में ले जायेगा ।

अतः साम्भवी मुद्रा में दोनो आँख की कौरनियाँ (पुतली) आज्ञा चक्र पर मिलाने से, हमारी इस विहंगम योग की वीर भावदशा की साधना सहजता से सफली भूत हो सकती है एवं हम अंतरमुखि होकर, अपने कर्मबंधन रहित शरीर, आत्म शरीर में प्रवेश कर आत्मगति पा सकते है ।

रात्री सोने का समय या ब्रह्ममुहुर्त का शांत वातावरण हो ! वातावरण में खुलापन हो एवं पवित्रता की पूरी व्यवस्था हो ! पुस्तक में वर्णित क्रियारूप में जिस तरह शवासन की प्रक्रिया है, उस तरह अपना शारीरिक एवं मानसिक व्यवस्था बनायें ! आसन कड़े तख्त पर हो तो बेहतर । चूँकि हमारी ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा प्रवाह मूलाधार द्वारा गुर्दा मार्ग से है । साधना में सफलता पर कुण्डलिनी के त्वरित विद्युत वेग में, अगर हमारा विद्युत ऊर्जा भूमिगत हो जायगा, तो हमारा अंग-भंग, मानसिक बिक्षिप्ता या मृत्यु तक हो सकती है ।

हम अपने सवासन की मुद्रा में ऊर्ध्व (चित लेटकर) शरीर को ढ़ीला छोड़ने की प्रक्रिया शुरू करें ! मन जहाँ भागे, भागने दें ! अपने श्वाँस गति के आने-जाने पर ध्यान दें, कि एक श्वाँस से प्राण ऊर्जा आ रही है एवं दूसरे श्वाँस से प्राण ऊर्जा जा रही है ।

मन स्वतः केन्द्रीत होने की भावदशा बनाने लगेगा । लगभग पाँच मिनट बाद अपने दोने मुठियाँ भीचते हुए एवं सर्वांग शरीर को तानते हुए, स्वाधिष्ठान के ईन्द्री के मूलपर बल डालते हुए, नितम्ब से शरीर को ऊपर उठाना शुरू करें !

धीरे-धीरे ध्यान बिन्दु कायम करते हुए, शरीर ढ़ीला छोड़ते जाय ! ऐसा पाँच मिनट में तीन वार करें !

स्वाधिष्ठान जो कामकेन्द्र है, उसपर 'ऊँ' का ध्यान इस तरह करें। जो 'ऊँ' स्वाधिष्ठान के कामकेन्द्र में अस्त होते सूर्य की तरह डूब रहा है । पूरा 'ऊँ' को शक्ति पूँज में डूब जाने दें ! 'ऊँ' के चंद्राकार के चन्द्र बिन्दु को, केवल स्वाधिष्ठान केन्द्र पर आभामय प्रकाश के स्वरूप को ध्यान मे लायें !

चूँकि **'ऊँ'** में भी तो स्वरूप है! जबकि ईश्वर रेणु में समाया हुआ है। रेणु का केन्द्रक तो अणु के सूक्ष्मतम् से सूक्ष्मतम् बिन्दु में है । इसलिए बिन्दु में जितनी ताकत है। सृष्टि में और किसी चीज में इतनी ताकत नहीं है ।

ध्यान समाधि में अगर हम फाँसी पर लटके मृतवत् शरीर के गर्दन के लटक जाने की तरह, ध्यान में एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाये, तो हमने ईश्वर के केन्द्रक को ही थाम लिया ! या ईश्वर ने ही हमें थाम लिया !

रूप तो हमारे जगत की योगमाया है । जिसके आकार की साधना यहाँ के योगमाया में ऊलझना है। ऋण विद्युत बिन्दु एवं धन विद्युत बिन्दु का समागम स्थल ही ध्यान बिन्दु है; जो हमें अर्द्धनारीश्वर कर स्थितिप्रज्ञ कर देता है ।

काम का ध्यान हो "ऊँ" का ध्यान हो, या राम का ध्यान हो! हम अपने को जितना खाली (भैक्युम) कर पायेगें, हम उतने सहज हो पायेगें एवं ईश्वर के केन्द्रक के उतने समीप हो पायेगें !

हमारा खालीपन ही हमारा शून्य बिन्दु है। इसी प्रकाशवान शून्य बिन्दु पर स्वाधिष्ठान के केन्द्रक पर, इस तरह ध्यान लगाना है! जैसे केन्द्रक से वृताकार विद्युत स्फुलिंग निकल रही है । साधना के मानसिक अनुकुलता में यह परिस्थिति दस मिनट तक ले जाना है !

इस अंतराल में हमारे शरीर की गर्मी बढ़ जायगी । शरीर में सिहरन पैदा होती रहेगी । सूक्ष्मतम कम्पन्न की स्थिति में सम्भोग के आनन्द की स्थिति जैसी, आनन्दायक महसूस होगी । ध्यान केन्द्र थोड़ा गर्म महसूस होने लगेगा । शरीर सिहरने एवं काँपने दे !

स्वाधिष्ठान के केन्द्रक पर घूमते विद्युतिय स्फुलिंग को महसूस करें ! की

वह केन्द्रक में समाकर मेरूडण्ड द्वारा विद्युत स्फुलिंग स्वरूप में, वह ध्यान बिन्दु, आज्ञा चक्र के भ्रूमध्य बिन्दु पर पहुँच गयी है ! उस आभामय केन्द्रक पर अपना ध्यान, शून्य बिन्दु की तरह केन्द्रीत करें ! अब स्वाधिष्ठान केन्द्र को बिलकुल भूल जायें! यह स्थिति भी दस मिनट तक रखें !

कुल आधा घंटा का ध्यान, नित्य रात्रि और प्रातः वेला में तीन माह तक करने से सफलता आनी शुरू हो जायगी । साल भर इस तरह काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा का संकलन एवं दो साल तक प्राणायाम मुद्रा में अनुलोम-विलोम, कपालभाँती एवं प्राणाकर्षण प्राणायाम के विधिवत साधनारत् अभ्यास करने के बाद ही, इस भग समाधि एवं स्पर्श समाधि के क्रियारूप में उतरें !

सफलता निश्चित है ! साधना में स्त्री पुरूष दोनो का प्रेममय एवं भावमय रहना आवश्य है !

विशेष चर्चा पुस्तक के तीसरे भाग के उपसंहार में देखें एवं सूक्ष्मतम विवेचना एवं निर्देशन पुस्तक के तीनों भाग में पढ़कर ही, इस कुण्डलिनी जागरण के पद्धति की विशेष जानकारी लें !

साधना रात्रि में भोजन के तीन घंटा उपरांत एवं प्रातः में नित्यक्रिया से निवृत होकर करें । किसी भी प्रकार के शारीरीक एवं मानसिक विकार से अपने को मुक्त रखें! साधना से पहले ब्रजासन में बैठकर पेट पर (एण्टीकलोक वाइज) धुमावदार गति में, उलटा-सीध दस बार इधर एवं दस बार उधर कर के नाभि के चारो ओर मालिश करें !

मालिश में पाँच मिनट के अंदर तलहट्टी एवं सूखे तौलिए का प्रयोग करें विशुद्धतम ध्यानावस्था के लिए, न ही किसी रूप का ध्यान करें, और न ही कोई मंत्र पाठ करें! समयानुकुल समतुलित भोजन करें ! फल में नारंगी, संतरा, बेदाना के जुस का प्रयोग करें !

साधना निवस्त्र होकर श्वासन मुद्रा में करें। और जरूरत पड़े, तो ढ़िला ढ़ाला कम से कम वस्त्र का उपयोग करें !

साधना का स्थान- निर्जन, निर्मल एवं एकान्त का हो! पति-पत्नी अपने उम्र एवं अवस्था के अनुरूप मानसिक एवं शारीरिक रूप में निश्चित अवधि तक ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करें !

कुण्डलिनी जागरण का प्रयोग दिखाने के लिए नहीं है! यह प्रयोग लाखों, करोड़ों, वर्ष के योनिगत चक्रवात तोड़ने के लिए है। जिसमें-थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि से भी ऊपर देवलोक, ऋषिलोक की श्रृंखला प्राप्त करनी है। इसलिए किसी भी तरह की सांसरिक आकांक्षाओं एवं कामनाओं की भावदशा नहीं बनानी है! कुण्डलिनी जागरण की क्रिया को क्रियारूप देने में गुरू का सानिध्य एवं निर्देशन आवश्यक है।

इन्सान

एक दिन भी जी, मगर ईन्सान बनकर जी !
आपदा आये भले, मत छोड़ना संकल्प अपने !
हो सधन, मत टूटने देना कभी सुकुमार सपने !!
देखना मुड़कर भला क्या, पंख बींधे कंटको को !
मत कभी देना महत्ता, मार्ग व्यापी संकटो को !
एक दिन जी, सफल अभियान बनकर जी !
एक दिन ही जी मगर इन्सान बनकर जी !!
एक छोटी नाव, उसके ही सहारे पार जाना !
हो भले तुफान राही, सोचना मत जुझ जाना !!
कष्ट सहकर भी स्वयं इस विश्व का उपकार कर जाना !
छोड़ जा पद चिन्ह अपने, तीर्थ नव निर्माण कर जा !!
एक दिन ही जी, जगत की शान बनकर जी !

एक दिन भी जी, मगर इनसान बनकर जी !!
चमक बिजली सा जगत में जब कभी छाये घटायें !
बन अडिग चट्टान, तुमसे आँधियाँ जब जुझ जायें !!
कुछ नहीं कठनाईयाँ, विश्वास की ज्वाला जला ले !
युग नया निर्माण करने, कि अटल सौंगध खा ले !!
एक दिन भी जी मगर इन्सान बनकर जी !

(प्रहलाद)

काम क्रीड़ा द्वारा कुण्डलिनी जागरण

विवरण से प्राप्त 1 से 14 तक का क्रियारूप का व्यवहारिक ज्ञान को आधारभूत रूप देने के बाद जब साधक अन्तिम तैयारी में पहुँच जायगें तो कुछ गुप्त निम्नकिंत साधना से कुण्डलिनी जागरण की दिव्यज्योति स्वभाविक रूप से आसानी से साधक में प्रगट हो सकती है।

ब्रह्ममुर्हुत का समय हो, साधक में, स्त्री का बाँया साँस यानी चन्द्र स्वर एवं पुरूष का सूर्य स्वर यानी दाहिना साँस की सामान्य गति हो। स्त्री और पुरूष में कामुकता का वेग काम-कला के रूप में आरंभ हो गया हो, तो पुरूष अपने को शिव रूपा और पत्नी अपने को शक्ति रूपा मानकर ध्यानस्थ होने के बाद समागम करें तो कुण्डलिनी की ज्योति त्वरित बिजली की तरह साधक पर गिर-कर उन्हें कृत्य-कृत्य कर सकती है।

याद रहे आसन या पवित्रता से संयागे गये बिस्तर पर ही आसन ध्यान एवं कामेश्वरी का क्रीड़ा खेल खेला जाय। नहीं तो त्वरित कुण्डलिनी का वेग ''अर्थ'' होने से साधक का बहुत अनिष्ट कर सकती है।

दोनो हाथ जोड़ने पर, अपलक ध्यानस्थ होने पर एवं कामवेग के समय ध्यानस्थ होने पर ऊर्जा इन्टरलौक (बंद) हो जाता है। उसका प्रवाह जो इन्द्रीय के द्वारा कुण्डलिनी के बिष का फेन उगलने के रूप में होता है, वह उर्ध्वगति के अग्नि के रूप में प्रज्वलित होकर मूलाधार केन्द्र को प्रकाशित कर देती है। जहाँ अगम-अथाह शक्ति का भंडार है। अग्नि की प्रवृति हमेशा आकाश की ओर होती है।

इसलिए मूलाधार से उठने वाले दिव्यज्योति कुण्डलिनी की अग्नि भी ऊपर उठकर ब्रह्मरंध्र में स्थापित शेषनाग से मिलने के लिए सुषुप्ना नाड़ी द्वारा सक्रिय हो उठती है। साधक जिस-जिस केन्द्र के दल को अपने दिव्य ज्योति की अग्नि से प्रकाशित कर पाता है। वहाँ से जुड़े हर योनि से मुक्ति मिल जाती है,

उन-उन केन्द्रों से जुड़े ग्लैंडस से जुड़े शरीर के अंग का कायाकल्प होने लगता है। उन-उन फ्रिक्वेंशी में जो देवी-देवता, हाकनी, डाकनी लोक होता है। उन लोको की सिद्धियाँ उपलब्ध होने लगती है।

जो नये साधक हैं, उनके लिए यह प्रयोग कम से कम दो साल तक विधिवत क्रियारूप एवं सिद्धान्त को समझने के बाद ही करना चाहिए।

लेकिन जो साधक साधना क्षेत्र में पहले से हैं एवं आयाम प्राणायाम एवं ध्यान साधना को विधिवत साधा है। उनके लिए कुछ नीचे के निर्देश दिये जा रहे हैं।

स्त्रियाँ सोलह वर्ष में पूर्णता प्राप्त करती है एवं पुरूष 21 वर्ष में पूर्णता प्राप्त करते हैं।

लेकिन आज के वातावरण में स्त्री 20 वर्ष एवं पुरूष पच्चीस वर्ष की अवस्था में इस प्रयोग को मनशा बाचा कर्मना से कम से कम प्रति छः माह का ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने के दो साल बाद ही सफलता की सम्भावना है। जब तक ऊर्जा का संकलन कामक्षेत्र में न हो जाय तबतक सफलता सम्भव नहीं है।

चालीस से साठ वर्ष के साधक को यह ब्रह्मचर्य धर्म छः माह से अधिक तक पालन करने से पूर्ण सफलता की सम्भावना है। कामकेन्द्र पर ऊर्जा के संकलन के साथ काम-कामेश्वरी के क्रीड़ा के समय ध्यान विद्या द्वारा मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान पर इन्टरलौक की साधना ही इस कुण्डलिनी जागरण की मूलभित्ति है।

इस विधि में संकल्पवान, धैर्यवान, एवं आत्मशक्ति वाले की सफलता सुनिश्चित है। ब्रह्ममुर्हुत होते-होते शरीर के सारे नर्भ प्राकृतिक रूप से साम्यावस्था में आकर शान्त होकर प्रकृति प्रदत ऊर्जा लेने लगते हैं। जो समय केवल दस मिनट का होता है।

अतः इस काम क्रिया के रूप को शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूर्णता प्राप्त करने के बाद ही प्रयोग उचित है। क्योंकि प्रकृति प्रदत उर्जा भी काम-कामेश्वरी के शुद्धतम ध्यान की अवस्था में आने पर मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान पर इन्टरलौक (बंद) होकर, ऊर्जा उर्ध्वगति को पकड़ पाय।

चूंकि पुरूष का प्रोस्टेट ग्लैण्ड एवं स्त्री के गर्भाशय के ऊपर अंडकोश की स्थिति इन्ही केन्द्रों के बीच होती है। जो काम वासना को ध्यान की उच्चतम अवस्था में इन्टरलौक (बन्द) होकर, पुरूष को शिव और स्त्री को शक्ति रूपा ध्यानस्थ स्वरूप प्रदान कर देती है !

काम-कामेश्वरी का शुद्धतम रूप का ध्यान करते हुए काम-क्रीड़ा का वेग ही कुण्डलिनी के अग्नि को प्रज्वलित कर ब्रह्मतत्व में मिलने को, प्रकृति प्रदत स्पाइनल कौड में स्थित शुषुम्ना नाड़ी की गति में, पहले तो घुमावदार गति से फिर अनाहत से सीधा रास्ता पकड़ लेती हैं ।

एवं आज्ञाचक्र होते हुए ब्रह्मरंध्र के क्षिरसागर में विष्णु शैया के सर्प से मिलने को गतिमान हो जाती है।

पाँच हजार न्यूरान सेल जो प्रतिदिन अपना बलिदान कर एक बिन्दु अमृत ललनाचक्र पर टपकाता है। इसी दस मिनट के समय में साम्यावस्था को ऋषिगण अपने ध्यान विद्या द्वारा पन्द्रह मिनट आधा घंटा कर लेते हैं, तो मनोमय शरीर तक प्रकृति के अदभुत चमत्कारो से भर जाते हैं।

पूर्व जन्म के कुण्डलिनी जागृत संस्कार के लोग यह प्रयोग करते वक्त भी समाधि में जा सकते हैं। समाधि एक आयोजित मृत्यु है। उस समय समाधि से लौटाने के लिए पत्नी रूपी भैरवी की परम आवश्कता है। नाभि एवं आज्ञाचक्र स्पर्स के लिए। मनोमय शरीर के बाद अद्वैत है, उससे ऊपर जाने पर यही साम्यावस्था की स्थिति स्थिर हो जाती है एवं साधक ब्रह्मलिन होकर ब्रह्मस्वरूपा हो जाते हैं।

दैनिक साधना अगर ब्रह्मनिष्ट गुरू के आश्रम में रहकर गुरू के साधना काल में उनके सतज् ओरामंडल में अपना ओरामंडल मिलाकर साधना किया जाय तो साधक स्वयं **ब्रह्मनिष्ट की श्रेणी में सहजभाव में चला आता है।**

प्रेमात्मक ओरामंडल

हम मनुष्य रूप में नर-नारी रहते तो एक साथ ही है ! लेकिन परमाणविक ओरामंडल बह्माण्डीय स्वरूप में विलकुल अलग स्वतंत्र ईकाई बनाये रहता है।

उसके चारो ओर असंख्य विद्युत तरंग, कम्पन्न तरंग, गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र हमेशा क्रियाशील रहता है। लेकिन प्रतंक्षतः हम उसके प्रभाव से अछूते एवं अनाभिज्ञ रहते हैं । उसी तरह हमारे षट्चक्रो की विद्युत स्फुलिंग का ओरामंडलीय प्रभाव क्षेत्र अनन्त तक हो सकता है।

लेकिन ज्ञातव्य में आलिंगवद्ध साथ रहकर भी, जबतक एक दूसरे का कम्पन्न तरंग, मेगासाईकल, मेगाहर्टस में अपना मैगनेटिक फिल्ड एक दूसरे के आत्मिक एवं प्रेमात्मकस्वरूप में मानसिक विद्युतिय तरंग का ओरामंडलिय स्वरूप नहीं बना लेता हैं ! तबतक हम कुण्डलिनी जागरण में एक शक्तिशाली विद्युत तरंग नहीं बना सकते !

अतः स्त्री पुरूष का प्रेमाआलिंगन में भी मानसिक भावतरंग की समरूपता परम आवश्यक है।

कुण्डलिनी शक्ति का मूल केन्द्र कामकेन्द्र

कामकेन्द्र - शक्ति के निष्कासन का और ज्ञानकेन्द्र में आज्ञाचक्र शक्ति के आमंत्रण का केन्द्र है।

मूलाधार की शक्ति ऋणात्मक और सहस्त्रार की शक्ति घनात्मक होती है।

शुरू में जो ध्यानी साधक हैं। छः महीने से दो साल के अभ्यास के बाद पत्नी को भैरवी बना कर, स्वयं शिव और भैरवी को शक्तिरूपा का संस्कार देकर कुछ निश्चित विधि है, उसके अनुरूप प्रयोग करे। तो मूलाधार पर कुण्डलिनी का जागरण बहुत सहज तरीके से हो सकता है।

इसके बाद के अभ्यास में साधक के करूणा, मैत्री, एवं मुदिता से भरे होने के बाद ही आगे की यात्रा सहज रूप से संभव है।

इसमें संतुष्ट एवं आस्थावान पत्नी ही सहायक हो सकती है। केवल मूलाधार पर कुण्डलिनी के ज्योति जल जाने से साधक में कोई पूर्णता नहीं आती है। पूर्णता तो इस ज्योति को आगे ले जाने में है। समर्थगुरु का निर्देशन ही साधक को आगे ले जा सकता है।

वैसे आगे इस ज्योति को ले जाने के लिए सांसारिक प्रलोभन से कुछ ऊपर उठना होगा। जो ज्योति के जलते ही साधक में रूपान्तरण करना शुरू कर देती है।

मूलाधार और आज्ञाचक्र की प्रधानता यहाँ समझ में आती है। हमें सुषुम्ना के रास्ते में पड़ने वाले तमाम चक्रों के जागरण से मिलने वाले सिद्धियों से ऊपर उठना होगा।

दो साल के अन्दर, प्रतिमाह में सात दिन तक आयाम प्रणायाम की साधना करते हुए बिलकुल शांत वातावरण में कुछ निश्चित अवधि तक -

(१) कान से नहीं सुनना - श्रवण की ऊर्जा नियोजित होती है।

(२) मुँह से नहीं बोलकर - वाक् ऊर्जा नियाजित होती है।

(३) आँख ध्यानस्थ रखकर- मन की ऊर्जा को जमा करना होगा।

प्राकृतिक नियम के अनुसार जो भी अतिरिक्त ऊर्जा होती है वह कामकेन्द्र पर भागती है। यह जो ऊर्जा काम केन्द्र पर जमा हो रही है, उसका दैनिक उपयोग हम इस तरह करेंगे।

योगनिद्रा का अभ्यास करते हुए सारी ऊर्जा को मूलाधार पर केन्द्रित करने का प्रयास ध्यान द्वारा करेंगे। यानी ॐ का ध्यान करते हुए मूलाधार पर योगनिद्रा की अवस्था में ध्यान करेंगे।

ऐसा महसूस करेंगे कि, मेरे मूलाधार पर शक्ति से कम्पन्न पैदा हो रहा है। सारी शक्ति आज्ञाचक्र पर केन्द्रीत हो रही है।

अगर आपकी साधना में ध्यान का बल है, तो कुण्डलिनी की सर्पिनी त्वरित वेग से कुण्डलिनी सर्प से मिलन को आज्ञा चक्र से बढ़ कर ब्रह्मरंध्र में समाहित हो जायेगी।

लेकिन इसमें कुण्डलिनी का त्वरित बिजली का वेग बहुत प्रबल होता है। जिसको नियोजित साधक ही सम्हाल सकते हैं।

चूंकि साधक पोजेटिव पोल से आगे बढ़ता है। वह कच्छप मार्ग की तरह निगेटिव(-), पोजेटिव(+) पोल का भेदन एवं साधना करते हुए नहीं बढ़ता है। इसलिए स्त्रीतत्व का पास में रहना जरूरी होता है।

चूंकि उपयुक्त स्त्री आपके सहयोग में निगेटिव पोल का काम करती है। याद रखें पदमिनी और चित्रणी तरह की पत्नी ही आपका सहयोग कर सकती है।

प्रत्येक स्त्री आदिशक्ति रूपा, मातृरूपा है। लेकिन उस आदिशक्ति का विकास तो मैथुनात्मक औरआनन्दपरक बगैर रति के तो सम्भव नहीं है।पारिवारिक, सामाजिक, व्यवहारिक, सांसारिक जितने भी लौकिक पूजा, उपासना साधना आदि अगर शक्ति साधना के साथ देवताओं की साधना है, तो वे सब आकर्षणात्मक कामात्मक एवं मैथुनात्म सृष्टि के प्रतीक में है एवं यही महामाया है।

जो अज्ञान और अविद्या के प्रतीक में चौथे शरीर से ऊपर जाने पर स्वप्नवत प्रतीत होने लगता है।

कुण्डलिनी शक्ति हर मनुष्य में व्यष्टि रूप में है, जो साधना के बल पर साम्यावस्था में आने पर समष्टि रूप में पूरे ब्रह्माण्ड में चैतन्य एवं क्रियाशील है।

गर्भस्थ शिशु के पूर्णविकास के उपरान्त, कुण्डलिनी गर्भावस्था में ही जागृत हो जाता है। लेकिन गर्भ से बाहर निकलते ही भूमिगत वातावरण में निंदित हो जाता है। मनुष्य के जाग्रत अवस्था में कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में रहती है।

स्वप्नावस्था में तन्द्रिल रहती है। पहली अवस्था में स्थूल शरिर से सम्बन्ध रहता है। लेकिन स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर से कुण्डलिनी संबंध बनाये रखती है। जब हम साधना के बल पर कुण्डलिनी को जागृत कर उर्ध्वगति पकड़ा लेते हैं, तो उसका संबंध कारण शरीर से हो जाता है।

जहां आत्मशक्ति लिए आत्मा बैठी है। शरीर में स्थित शिव-शक्ति के मिलन से ही सामरस्य कुण्डलिनी योग को, पातंजलि योग से ऊपर माना गया है। क्योंकि पतंजलि योग के धारणा और ध्यान की स्थिति आने पर ही काम-कामेश्वरी के क्रिया योग में सफलता मिल सकती है ।

मूलाधार की सर्पिनी ब्रह्मरंध्र के सर्प से मिलकर व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर हो, पूरे ब्रह्माण्डीय ऊर्जा स्रोत से ओतप्रोत हो सकती है।

गुंज

हमारे निजता की भावदशा की आत्मकेन्द्रीत गुंज ही हमें 'स्व' में आत्मकेन्द्रीत कर ईश्वरीय केन्द्रक का स्वरूप दे देती है।

गुम्बजनुमा शिव मंदिर में 'ऊँ' का ध्वनी तरंग, हम भाव ऊर्जा तरंग में ध्वनित करते हैं! तो ध्वनी ऊर्जा गुम्बज के प्रत्येक अणुओं से टकरा कर एवं एक जैसी ध्वनियों का घनिभूत केन्द्रीत प्राण ऊर्जा का स्वरूप पकड़, हमपर बरस जाता है एवं मुर्ति भी प्राणवान हो उठती है।

उसी तरह हमारी प्रार्थनामय ध्यान ऊर्जा हमारे बहिरमन एवं अन्तरमन के केन्द्रीत बिचार तरंग को धनीभूत कर, हमारे स्थूल शरीर द्वारा, सूक्ष्म शरीर में सूर्य किरण के लेन्शीकृत ताप ऊर्जा की तरह केन्द्रीभूत हो, हमें आत्मकेन्द्रीत कर, द्वैत से अद्वैत में छलाँग लगाने का कारण बनता है।

इन्ही गुंजित ध्वनी ऊर्जा को केन्द्रीभूत एवं घनीभूत करने के लिए मंदिरों में गुम्बज बनाये जाते है एवं केवल एक दरवाजा दिया जाता है एवं ज्यामितिकल ढंग से बने पिरामिड में सूर्य, नक्षत्रों, तारों का ज्योति किरण केन्द्रीत होकर हमें एकाग्र कर देता है। उसी तरह हमें अपने मानसिक तरंग को घनीभूत एवं केन्द्रीभूत करने के लिए बिचार तरंग से खाली रखना चाहिए। चूँकि हमारा बिचार तरंग ही हमारे ध्यान ऊर्जा को केन्द्रीत नहीं होने देता है।

काम ''देवता'' कामेश्वरी ''देवालय''

याद रखों जब-जब कामवासना जागती है, आपका ईश्वर जागता है !

कामवासना लाउन्चर (भेदनस्थ्ल) है, आपके द्वारा ध्यानस्त होने पर ''ऊँ'' के उपग्रह को प्रभु तक पहुँचाने का।

आज का समाज कामवासना से इतना विक्षिप्त हो रहा है, कि उसकी चर्चा से ही उसको भय हो रहा है।

जब हम किसी भी आदत को छोड़ने के लिए कसम खाते हैं, या संकल्प लेते हैं, तो इसका मतलब है, वह बहुत गहराई तक आपके अन्दर व्याप्त हैं। यही हाल कामवासना का है। पूरे संसार के सृष्टि की मूलभित्ति है, लेकिन समाज इसकी बुराइयों से इतना प्रभाहित है, कि कर्णघंटक की तरह ''नहीं सुनना चाहुँगा'' के लिए कान डुलाए चली जा रही है।

कामवासना बिष से आप इतना जल रहे हो, लेकिन इसकी अमृत होने का लाभ क्यों नहीं उठाना चाहते?

देवालय तुम्हारा घर है। अधिष्ठात्री देवी तुम्हारी पत्नी है । जहाँ श्रद्धा और प्रेम की सागर हिलोरे ले रही है।

काम कामेश्वरी की लीला तो प्रभु की लीला है।

अगर अपने गृहस्थ जीवन को देवालय नहीं बना पाये, तो बाहर के पत्थर के मूर्ति स्थापित देवालय में क्या पा सकते हो !

जिस कुण्डलिनी जागरण के गंगा को तुम अपने मुदिता और प्रेम से अपने अन्दर से पैदा नहीं कर सकते, तो हिमालय के गंगोत्री की ओर क्या ध्यान दे रहे हो! कुण्डलिनी जागरण की मूलमित्ती है, श्रद्धा, दया, प्रेम, करुणा, मैत्री, और मुदिता।

अन्दर की गंगा धार को अपने कामुकता की गंदगी से मैला कर रहे हो! तो गंगा स्नान करके अपने किस पाप को धो पाओगे ?

जिस कुण्डलिनी जागरण के प्राप्ति के लिए ऋषि तपस्वी जन्मो-जन्मो तक अपने इस मानव तन को तपा कर जलाकर राख कर देते है। वह भागीरथी गंगा तो तुम्हारें गृहस्थी रूपी देवालय में कुण्डलिनी गंगा प्रवाह के रुप में बह रही है।

क्या समझते हो कि भागीरथ ही गंगा को पृथ्वी पर लाये। मेरी तो ऐसी अध्यात्मिक गनना है, कि वह तुम्हारे अन्दर के कुण्डलिनी जागरूकता का प्रतीक है। जो तुम्हारे अन्दर षट्चक्र के नदी पहाड़ को तोड़ते हुए, सागर में हजार फन वाले नाग पर बैठे प्रतीक, विष्णु रूपी ब्रह्माण्ड में मिलने को आतुर है।

प्रकृति का नियम तो अटूट है। क्या मानव हजार बच्चे पैदा कर सकता है ? प्रकृति बनी तो हिमालय से निकलने वाली गंगा भी बनी होगी। ग्लेसियर से पिघलकर बर्फ ही गंगा बनकर बनोऔषध को प्रवाह में लेने से पवित्र गंगा हो गयी।

तुम्हारे अन्दर भी प्रेम, दया, श्रद्धा का ग्लेसियर गंगा प्रवाह का रूप लेकर, क्षीरसागर में बैठे सचिदानन्द का रूप लेने को आतुर है!

तुम शंकर की भग में स्थिति रूप को मंदिरों में अक्षत, फूल से पूजा किये जा रहे हो! ऊँ नमः शिवाय का नारा लगाते जा रहे हो! क्या कभी तुमने सोचा है कि वह गूंज तुम्हारे अन्दर का है! वह प्रतीक तुम्हारे काम-कला का है?

अगर काम वासना का रूप होता तो भग में शिवलिंग की स्थिति नीचे की ओर दिखाई जाती। लेकिन मूर्ति में तो भग में स्थित लिंग ऊपर की ओर दिखाई गई है। यानि समझो जो शिवलिंग के ऊपर सर्प का साढ़े तीन फेरा दिये कुण्डलिनी का रूप है, जो समुद्र मथन का प्रतीक है।

शिवलिंग प्रायः काले पत्थरों में बनाई जाती है।

काला संसार भी बहुत ताकतवर है। अंधेरे में भी दो पत्थर को रगड़ दो तो रोशनी पैदा हो जायगी। सूर्य भी अपना प्रकाश अन्तरिक्ष के कोने तक फेंक रहा है। लेकिन अंतोगत्वा उसे भी अंधेरा का सामना करना पड़ता है।

तुम्हारे मल, मूत्र के अंधेरे गहबर में भी प्रकाश की अनन्त सम्भावनाएँ हैं, स्वर्ग का द्वार उसी नरक से है, जिसे तुम वासना समझ रहे हो !

आओ लौटो, भागो मत! अपने शरीर रूपी देवालय में प्रवेश कर अपने अराध्य कुण्डलिनी देवी की अराधना करो! सारे कर्मबंधन को तोड़ते हुए थलचर, जलचर, नभचर के नारकीय योनियों से मुक्ति पा जाओ!

प्रभु ने यह मनुष्य तन हजारों लाखों योनियों के चक्रवात के बाद दिया है। इसको मुदिता और प्रेम पूर्वक जीयो।

यह कार, बंगला, ऐश्वर्य, कार्तिकेय और सावित्री जैसी सन्ताने, राधा और सीता जैसी पत्नी, तुम्हें मुफ्त में नहीं मिली है ! यह तुम्हारे जन्मों-जन्मों का प्रतिफल है ! जो तुम्हारे बाग में प्रेम और मुदिता का सुगन्ध बिखेर रही है।

चुको मत, सम्हलों! अपने इस मानव जीवन को इतने पवित्रता और स्नेह से जीयो, कि पीछे की पवित्र आत्माएँ भी तुम पर पुष्प वर्षा कर सकें!

जानते हो महावीर ने जब ज्ञान को प्राप्त किया तो देवता भी नत मस्तक होकर, उन पर पुष्प वर्षा करने लगे। क्योंकि देवता भी काम-कामेश्वरी के जीतने में इतने सफलता को नहीं प्राप्त कर पाये ।

यह संसार पहले तुम्हारे सामने है। पहले इसको समझो, और "जीओ तो ऐसे जीओ जैसे तुम्हारा कुछ भी नहीं!"

यह जीवन किस काम का

किये मंत्र-जप, माला फेरी, पूजन आठो याम का !
रहे भाव सर्कीन अगर, यह जीवन फिर किस काम का !!
हर पुण्यों, हर पर्व नहाये, गंगा जी के नीर में !
पर मन डूब न पाया बिलकूल, किसी दूखी के पीर में !!
करते रहे सफर हम निष्ठुर, मन के चारो धाम का !
रहे भाव सर्कीन अगर, तो यह जीवन किस काम का !!
ईश्वर ने जो दिया, लगाया केवल अपने वास्ते !
स्वार्थ पूर्ति हो जिनसे, हमने चुने वही सब रास्ते !!
किया यत्न हर पल क्षण हमने, अपने सुख आराम का !
रहे भाव सर्किन अगर, यह जीवन फिर किस काम का !!
प्रगति देखकर औरो की हम, पड़े द्वेश और लोभ में !
पूर्ण न हो पायी ईच्छा, तो भरे तीव्र बिच्छोभ में !!
ध्यान रहा हर समय हमें तो, अपने ही धन-धाम का !
रहे भाव सर्कीन अगर तो, यह जीवन किस काम का !!

(प्रहलाद)

कुण्डलिनी जागरण

सूर्य पर सोलर आँधी चलती रहती है, जो प्रकृति के सैद्धांतिक प्राण ऊर्जा के संचरण के कारण होता है । अभी-अभी खगोलविदो ने घोषना की हैं, ''कि सूर्य से एक रेडियोधर्मी आँधी तीव्र गति से पृथ्वी की ओर बढ़ रही है ।

जो पृथ्वी पर जितने एलेक्ट्रॉनिक उपकरण हैं, सबको निष्क्रिय कर देगी । यहाँ तक की जितने आणविक रियेक्टर हैं, सब बन्द हो जायेंगे । एलेक्ट्रॉनिक संचार व्यवस्था, मोबाइल, टी.भी. कम्प्यूटर सब निष्क्रिय हो जायेंगे !''

ठीक उसी तरह, हम मानव के स्थूल शरीर को नियंत्रण करने के लिए प्राणचक्र के प्राण ऊर्जा द्वारा नियंत्रित षट्चक्र हैं । लेकिन जिस तरह बड़े खजाने को सुरक्षित रखने के लिए पुरातनकाल से सर्प को रक्षक के रूप में माना जा रहा है ।

उसी तरह मूलाधार पर सर्पनी के रूप में कुण्डलिनी को साढ़े तीन फेरा दिये हुए मूलाधार के पाँच गुच्छक नाड़ी केन्द्र पर, सूक्ष्म शरीर की गति में व्यवस्थित माना गया है ।

सूर्य पर प्राकृतिक गति में आँधी की व्यवस्था की तरह जब-जब हममें कामवासना जागती है, यह कुण्डल मारे सर्पनी, जो अपना फन कुण्डल में डाले बैठी रहती है । वह फन उठाकर उत्तेजित हो जाती है एवं कामवासना के अतिशय वेग में मुँह से वीर्य के रूप में फेन उगल, बेहोश और विरक्त हो, शान्त हो; ब्रह्मतत्व के प्रवेश मार्ग को बिल्कुल बन्द कर देती है ।

जब हम क्रोध में होते हैं, तो श्वाँस की गति, सीने के धौकनी से लम्बी श्वाँस के रूप में बाहर-भीतर होने लगती है ।

लेकिन कामवासना की स्थिति में यह श्वाँस की गति नाभि तक जा कर कुण्डल मारे सर्पनी को उत्तेजित कर, उसे वीर्य रूपी फेन उगल बेहाश करने लगती है एवं श्वाँस की गति नाभि पर आने से पेट-ऊपर नीचे होने लगता है ।

उसके तमस् प्रक्रिया में कुण्डल मारे कुण्डलिनी स्वरूपा सर्पनी बेहोश और बदहवास होकर शान्त हो, सूक्ष्म शरीर के षट्चक्र गति के दरबाजे को बन्द कर देती है एवं हम निढाल हो जाते हैं ।

हमारी वासना का जैसा-स्वरूप होता है; अगर गर्भाधान की स्थिति बनती है, तो वैसी आत्मा गर्भधारण कर हमारे पुत्र-पुत्री के जन्म का कारण बनता है । (जिसकी पुस्तक में बृहत रूप से कई जगह व्याख्या की गयी है ।)

हम शास्त्रों द्वारा जानते हैं कि पवन उन्चास गति में अपना स्वरूप बनाएं हुए है । लेकिन उसमें पृथ्वीभार जलमार, अग्निमार, वायुमार की जैसी मात्रा होती है; वैसी उस पवन का प्राकृतिक स्वरूप होता है । हमारे शरीर में ही श्वाँस तो, ईगला (चन्द्रस्वर) पिंगला (सूर्य स्वर) के रूप में ही लेते हैं !

लेकिन उसका स्वरूप शरीर में संचरित प्राण ऊर्जा के कारण विभिन्न रूपों में होने के कारण अनेक तरह की व्याधि उत्पन्न होती है एवं अनेक तरह की उपलब्धियाँ भी प्राप्त होती है ।

वही प्राणवायु सुगन्धित वातावरण में श्वसनक्रिया में सुगन्ध बिखेरती है, तो वही प्राणवायु गुदामार्ग से निकल बदवू फैलाती है । प्राणवायु तो वही है, लेकिन हमारे शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक स्वरूप के अनुसार हमारे शरीर के विभिन्न द्वारों से गमना-गमन करती है ।

ठीक उसी तरह प्राण ऊर्जा काम, क्रोध, लोभ, मोह के व्यतिरेक में अपना तमस् स्वरूप बनाए हुए, इस संसार के स्थूल गति से हमें ऊपर ही नहीं उठने देता । हम मन के चाबूक मारने से, कुत्ते के हड्डी चबाने की तरह अपनी वासना को ही सुख का कारण मान लेते हैं ।

दुनिया की अंधी दौड़ में विवश, अथक, अन्तहीन दौड़ लगाते चले जाते हैं। सूक्ष्म जगत के भावना-केन्द्र के मूलाधार बिन्दु को बिल्कुल बन्द कर लेते हैं।

हममें वह भावदशा ही नहीं बन पाती है, कि मूलाधार पर बैठी सूक्ष्म शरीर धारनी सर्पनी, हमारी प्रेम, आस्था, विश्वास का नैसर्गिक वीणा का स्वर लहरी पकड़ आनन्दित हो; हमें ब्रह्मदर्शन की सुषुम्ना नाड़ी-प्रवाह पर अपने कम्पन्न क्षेत्र में ले ले !

हम अवश-अथक मृत्यु पर्यन्त अपने कर्मफल के अनुरूप चौरासी लाख के ईश्वरीय सैद्धांतिक चक्रवात की परिधि में घूमने के लिए बिल्कुल विवश होकर, जन्म-मरण की परिधि बनाएँ रहते हैं ।

यह मनुष्य योनि जो प्रकृति के अंधबिन्दु पर समरूपता की योनि में खड़ा है; वह हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह के व्यक्तिरेक में, अपना ईश्वरीय स्वरूप ही खो देता है !

जबकि हममें- राम, कृष्ण, गौतम, महावीर, कबीर, क्राइस्ट, मोहम्मद, रजनीश हो जाने की पूरी क्षमता है

जब हम अपने सधे हुए श्वाँसायाम प्राणायाम की मन्द से मन्द गति में नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु जो नाभिकेन्द्र से तीन अंगूल नीचे है, उस पर अपने श्वाँसों के कम्पन्न पर पहुँचते हैं; तो इस स्थूल शरीर का कम्पन्न बदल, सूक्ष्म शरीर के कम्पन्न की गति पकड़, हम उर्ध्वगामी हो जाते हैं ।

कम्पन्न तो निम्नगामी स्थिति में ही मूलाधार के सुषुम्ना प्रवाह बिन्दु से आगे बढ़ता है । लेकिन रास्ता तो निम्नगामी होकर ही उर्ध्वगामी होने का है ।

ब्रह्म में कम्पन्न अनन्त छोर तक व्याप्त है । लेकिन उसकी सूक्ष्मता परमाणु के केन्द्र पर बैठे न्यूट्रॉन के अन्दर के केन्द्र में भी प्रवेश कर जाने का है । किसी भी स्थिति में दो आकाशीय पिण्ड या दो प्राण ऊर्जा का मिलन बिन्दु पर कम्पन्न शून्यता की स्थिति में आ कर, फिर अपना आकाशीय या प्राणिक क्षेत्र बदलता है ।

उसी तरह जब हम प्रेम, आस्था, विश्वास की स्थिति में सहजता की भावदशा प्राप्त करते हैं; तो हमारी श्वसन क्रिया बिल्कुल नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर मूलाधार पर बैठी कुण्डल मारे सर्पनी के कम्पन्न बिन्दु पर तरंगित होने लगती है ।

वही सर्पनी हमारे श्वाँस के ईश्वरीय कम्पन्न स्वर पर, अपने ब्रह्म के सर्प से मिलने, षट्चक्र भेदन कर मस्तिष्क के सेरेब्रल कैभिटि में बैठे 1008 लपेटा मारे अन्डाकार मटर के दाने के बराबर ब्रह्मरंध्र से नैसर्गिक मिलन कर, हमें ब्रह्मस्वरूपा कर देती है ।

प्रलय के बाद, प्रकृति में मंदाकिनी निहारिका समूह के अन्दर हमारी आकाश गंगा, चार खरब वर्ष सोती है एवं चार खरब वर्ष निर्माण की गति चलती रहती है । कितने- नक्षत्र, ग्रह, सूर्य टूटते, बनते, गिरते रहते हैं एवं कई मन्वान्तर एवं युग अपनी परिधि में घुम जाते हैं ।

लेकिन प्रकृति का कम्पन्न (फ्रिक्वेन्शी) तो सूक्ष्म से सूक्ष्म गति में कायम रहकर निर्माण के सारे बीजों को संजोये रहती है । बिनष्टिकरण एवं निर्माण की गति प्राकृतिक सम्भावनाओं एवं संयोग पर अपने रूप में चलती रहती है ।

ठीक उसी तरह जब बच्चा माँ के गर्भ में रहता है तो अपने नाभि नाल द्वारा पोषण एवं प्रकृति से प्राण ऊर्जा प्राप्त करता रहता है एवं प्राकृतिक तामसिक समाधि में रहकर अनन्त प्राण ऊर्जा से जुड़ा रहता है ।

उस अवस्था में उसकी प्राण ऊर्जा का कम्पन्न (फ्रिक्वेन्शी) सूक्ष्मतम प्राण शक्ति की ऊर्जा को ग्रहण करता रहता है ।

लेकिन जब ही गर्भ से बाहर निकलता है, तो नाभि नाल कटते ही एकबार प्रकृति के सूक्ष्म कम्पन्न बिन्दु से आकाशीय दो पिण्ड के कम्पन्न बिन्दु के शून्य बिन्दु की तरह अपना कम्पन्न क्षेत्र बदलकर स्थूल जगत के स्थूल शरीर का कम्पन्न पकड़ लेता है एवं रोना-हँसना, भूख-प्यास, दुख-दर्द सब इस बाहरी दुनिया के स्थूल जगत की तरह महसूस करने लगता है ।

नाभि नाल कटते ही उसका आकाश बदल जाता है । लेकिन लाखों, करोड़ों वर्ष का चक्रवातीय कर्मफल एवं योनिगत भोगफल तो उसके न्यूरान के तीन पतले बाल एवं सेल में संग्रहित रहता ही है । (चित्र संख्या-17)

ठीक उसी तरह, जिस तरह कम्प्यूटर एवं मोबाईल के छोटे चिप्स में भी सैकड़ों साल आगे पीछे का ज्ञान-विज्ञान संग्रहित रहता है ।

सात शरीर के सात चक्र के विकास क्रम में बीजरूप में समयानुसार एवं प्राकृतिक स्वरूप में शिशु का मानसिक एवं शारीरिक विकास क्रम इस स्थूल जगत के परिस्थिति में होने लगता है ।

लड़कियाँ जन्म से ही पूरे जीवनकाल तक के रजश्वला होने के स्वरूप को डिम्भकोष के बीज के रूप में अपने स्नायुतंत्र एंव डिम्भकोष्टक में लेकर ही जन्म लेती है । जो नाभिनाल कटते ही जगत के सिद्धान्त में क्रियान्वित होने लगता है एवं समय पा कर सात शरीर एवं सात चक्र के विकास क्रम पर स्त्री तत्व की सारी प्रक्रिया से गुजरने लगता है ।

ज्यों-ज्यों शिशु कन्या या बालक के रूप में उम्र के बढ़ते विकास क्रम में इस स्थूल जगत से परिचित होने लगता है ।

त्यों-त्यों श्वाँस पर पृथ्वीभार, जलभार, अग्निभार, एवं वायुभार बढ़ने लगता है एवं स्नायु एवं कम्पन्न बिन्दु पर भार बढ़ने से प्राण ऊर्जा की सूक्ष्म गति भी बदलने लगती है । तीन महीने में हाथ का अंगूठा एवं छः महिने बीतते-बीतते बच्चा पैर का अंगूठा चूसने लगता है एवं अपने इन्द्री पर हाथ डाल कर काफी प्रसन्न होता है ।

चूँकि अबोध बालक में श्वाँस नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर बिल्कुल प्राकृतिक दशा में अपना सम्पर्क सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत से बनाएँ रखता है । लेकिन ताण्डेन बिन्दु पर स्वाँस की गति अपना कम्पन्न बदल जब ठोकर मारती है, तो उसे कामाँग में गुदगुदी महसूस होती है और बच्चा इन्द्री छूकर काफी आनन्दित होता है ।

जहाँ से बच्चा प्रकृति के सूक्ष्म जगत से टूटकर इस स्थूल जगत का परिचय प्राप्त करने लगता है और ज्यो-ज्यो स्वाँस की गति नाभि, पेट होते हुए छाती से ही लेने की प्रवृति हो जाती है; तो इस जगत के काम, क्रोध, लोभ, मोह से जुड़, इस मैथुनी जगत के तामसिक व्यवस्था को पूरा करने में लग जाता है एवं हमारी कुण्डलिनी जागरण की सम्भावनाएँ दूर भागती नजर आने लगती है ।

इसलिए ईशा मसीह ने भी कहा है कि "प्रभु के संसार में प्रवेश पाने के लिए तुम बच्चों की भाँति सहज एवं निर्मल हो जाओ ! महावीर ने तो अपने ब्रह्मरंध्र केन्द्र तक को, बच्चो की भाँति कोमल कर लिया था ।

सात शरीर, सात चक्र का विकास क्रम तो बीजरूप में बच्चे में भी अबोध अवस्था में रहता है; लेकिन अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ ! इसलिए उसमें कुण्डलिनी जागरण की प्रारम्भिक सारे सिद्धान्त एवं भावदशा की सारी सम्भावनाएं बनी रहती है ।

चक्रों का विकास हो जाने के बाद अगर हमें अपने श्वसन क्रिया को नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु तक ले जाने में हमारी साधना सफल हो जाती है, तो ही कुण्डलिनी जागरण की परिस्थिति बनती है । इसके लिये बच्चों जैसा सहज एवं कोमल होना परम आवश्यक है । जो प्रेम, आस्था, विश्वास के आनन्दातिरेक भावदशा में ही सम्भव है ।

अगर कामुकता या क्रोध के अतिरेक में हम कुण्डलिनी जागरण की भावदशा बनाना चाहेंगे, तो हमें तामसिक गति की कुण्डलिनी जागरण की सिद्धियाँ मिलेगी । जो हमारे थलचर, जलचर एवं नभचर की प्राकृतिक योनि का चक्रवात नही तोड़ पायेगी! एवं हम अधोगामी होकर, अपना यह उत्तमता प्राप्त मनुष्य योनि भी खो लेगें !

विष्णु भगवान के चार हाथ और उनमें धारित उपादान- शंख, चक्र, गदा, पदम् तो मनुष्य जीवन के काम, क्रोध, लोभ, मोह का ही प्रतीकात्मक स्वरूप है एवं ब्रह्मरंध्र का प्रतीकात्मक स्वरूप है एवं ब्रह्मरंध्र का प्रतीकात्मक स्वरूप क्षीर सागर में सर्प सैया पर सोये विष्णु भगवान ही मस्तिष्क में विष्णुरंध्र के स्वरूप में हैं ।

लेकिन इसकी असंतुलित व्यवस्था काम अंधता, क्रोध अंधता, मद अंधता, लोभ अंधता कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में बहुत बड़ी बाधा है । द्वैत तक ही सारी क्रियात्मक एवं भावनात्मक व्यवस्था द्वन्द्व में है ।

जन्म है तो मरण है! सुख है, तो दुख है! स्वर्ग है, तो नर्क है ! श्वसन व्यवस्था में ईगला नाड़ी है तो पिंगला नाड़ी है ! यहाँ तक कि अंक संख्या में अगर एक है, तो दो है! चार है, तो पाँच है ! यानि द्वैत तक किसी भी व्यवस्था में द्वन्द्व तो है ही !

इसलिए सारी सिद्धिया पा कर उपादानों के प्राप्ति के लिए, मनुष्य जीवन का नर और नारी की संलिप्तता तो है ही ! शिव और शक्ति के मिलन बिन्दु के साम्यरसता के लिए मूलाधार की कुण्डल मारे सर्पनी एवं ब्रह्मरंध्र के सर्प का कुण्डलिनि जागरण की प्रक्रिया, जो प्राण ऊर्जा प्रवाह के सुषुम्ना नाड़ी गति पर प्राण शक्ति प्रवाह गति में है एवं एकाकार के शून्य बिन्दु पर मिलन समरूपता में आवश्यक है ।

लेकिन इन सारी सूक्ष्म व्यवस्था के लिए इस संसार के प्राणवायु क्षेत्र की उपयोगिता हैं। जहाँ तक द्वैत की योनि है और कुण्डलिनी व्यवस्था में, चौथे शरीर की व्यवस्था एवं मनस शरीर तक अनाहत चक्र की व्यवस्था में, जो कुण्डलिनी गति में है ।

कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में, स्त्रैण या पुरुषत्व ऊर्जा शक्ति के समरूपता प्रतिशत में, ईंगला नाड़ी, पिंगला नाड़ी के प्राणवायु गमन

की, नाड़ी के समरूपता में आने पर ही कुण्डलिनी शक्ति का ऊर्जा प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ब्रह्मरंध्र तक पहुँचकर, हमें अद्वैत की उपलब्धि देती है ।

लेकिन बिना काम-कामेश्वरी की संतुलित व्यवस्था के बगैर, प्राण ऊर्जा के केन्द्रीत बिन्दु तक पहुंचना सम्भव नहीं दिखता है ! हम गृहस्थ तो अपने दामपत्य जीवन की मधुरतम शैली में इसे संतुलित कर लेते हैं ।

लेकिन ध्यानस्थ ऋषि, महात्मा भी अपने स्त्रैण एवं पुरुषत्व का संतुलन ईंगला नाड़ी एवं पिंगला नाड़ी के व्यवस्थित प्राणवायु द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के अदृश्य कम्पन्न तरंग से अपने आप को नियंत्रित करते हैं ।

कुण्डलिनी की व्यवस्थित त्वरित बिजली प्रवाह नियंत्रित कर; मनस शरीर के द्वैत क्षेत्र की उपलब्धियाँ पा कर इस संसार के अदभुत व्यक्ति की श्रेणी में आ जाते हैं एवं ईश्वरीय संदेश के अग्रदूत होकर विश्व को एक नई दिशा दिखा पाते हैं ।

हाइड्रोजन बम, एवं परमाणु बम तो बहुत बड़ी विनाशलीला कर विस्फोट, तोड़-फोड़ करती है एवं जलाकर राख करती है । लेकिन न्यूक्यूलियर बम की श्रृंखला तो केवल प्राण ऊर्जा के कम्पन्न क्षेत्र पर ही आघात करती है । मकान, बाजार, गाड़ी बंगला, सब सजे रह जाते हैं ।

चेतन के प्राण शक्ति पर ही हमला कर केवल लाश छोड़ जाती है । पेड़-पौधे, पशु-पंक्षी, मनुष्य जाति की नर-नारी के केवल लाशे पड़ी रह जाती है । कई वर्गमील में जीवन के लक्षण ही समाप्त हो जाते हैं । केवल स्थूल जगत की उपलब्धियाँ निर्जिव होकर पड़ी रह जाती है ।

ठीक उसी तरह श्वसन गति की द्वैत स्थिति की तरह कुण्डलिनी का कामक्षेत्र का चक्र, जब ज्ञानक्षेत्र के चक्र में छलाँग लगाती है, तो व्यक्ति इस संसार के स्थूल जगत में रहते हुए भी, सूक्ष्म जगत का सूक्ष्मतम प्रभाग बन जाता है ।

अद्वैत के न्यूक्यूलियर बम की तरह ब्रह्माण्ड के प्राणक्षेत्र को थाम लेता है । अपने प्राण ऊर्जा गति में भगवान महावीर के निर्माण गति में, प्रवेश करने में भी उसे बाधा नहीं होती है ।

जिस तरह एटम में इलेक्ट्रोन-प्रोटोन ऋण विद्युत स्त्रैण शक्ति, शक्तिरूपा, एवं धन विद्युत पुरुषत्व शक्ति, शिवरूपा हो कर न्यूट्रॉन जो परमाणु का न्यूक्यूलियर (मध्यस्थ बिन्दु) बिन्दु है, उसका चक्कर लगाती रहती है ।

उसी तरह कुण्डलिनी जागरण में, काम ऊर्जा स्त्रीतत्व के आकषर्ण में प्रवाहित एंव प्राणवायु के माध्यम से प्राण शक्ति का प्रवाह जब न्यूट्रॉन स्वरूपा ध्यान बिन्दु पर एकाग्रता बिन्दु में समाहित होती है; तो यही ध्यान बिन्दु न्यूक्यूलियर बम की तरह केन्द्र बिन्दु में समा ईश्वर के रेणु में समाये किलानुमा आणविक परिधि पर आघात कर स्वयं ब्रह्मतत्व में समाहित हो, हमें ईश्वर स्वरूपा कर देती है ।

जिस ब्रह्म को हम अपने से अलग मानते हैं, उसी ब्रह्म के स्रष्टा की श्रेणी में हम चले आते हैं । महर्षि विश्वामित्र को हम इसी श्रेणी में ले सकते हैं ।

किसी भी परमाणु बम या न्यूक्यूलियर बम के परमाणु गति को देखे नहीं जा सकते ! सिद्धान्त से उसकी प्रक्रिया पूरी की जा सकती है । एक हाइड्रोजन को, अणु की ईकाई मानी जाती है । जिसका 1960 वां भाग परमाणु होता है । उस परमाणु में भी, ब्रह्माण्ड की एक छोटी ईकाई सम्पूर्णरूप से समायी रहती है एवं एक निश्चित दूरी बनाते हुए अपने ब्रह्माण्डीय रूप से गतिमान रहती है ।

न्यूक्यूलियर तो उसके केन्द्रक न्यूट्रॉन पर एलेक्ट्रॉन के ऋण विद्युत एवं प्रोट्रॉन की धन विद्युत स्त्री-पुरुष के काम ऊर्जा की तरह, शिव-शक्ति के एकाकार रूप में रहकर अर्द्धनारीश्वर का रूप पकड़े रहती है एंव ब्रह्माण्ड की उच्च से उच्च प्राण-तरंग को आकर्षित कर समाहित कर लेने की क्षमता रखती है ।

उसी तरह कुण्डलिनी जागरण भी एक आणविक विष्फोट है, जो काम, ध्यान एवं प्राण ऊर्जा के सैधांन्तिक न्यूक्यूलियर बिन्दु पर आने पर, द्वैत और अद्वैत के अन्धबिन्दु पर अपना प्राण तरंग बदलते हुए ब्रह्मव्यापी हो जाता है ।

इसलिए इस प्रयोग में काम ऊर्जा, ध्यान ऊर्जा, ज्ञान ऊर्जा का व्यवस्थित एवं संतुलित प्रयोग ही हमें सफलता के मूलबिन्दु पर लाकर,

हमें उर्ध्वगामी कर सकता है एवं इस स्थूल जगत के थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि के चक्रवात से बाहर निकाल सकता है ।

वायु या जल में जहाँ भी भैक्यूम (खाली बिन्दु) पैदा होती है, चक्रवात पैदा हो जाता है । यही सिद्धान्त कुण्डलिनी जागरण में समझ में आती है । काम ऊर्जा का दबाव बिन्दु एवं प्राण ऊर्जा के दबाव बिन्दु पर ध्यान ऊर्जा के केन्द्रीभूत सता में भैक्यूम (खाली) पैदा होने से, प्राण ऊर्जा-काम ऊर्जा के चक्रवात में प्रवाहित हो मूलाधार के सुषुम्ना नाड़ी द्वारा, सूक्ष्म शरीर के अंगीभूत चक्रो को स्पंदित करती हुई, ब्रह्मरंध्र की ओर बढ़ जाती है ।

चक्रों का स्पंदन ईथर और न्यूत्रॉण में गति पाकर, ब्रह्माण्ड के कम्पन्न गति में ब्रह्माण्डव्यापी हो जाता है ।

लेकिन हमारी उपलब्धियाँ इस पर निर्भर करती है कि काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा का स्वरूप क्या है ! एवं इन्हीं दोनों ऊर्जा की उपलब्धि गति प्राण ऊर्जा में समाहित हो, ज्ञान ऊर्जा का कारण बनता है ।

हम कामुकता को केवल वासना के दृष्टिकोण से देखना जानते हैं । लेकिन इसका स्वरूप जब आस्था, प्रेम भक्ति और विश्वास के विशद्ध रूपों में होता है, तो हमारी दैनन्दनी सूक्ष्म शरीर नैसर्गिक आभामंडल से भर जाती है । यही कामुकता का योग-भक्तियोग, प्रेमयोग, मांतगीयोग में बदल जाता है ।

पुस्तक में साधना स्वरूप को भगसमाधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है । जिसमें प्रन्द्रह मिनट के भग समाधि को पशु भावदशा से निकलने की, तीस मिनट के भग समाधि को बीर भावदशा में पहुँच जाने का एवं तीन घंटा के भग समाधि में दिव्य भावदशा में पहुँच जाने के स्वरूप में वर्णन किया है । जबकि किसी भी तांत्रिक, यांत्रिक भावदशा में मैथुनी जगत के काम-कामेश्वरी तंत्र का ही सीढ़ीगत सहारा है ।

फिर भी भावदशा की ही प्रधानता है । हम जब इन दिव्य भावदशा में होते हैं, तो वीर्य स्खलन नहीं होता हैं । हम दैनिक रूप से श्वसनक्रिया लेते ही रहते हैं एवं एक क्षण भी प्राणवायु के बिना जीवित नहीं रह सकते ! एवं इस मैथुनी जगत में कामुकता के प्राण ऊर्जा से ही उत्प्रेरित होकर सृष्टि चला रहे हैं ।

लेकिन इन्हीं तत्वों के ऊर्जा बिन्दु के गतिमान तथ्यों को सूक्ष्मता से नहीं जानने के कारण हमारे योनिगत चक्रवात की शैली चल रही है । जबकि यहीं चक्रवात हमें स्वर्ग-नर्क से निकलते हुए, निर्वाण गति में दिव्यराज में प्रवेश का दरवाजा है ।

कुण्डलिनी साधना का मूल सिद्धान्त है- नियमित श्वाँसायाम, सहजता, 'ॐ' का ध्यान एवं काम कामेश्वरी की प्राकृतिक क्रीड़ा लीला ।

"ॐ' है "मंत्र एवं काम-कामेश्वरी की प्रेमपूर्ण प्राकृतिक लीला का संगम है तंत्र ।"

सूक्ष्म जगत का सूक्ष्म तरंग है, कुण्डलिनी जागरण से तरंगित - प्राण ऊर्जा ! प्रेतयोनि है ! मनुष्य की अतृप्त वासनाओं के संगम पर सूक्ष्म जगत से आवागमन का योनिगत पथ ! कुण्डलिनी जागरण द्वारा कामक्षेत्र ज्ञानक्षेत्र में छलाँग है !

योनिगत थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि से सदा के लिए मुक्ति का सहज उपाय !

मन

मन तू पार उतर कर जैहों, मन तू पार उतर कर जैहों !
आगे पंथी पंथ न कोई, कुछ मुकाम न पैहों,
मन तू पार उतर कर जैहों !
नहीं कोउ नीर, नाव, नहीं केवट,
नाव न खेचनहारा
धरती, गगन, कल्प, कछु नाहीं,
ना कछु तारणपारा,
नहि तन, नहि मन, नहि आपन कोउ,
शुन्य में सोच न पैहों।
बारहि-बारि विचार देखी,
मन अन्त कहीं मत जैहों !
मन तू पार उतर कर जैहों, मन तू पार उतर कर जैहों !

सावधानियाँ

यह क्रिया जो बतायी जा रही है, इनमें बहुत सारी सावधानियों की भी जरूरत है । जबतक मनसा, वचसा कर्मना से शुद्धतम् रूप न ले लें, तबतक इस कुण्डलिनी जागरण के त्वरित विद्युतीय वेग को सम्भालना कुछ कठिन सा है ।

हमारे मानसिक शुद्धि में हमारे प्राणायाम की जितनी सारी विधियाँ हैं, सब श्वाँस गति को सम्यक् करने की गति में है । नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु, जहाँ पर पुरुष में प्रोस्टेट (पौरूष ग्रंथि) ग्रंथि और स्त्री में गर्भाशय के ऊपर अण्डकोष बिन्दु है, वहाँ सम्यक बिन्दु पर श्वाँस की गति पहुँचने पर ही पूरी सफलता की सम्भावना है ।

हमारे मानव के विकास क्रम में जब हम गर्भस्थ रहते है, तो तमस् समाधि की अवस्था होती है एवं कुण्डलिनी की जाग्रत अवस्था रहती है । पूर्णरूप से माँ की नाभि से जुड़े प्राकृतिक ऊर्जा स्रोत से हमारा शारीरिक एवं मानसिक विकास क्रम चलता रहता है । गर्भ से निकलते ही हमारा पंचतत्व से निर्मित मानव शरीर पंचतत्व से ही प्राण ऊर्जा का संचरण लेने लगती है एवं मेरा भौतिक एवं मानसिक विकासक्रम चलने लगता है ।

मेरी पूर्ण चेतना, प्रकृति से ऊर्जा लेकर तन्द्रिल होती रहती है एवं हम शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूर्ण विश्राम की स्थिति में होते हैं । बच्चे की स्थिति में तेइस घंटा, बाइस घंटा, बीस घंटा, ज्यो-ज्यो विकास क्रम बढ़ता है मेरी नींद की अवस्था घटती चली जाती है एवं हम प्रकृति से जुड़े अचेतन ऊर्जा स्रोत से दूर होते चले जाते हैं ।

ज्यो-ज्यो प्रकृति से दूर होते हैं, हमारे मस्तिष्क का विकास क्रम भी ऋषि लोक, सिद्ध लोक, देव लोक, पितृ लोक, वैश्वानर लोक से टूटता चला जाता है । हमारा विकास क्रम ही नैसर्गिक प्राकृतिक ऊर्जा स्रोत के कम्पन्न को बदलते हुए परिपक्व तो करता है, लेकिन सांसारिक तमस् भाग हममें बढ़ने लगता है ।

जिसके कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह की कम्पन्न गति, हमारे पूर्व संस्कार, पारिवारिक परिवेश एवं समाजगत, राष्ट्रगत चेतना से भरने लगता है । गर्भ के चार वर्ष के अन्दर हमारा मस्तिष्क डेल्टा आवृत के कम्पन्न में रहता है । चार वर्ष से सात वर्ष के अन्दर थीटा आवृत के

कम्पन्न में रहता है एवं सात से चौदह वर्ष तक में, अल्फा स्तर में मस्तिष्क अद्वितिय रूप से काम करने लगता है । चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण होते ही हमारा भौतिक एवं भाव शरीर का पूर्ण विकास हो जाता है ।

लेकिन इस विकास क्रम में सबसे पहले हम काम के विकास क्रम में आते हैं । जब बच्चा तीन माह का होने लगता है तो अंगुठा चूसने लगता है, यहीं से काम के विकास क्रम की शुरूआत होती है ।

इसकी व्याख्या फ्राइड ने बहुत अच्छे ढ़ंग से की है एवं इस अंगुठा चूसने की क्रिया को (लिविडो) नाम से सम्बोधित किया है । हम भी अपने पारिवारिक भाषा में समझते हैं कि अंगुठा चुसते ही बच्चा परमतत्व से टूटने लगता है । बच्चे में इन्द्रीय छूकर परम आनन्दित होने की प्रवृति ताण्डेन बिन्दु पर श्वाँस की गहन संवेदना के कारण होता है ।

क्योंकि काम की शुरूआत जो बच्चे में अंगुठा चुसने से सुरू होती है वह इन्द्रीय छूकर भौतिक शरीर के परिपक्वता की दशा की ओर बढ़ने लगता है । प्राय माँ ध्यान इन्द्रीय से हटाने के लिए चुसने के लिए लाल रंग का चूसना एवं लिंग के एहसास में चाँदी का लिंग स्वरूपा एक आकार बनाकर कमर में लटका देती है

बच्चे का हाथ हटाकर उस चाँदी के लिंग पर हाथ रखवाने का प्रयास करने लगती है । बच्चा यहाँ से नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु के श्वसन क्रिया से दूर होने लगता है।

चौदह वर्ष से लेकर इक्कीस वर्ष तक पूर्ण यौवन का आन्नद प्राप्त करने के लिए अपने विपरीत आकर्षण के कामुकता केन्द्र की तलाश में, अचेतन रूप से सक्रिय हो जाता है । चूँकि ईश्वर को प्रकृति चलानी है । इसलिए यह कामुकता का केन्द्र काफी सक्रिय होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह की अपनी वर्तुल गति बना लेता है ।

शिशु अवस्था में बच्चा पेट से हमेशा श्वाँस लेता रहता है । लेकिन ज्यों-ज्यों सांसारिक गति से जुड़ता है परिपक्वता के उम्र तक आते-आते छाती से श्वाँस लेने लगाता है । जो फेफड़ा (लंगस) शिशु अवस्था में छः हजार स्पौंजी कोषा के रूप में बिल्कुल शुद्ध होता है ।

वह परिपक्वता की अवस्था तक आते-आते चार हजार कोषा तक कार्बनडायऑक्साइड से भरा होने से निष्क्रिय सा होने लगता है ।

फेफड़ा केवल दो हजार स्पौंजी कोषा द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण कर अपनी जीवन गति में रहता है । श्वाँस के प्राणवायु द्वारा ही हमें प्राण ऊर्जा प्राप्त होती रहती है । जो हमारे शरीर के नस-नाड़ियो, कोषा, रक्त कण, ग्रंथि द्वारा एवं मस्तिष्क के न्यूरॉन सेल को प्राण शक्ति से भरती रहती है ।

मस्तिष्क के सेरेब्रल कैभिटी के सेरेब्रल से प्रतिदिन लगभग पाँच हजार कोषा टूट कर, अमृत बुन्द बनाकर, ललना चक्र द्वारा विशुद्धाय चक्र पर टपक कर, नाभिकुण्ड के ताप में जल जाता है एवं हमें पल-पल के बढ़ते उम्र में बूढ़ा कर ऊर्जावान भी रखता है ।

इसी अमृत बून्द को योगी योगिक क्रिया के खेचरी मुद्रा द्वारा कण्ठ प्रदेश में ही अपने जिह्वा को उलटा कर जिह्वा के स्पौंजी कोषा द्वारा फिर पान कर लेते हैं एवं मानवतन के अमर होने के इतिहास को पूरा करते हैं ।

लेकिन यह सारी प्रक्रिया भी श्वाँसगति के नियत्रंण एवं नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर सम्यक श्वाँस बिन्दु पर पहुँचकर ही सम्भव है ।

भगवान महावीर ने अपने ताण्डेन बिन्दु जो प्राणवायु एवं प्राण शक्ति के सम्यक बिन्दु पर है, उसको इसतरह नियंत्रित कर लिया था कि कुण्डलिनी गति सुषुम्ना द्वारा, ब्रह्मरंध्र तक पहुँचकर मस्तिष्क के उर्ध्वभाग के मध्य में ऊघकते एवं धड़कते बिन्दु को बिल्कुल बच्चे की तरह पोला कर लिया था एवं शिशुवत सरल हो गये थे ।

हमारे उपनिषद् में वर्णित है की ऋषि नव विवाहिता दम्पत्ति को आशिर्वाद देते थे की तुम पति को इतना प्रेम दो की तुम्हारा पति एग्यारवाँ पुत्र हो जाय !

इस आशीर्वाद में यह तथ्य बिल्कुल सामने आता है की विशुद्ध प्रेम भी हमें श्वाँस क्रिया के नियंत्रण से ही प्राप्त हो सकती है । हम कामुकता रहित होकर पत्नी को भी माँ स्वरूपा देख सकते हैं ।

इसका ज्वलंत उदाहरण रामकृष्ण परमहंस हैं; जो साधना काल में पत्नी को नग्नकर खड़ा कर देते थे एवं ''हाँ माँ'' का सम्बोधन कर ध्यान में लीन हो जाते थे ।

जिस तरह मंत्र के बारम्बार ठोकर से मंत्रशक्ति, देवी-देवता के संग्रह बिन्दु पर केन्द्रीत होती रहती है । उसी तरह हमारे सारे क्रिया कलाप हमारे नस, नाड़ियों, कोषा, ग्रन्थि एवं मस्तिष्क के सूक्ष्मतम नस नाड़ियों में भी केन्द्रीत होता रहता है । उसी का भार, जब हम नीद्रा में होते हैं, तो स्वप्न द्वारा निकलता रहता है ।

प्राकृतिक रूप से हम प्रति चौबीस घंटे में गहन नीद्रा की पूर्तिकर, एक बूंद अमृत टपकने की स्थिति में केवल दस मिनट के लिए प्रकृति के अनन्त स्रोत से जुड़ जाते हैं । यह क्रिया भी अचेतन में हमारे स्वशन क्रिया की प्राकृतिक गति के कारण होता है ।

क्योंकि जब हम गहन नीद्रा में होते हैं तो इस बहिर्मन की चेतनावस्था से हम बिल्कुल दूर हो जाते हैं । उस समय हमारी श्वॉस की प्राकृतिक गति नाभिकुण्ड पर होने लगती हैं । जिसके कारण गहन-नीद्रा के समय हमारी छाती की स्वॉस गति बिल्कुल मन्द होकर पेट के श्वॉस गति में क्रियाशील हो जाता है ।

हमारा पेट ऊपर-नीचे होने लगता है । उस समय ताण्डेन बिन्दु पर श्वाँस की ठोकर लगने से हमारे इन्द्री में कई बार तनाव आ जाता है । इसका कारण ताण्डेन बिन्दु पर श्वसनक्रिया का केन्द्रीभूत बिन्दु हैं ।

लेकिन नियंत्रित केन्द्र बिन्दु को हम कामुकता का लक्षण ही नहीं माने ! यह हमें काम रहित ही नही, हमें प्रेम, दया, करूणा, मैत्री, मुदिता के परम बिन्दु पर पहुँचा कर हमारे अन्तर में आनन्द का स्रोत प्रवाहित करता है । लेकिन यह सारी प्राकृतिक प्रक्रिया हमें इस मनुष्यतन के चेतन अवस्था में करनी पड़ेगी । योगी इसलिए नीद्रा में भी जागृत की अवस्था में रहते है ।

चूँकि उनका सारा ऊर्जा स्रोत नाभिकुण्ड के इस प्रवाह स्रोत ताण्डेन बिन्दु से सूषुम्ना द्वारा ब्रह्मरंध्र तक पहुँच जाता है । बीच के अनाहत चक्र से ऊपर की गति, इस मनुष्य की योगमाया से ऊपर की गति है । जहाँ नीद्रा की गहणता इस स्थूल शरीर की तरह नहीं है ।

इसलिए काम ऊर्जा और प्राण ऊर्जा के गहनतम प्राण बिन्दु नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर समन्वय बिन्दु पर आ जाने पर ही, हम ज्ञान ऊर्जा से प्लावित हो जाते हैं ।

भगवान महावीर या गौतम बुद्ध, तपस्या करते-करते इन्हीं सम्यक बिन्दु पर आकर ज्ञान स्रोत से जुड़ पाये एवं इस संसार को नये ज्ञान के ज्योति से निर्मल कर दिया ।

वे कोई शास्त्र, उपनिषद या ब्रह्मशास्त्र पढ़कर ज्ञान को नहीं प्राप्त हुए । वे तो प्राण शक्ति के सहजता बिन्दु पर आकर ही मानव श्रेणी में एक अलग दिव्य ज्योति जला पाये ।

इसी तरह हमारी मानसिक तरंग कोई वायुमार्ग के उन्चास पवन पर सवार होकर कहीं दूरस्थ गामी नहीं हो पाती है । वह तो प्राण तरंग के कम्पन्न तरंग पर ही हजारों लाखो मील की दूरी तय कर पाती है । हमारे टेलीफोन तरंग गति या विचार पकड़ने की टेलीपैथी कि गति सब हमारे श्वाँस के प्राण संचरण गति पर निर्भर करता है ।

स्वाँस के सधे हुए चन्द्र गति के चन्द्र स्वर एवं सूर्य गति सूर्य श्वर में हम दूरस्थ विचार तरंग के, शुभ-अशुभ तरंग गति को भी पहचान सकते हैं एवं मेरा आशिर्वाद एवं कुविचार, केन्द्रीत प्राणी के तरंग गति को हमारे सम्मोहन में ले सकता है ।

जंग इच्छा शक्ति से जीती जाती है एवं इच्छा शक्ति के लिए संकल्पवान होना आवश्यक है । संकल्प शक्ति आज्ञा चक्र पर लिए जाते हैं । लेकिन उसका केन्द्र बिन्दु नाभिकुण्ड है ।

श्वसनक्रिया का सारा केन्द्र बिन्दु नाभिकुण्ड है। लेकिन उसका कम्पन्न बिन्दु का अदृश्य केन्द्र (ब्लेकहौल) ताण्डेन बिन्दु पर है । ताण्डेन बिन्दु स्वाधिष्ठान केन्द्र पर है। लेकिन जगत का संचालन क्षेत्र मनुष्य का प्रोस्टेट ग्रन्थि एवं स्त्री का गर्भाशय का ग्रीवा का अण्डकोष है, जो सम्पूर्ण रूप से कामक्षेत्र में है ।

इसलिए सम्पूर्ण सावधानियों का केन्द्र बिन्दु इस कामक्षेत्र के तीन चक्रो-मूलाधार, स्वधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र पर सीढ़ीगत रूप से आकर केन्द्रीत होता है ।

मानसिक गति की अन्तर चेतना या बहिर चेतना उठती तो मस्तिष्क के आज्ञा चक्र एवं चित केन्द्र पर ही है, लेकिन सारा नियंत्रण कामक्षेत्र के केन्द्र में ही निहित है ।

इसलिए बन्धुओं

इस कामक्षेत्र की स्थिति जो पशु भावदशा की स्थिति में है, इसी के रूपान्तरित ऊर्जा को उर्ध्वगति देने के लिए करूणा, मैत्री, मुदिता का श्रुंखलावत् स्वध्याय का, सहजता का भाव अपने आप में पैदा करने के लिए पुस्तक में बहुत सारी व्याख्या की गयी है ।

उसका आधार दाम्पत्य जीवन का प्रेमरस एवं श्वाँसायाम, प्राणायाम की सरलतम विधियों को सावधानी पूर्वक अपने जीवन की मानसिकता पर उतारने का अनुरोध किया गया है ।

आज हम एक कायर व्यक्ति के हाथ में ए.के. 47 या राकेट लाऊन्चर का संचालक रिमोट कन्ट्रोल ही क्यों न दे दे ! वह उसके लिए निरर्थक साबित होगा। क्योंकि कायर की मानसिकता इन सहज शस्त्रों को नहीं थाम पायेगी । हाथ से थरथरा कर शस्त्र नीचे गिर जा सकता है ।

जबकि उसकी कायरता प्रथमतः उसकी मृत्यु का भी कारण बन सकती है । कायर और डरा व्यक्ति हमेशा मृतवत् ही रहता है । लेकिन यही शस्त्र जब एक साहसी स्त्री या पुरुष के हाथ में होता है, तो बड़ी से बड़ी देश की सेना और शत्रु थर्रा जाते हैं एवं उनका अपना आत्मरक्षा भी होता है ।

कर्ण, अर्जुन या नेपोलियन, हिटलर, लक्ष्मीबाई- हमारे आप से बड़े नहीं थे ! जो मानवीय गुण हममें-आपमें है, उसका कुछ अंश ही, उनको ऐतिहासिक नर-नारी बना दिया ।

नेपोलियन बोनापार्ट को किसी हस्त शास्त्री ने बताया कि आपकी भाग्यरेखा हाथ के मध्य में समाप्त हो रही है, आपका सूर्य अस्त होने वाला है । तो उसने फल काटने बाले छूरी को उठाकर अपने हाथ के भाग्यरेखा को चीर कर आगे बढ़ा दिया और खून से लथपथ हाथ को हस्तशास्त्री के सामने बढ़ाते हुए बोला, कि देखो अब भाग्यरेखा कहाँ समाप्त हो रही हैं !

इसी तरह अध्यात्म का क्षेत्र हो या युद्ध का क्षेत्र, या शिक्षा का क्षेत्र हो, या कर्तव्य का क्षेत्र हो, संकल्पवान नर-नारी ही आत्मावान

शिव-शक्ति हो सकते हैं । कुण्डलिनी जागरण कर थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि से सदा के लिए हम मुक्त हो जाय एवं मेरा अंतरिक्ष ही बदल जाय, इसके लिए दृढ़ ईच्छा शक्ति एवं संकल्पवान होना परम आवश्यक है ।

हालाकि यह संकल्पवान होने की सीढ़ी ब्रह्मचक्र तक जाकर बिल्कुल शून्य हो जाती है । बल्कि यही संकल्प शक्ति वहाँ बाधा हो जाती है । शून्यता की स्थिति तो सारी प्रज्ञा का खो जाना है ।

गौतम के संकल्प में आ गया कि मैं पृथ्वी पर फिर जन्म लूँगा ! तो उचित कोख में जन्म लेने का प्राकृतिक समय आ गया है । चूँकि द्वैत तक बगैर संकल्प शक्ति के अगले सीढ़ी पर बढ़ना सम्भव ही नहीं हैं !

लेकिन भगवान महावीर जो निर्वाण को गये । उनकी तो संकल्प शक्ति ही खो गयी । संकल्पवल शून्यता की स्थिति में अस्तित्व में रह ही नहीं सकता ! उनका अंतरिक्ष का परिवर्तन तो हो ही जायगा ! लेकिन मनुष्य योनि के जन्म-मरण से छुटकारा तो मिल ही जाना है !

लेकिन स्थूल शरीर के स्थूल जगत में बिना संकल्प और लक्ष्य के न किसी साधन में सफलता पा सकते हैं और न जीवन क्षेत्र के किसी लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं । इसलिए भावना की निर्मलता के लिए मानसिक एवं शारीरिक सादगी भी आवश्यक माना गया है एवं भोजन की शुद्धता को भी अग्रणी श्रेणी में रखा गया है ।

आज भी मंत्र एवं मंत्रशक्ति, तंत्र एवं शक्ति ऊर्जा वही है । केवल हमारी मांत्रिक एवं तांत्रिक शक्ति संचरण की व्यवस्था खो गयी है । ध्वनि प्रदूषण एवं हमारी श्वसँन क्रिया की अशुद्धता हमें नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु तक पहुँचने ही नहीं दे पा रही है !

इसलिए सारे मंत्र एवं तंत्र शक्ति निर्जीव से हो रहे हैं !

आज भी सप्त ऋषि के सप्त मंडल एवं ध्रुव मंडल से प्राण ऊर्जा की तरंगें नितसर्गित हो रही है । लेकिन हमने प्राण ऊर्जा की ग्राह्य शक्ति को खो दिया है, जो प्राण शक्ति सृष्टि में संचरण कर रही है !

पुस्तक लिखने का उद्वेश्य, आज फिर से हमें उन्हीं प्राण शक्ति के प्राण ऊर्जा

प्रवाह में प्रवेश पाना है ! हम शिव एवं शक्ति स्वरूपा मानवीय दामपत्य सूत्र में बंधते ही, शिव शक्ति की प्राण ऊर्जा क्षेत्र में प्रवेश पा चुके हैं !

आज हमें ध्यान, प्रार्थना, भक्ति आस्था, विश्वास का दिव्य ज्योति अपने प्रेममय जीवन में जला कर, कुण्डलिनी जागरण के ज्योतिर्मय आभा में अपना कल्याण करते हुए समाज, राज्य, राष्ट्र को नयी दिशा देनी है ! अब हम कुछ विशिष्ट महामना के श्रेणी में आने वाले हैं !

धन्य मैं और मेरा भाग्य !

जो मेरी लेखनी से लिखी गयी पुस्तक आपके स्वर्ग की ही सीढ़ी नहीं बल्कि निर्वाण की भी सीढ़ी बन रही हैं !

अहोभाग्य से

विभूषित

ध्रुव

प्राण चेतना

चार दिन हमें जिन्दगी है मिली, फुल खुसियों के इसमें खिलाते रहो !
प्यार ही प्यार बॉटो जगत में सखा, खुद हँसो दूसरे को हँसाते रहो !
ये सुखद रोसनी, ये सुनहरे सपन, कुछ समय के लिए तुम्हारे लिए !
श्रेष्टता से भरी जिन्दगी पुज्य है, ये भरा गगन है तुम्हारे लिए !
पंचतत्वो का जीवन रहे संतुलित, प्राण की चेतना को बढ़ाते रहो !
यह जगत प्रभू की मूरत मनोहर परम इसकी अराधना में लगे श्रम समय !
ध्यान साविता का धर कर करो साधना, तेज को सोखकर हो विसर्जन विलय !
गुरू कृपा से ही मिलती परम, सिद्धियाँ, ज्योति से ज्योति को तुम जलाते रहो !
प्यार सहकार से हो भरी जिन्दगी, जग से पीरा, पतन को मिटाते रहो !
त्याग, बलिदान, करूणा, दयाभाव में, ज्ञान की ज्योति जग में जलाते रहो !
कर सको साधना तो, करो प्रेम की, नेह का नीर सबको पिलाते रहो !

कर्मिक गति

एक प्रमाणिक कथा है कि तीन भाइयों का समृद्ध परिवार था। मझोले भाई के मन में आया की बड़ा भाई जो दोनो पैर से अपाहिज है एवं चार बच्चों में दो लड़कियाँ और दो लड़कें की पढ़ाई-लिखाई, लालन-पोषण एवं शादियों का भार पूरे परिवार पर है । वे कुछ काम तो कर नहीं पाते । चलते व्यापार पर बैठकर केवल कुछ देखभाल कर लेते हैं ।

मैं और मेरा छोटा भाई, जिनके केवल एक लड़का और मुझे भी एक लड़का है ! हम दोनों भाई पूरी लगन और मेहनत से कारोबार सम्भालते हैं । इसलिए पूरी सुख-शान्ति और समृद्धि का कारण मैं ही हूँ, तो क्यों मैं उन अपाहिज परिवार का बोझ उठाऊ !

इसलिए दोनों भाइयों ने उस अपाहिज भाई से विभाजन का फैसला कर लिया । छोटे भाई कि युवा पत्नी कुछ ज्यादा ही बुद्धिमान और समझदार थी । उसने उच्च श्रेणी के एक संत से जाकर निवेदन किया कि इस विभाजन की परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिए । मुझे अलग रहना चाहिए या किसी भाई के साथ रहना चाहिए ?

जबकि मझौले और छोटे भाई का आपसी निर्णय था कि बड़े अपाहिज भाई को अलग करके, साथ रहकर इस बड़े व्यापार को चलाऊँगा।

छोटे भाई की पत्नी संत से सलाह लेने उनकी कुटिया पर पहुँची । संत ने छोटे भाई की पत्नी को सलाह दिया, कि " वह तीन बराबर पैमाने का दीप उपलब्ध कर ले ! जब पूरा परिवार सो जाय, तो तीनों भाइयों के दरवाजे पर एक-एक दीप, एक जैसे निश्चित पैमाने पर तेल और बाती देकर जला दें । चार बजे सुबह में तीनों दीप का निरक्षण करे !

जिसके दीप में सबसे ज्यादा तेल बचा हो एवं दीप जल रहा हो, उसी को भाग्यवान और ऊर्जावान परिवार माने एवं उसके साथ रहकर प्रेम और सम्मान का जीवन जीये । छोटी बहू ने ऐसा ही प्रयोग तीनों भाइयों के दरवाजे पर दीप जलाकर किया ।

उसने देखा कि उसके अपने दीप की बाती तो कब का बुझ चुका है । मझोले भाई के दरबाजे पर की दीप का बाती टिमटिमा कर बुझने वाला ही है ।

लेकिन उस अपाहिज बड़े भाई के दरबाजे पर का दीप बहुत गम्भीर ऊर्जा से जल रहा है एवं तेल भी बहुत बाँकी है । उस छोटे भाई की पत्नी ने बटबारे में बड़े अपाहिज भाई के साथ रहकर नये सिरे से व्यापार किया एवं उसकी समृद्धि दिन-दूना, रात चौगुना होने लगी ।

परिवार में शिक्षा-दीक्षा, विवाह-संस्कार करते हुए, छोटे और बड़े भाई का परिवार समृद्ध होने लगा ।

लेकिन मझोले भाई का पुराना चलता व्यापार बर्बाद हो गया एवं कष्ट और दुख में जीवन बीताने की परिस्थिति सामने आ गयी ।

अब यहाँ हमें बौद्धिक रूप से सोचने की जरूरत है, कि जब तीनों भाइयों के दरवाजे पर बराबर तेल बाती से दीप जलाई गयी, तो इतने प्रत्यान्तर से क्यों बाती बुझती और जलती रही !

गौतम बुद्ध ने कहा था, कि "जो दीप तुम शाम में जलाते हो, वह सुबह में वही नहीं रह जाता है । प्रतिक्षण तेल और बाती अग्नि के संचरण में प्राण ऊर्जा लेती रहती है एवं ताप और धुएँ में अपना स्वरूप खोकर नये ऊर्जा में रूपान्तरित होती रहती है ।

दीप में ऊर्जा प्रवाह की गति इतनी तीव्र रहती है कि नंगी आँखों से हम ऊर्जा प्रवाह का प्रतिफल बनते और मिटते प्रतिबिम्ब को नहीं देख पाते हैं । प्रतिपल का जलता स्वरूप हमें आभामय प्रकाश देता हुआ महसूस होता है ।

हम अपने कर्मफल, कर्मबंधन एवं भावदशा के अनुरूप प्राकृतिक प्राण ऊर्जा को ग्रहण करते रहते हैं । प्रकृति अपना नियम कभी नहीं बदलती । हमारा क्रियात्मक एवं भावनात्मक जो भी प्रतिक्रिया हममें पैदा होती है, उसके अनुरूप उसी क्षण हमारा काम, क्रोध, लोभ, मोह अपना स्वरूप पकड़ लेता है । यह काम, क्रोध, लोभ, मोह हमारे नियंत्रण में नहीं है ।

यह हमारे अवचेतन में बराबर बना ही रहता है एवं सूक्ष्म शरीर की गति में इसके ऊर्जा प्रवाह की गति, इस सांसारिक जीवन प्रवाह में; दुख-सुख, मान-अपमान, हिंसा-द्वेष, प्रेम-दया, सत्य-अहिंसा, में प्राकृतिक रूप से हम पर अपना नियंत्रण बनाए ही रखते हैं !

हमारा अपना नियंत्रण तो सूक्ष्म शरीर के चेतन एवं अवचेतन मन पर तो है ही नहीं ! हम अवश, अथक इनके जेलखाने में बन्द बेरियों से बंधे कैदी की तरह, केवल अपनी वासनाओं के प्रवाह में कम्पायित एंव तरंगायित होते रहते हैं । बाद में पश्चाताप करके भी हम अपनी प्रवृत्तियों का निदान नहीं कर पाते ।

चूँकि इस सांसारिक गति में हम प्राण प्रवाह में आये अपने प्राण शक्ति के ऊर्जा प्रवाह में ही, यंत्रवत् सारे कर्म करते चले जाते हैं ।

जबकि इस यांत्रिक स्थूल शरीर में प्राण ऊर्जा (रिफ्सोलौजी) उलटा प्रवाह के लिए कुण्डलिनी शक्ति की ईश्वरीय अनन्त ऊर्जा सतत् मौजूद है एवं बीज रूप में हमेशा कार्यरत रहकर हमारी जीवनशैली को चलाती रहती है ।

हमारी साधना के बल पर जो काम, क्रोध, लोभ, मोह इस सृष्टि के सांसारीक गति को कायम रखने में हममें संचरित हो रही है, उसको अपने- ईंगला, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के श्वसनक्रिया द्वारा नियंत्रित कर इस कुण्डलिनी शक्ति के प्राणऊर्जा प्रवाह की गति को मोड़ सकते हैं

षष्ट्चक्र के ऊर्जा प्रवाह में प्राण शक्ति को संचरित कर, अपने इस यांत्रिक स्थूल शरीर पर ही नहीं, वरन अपने सूक्ष्म शरीर पर नियंत्रण करते हुए, पूरे विश्व को अपने करूणा, मैत्री, मुदिता की आनन्दमय अवस्था में ला सकते हैं ।

इन्ही सिद्धांतो के कार्यरूप को मूर्त रूप देने के लिए ऊपर का पारिवारिक प्रमाणित उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । इन्हीं सिद्धान्तों के प्रतिरूप हम मनुष्य भी प्रतिपल एक साँस लेने और छोड़ने में प्रोजेक्टर से फिल्म संचालन की तरह मरते और जीते रहते हैं ।

प्रोजेक्टर में पर्दे पर हम पूर्ण मानवीय स्वभाव में किसी भी पारिवारिक कथानक को उसी स्वरूप में चलते एवं वाद-संवाद करते देखते हैं । लेकिन एक हाथ उठाने तक की गति में हजारों टुकड़ों में चित्र (फिल्म) को गति देकर संचालित किया जाता है। तो वाद-संवाद एवं फिल्म को फिल्माते हुए हम देख पाते हैं ।

जब हम पैदा लेते हैं, तो साँस लेते हुए पैदा लेते हैं एवं साँस छोड़ते हुए

अन्तिम साँस की गति मृत्यु प्राप्त कराती है ।

लेकिन सृष्टि सम्मत एवं विज्ञान सम्मत सिद्धान्त बतलाती है कि इस सृष्टि में बिनष्टिकरण तो है ही नहीं ! फिर मृत्यु किसकी होती है ?

ऐसा अन्वेषण से जाना गया है कि यह पंचभूत स्थूल शरीर तो क्षित, जल, पावक, गगन एवं वायु से बना है । वह स्थूल शरीर बिनष्ट होकर सूक्ष्म शरीर में पंचभूत में मिटकर पंचभूत-क्षित, जल, पावक, गगन और वायु में ही मिल कर विलीन हो जाता है ।

लेकिन उसके प्रतिक्रियात्मक ऊर्जा स्वरूप मेरा अहंकार बचा रह जाता है । जो फिर सूक्ष्म और कारण शरीर का निर्माण कर अपने कार्मिक शरीर का निर्माण कर लेता है और चल पड़ता है, अपने कर्मयोग की गति में योनियों की परिधि में

इसलिए बन्धुओं !

अपने इस पवित्र मानवतन की गति को समझो !

तुम्हारे कार्मिक गति से मानवीय कार्य एवं भावनाओं की सफलता में तुम ही केवल मूल कारण नहीं हो ! तुम जिस परिवार, राज्य एवं राष्ट्र से जुड़े हो, उसकी प्राण ऊर्जा में संचरित गति भी तुम्हारे सुख-दुख का कारण है । इन सभी में संचरित प्राण ऊर्जा का त्वरित वेग का संगठित वेग भी तुम्हारे मानव जीवन को आनन्दित रखती है ।

तुम्हारे परिवार की रूपरेखा ही नहीं, राज्य का राजा जैसा होता है; वैसी ही तुम्हारी मानसिक एवं भावनात्मक गति बनती है । जैसा और जिस तरह के भूमि, जल, आकाश, अग्नि से प्राप्त तुम अन्न-जल ग्रहण करते हो! वैसी ही तुम्हारी मनोवृत्ति एवं भावदशा बनती है ! हर पल तुम नये मानव और नये विचारधारा में जन्म लेते हो ! प्रतिपल तुम्हारा शारीरिक एवं मानसिक स्वरूप बदलता रहता है ।

प्रत्येक साँस की गति में हमारे करोड़ों सेल (कोषा) एवं हजारो नस-नाड़ियाँ प्रकृति से ऊर्जा ग्रहण कर, नयी चेतना में नयी शक्ति प्रदान करती रहती है एवं पुराना शक्ति स्वरूप बदलता रहता है ।

हम अपना फोटो ही साल दो साल के अन्तर पर खींच कर सभी फोटो में अन्तर देखना चाहें, तो यह सूक्ष्मान्तर स्पष्ट नजर आयगा । हम

आयना में अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं, तो हमारा सम्पूर्ण चित्र अपने व्यक्तित्व के साथ प्रतिबिम्बित नजर आता है ।

लेकिन वैज्ञानिक शोध से पाया गया है कि चेहरे का दायाँ भाग एवं बायाँ भाग भी अलग-अलग स्वरूप में होता है । चूँकि शरीर के दोनों भाग का नियंत्रण मस्तिष्क के दोनों अलग-अलग भाग से उल्टी दिशा में होता है ।

अगर चेहरे का दो फोटो ही पोज (स्वरूप) में लिया जाय और नाक के बीच से काटकर दोनों फोटो को विपरित दिशा में मिलाकर देखा जाय, तो चेहरा अलग ढंग में एवं अलग व्यक्तित्व में नजर आयगा । आयना में अपने दृष्टि दोष के कारण हम अपने स्वरूप को सम्पूर्ण अपने प्रतिबिम्ब में मानते हैं ।

लेकिन आयना में, वह हमारे सम्पूर्ण शरीर के बिन्दु का उल्टा प्रतिबिम्ब होता है । उदाहरण स्वंरूप हम किसी पुस्तक को आयना के सामने रखें, तो पुस्तक का प्रत्येक अक्षर एवं पंक्ति उलटा नजर आयगा ।

इसलिए किसी भी वस्तु को जब हम देखते हैं, तो वस्तु ही मेरे आँख द्वारा अन्दर नहीं चली जाती है । उसका उल्टा प्रतिबिम्ब हमारे मस्तिष्क पर बनता है, फिर मस्तिष्क उसको सीधा करके देखती है ।

इसी तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह जो मध्यस्थ बिन्दु है, प्राकृतिक रूप से ईश्वरीय स्वरूप का ऊर्जास्रोत है । परमाणबिक गति के स्वरूप में ही इसका एक छोर-द्वेष, घृणा, अहंकार, संहार है; तो दूसरा छोर अहिंसा, प्रेम, दया, क्षमा है ।

हम अपनी परिधि से कैसे भाग सकते हैं !

प्राकृतिक रूप से दोनों छोर तो हममें मौजूद ही रहेगा ! जबकी एटम की न्यूक्यूलियर बिन्दु की तरह, काम, क्रोध, लोभ, मोह हमारे सूक्ष्म शरीर द्वारा प्राण ऊर्जा के रूप में कारण शरीर में स्थित आत्मा द्वारा संचरित अनन्त ऊर्जा स्रोत से ऊर्जा लेती ही रहती है ।

हम न जन्म-मरण के जीवनशैली से बच सकते हैं और न इस सृष्टि के संचालन में नर-नारी क्या! पूरे व्यालिस लाख स्थूल जगत एवं व्यालिस लाख सूक्ष्म जगत के प्राण ऊर्जा के संचरण परिधि को भी नहीं तोड़ सकते हैं । हाँ ! अपने घृणा, द्वेश, अहंकार, संहार एवं अहिंसा, प्रेम, दया,

क्षमा के चक्रबात को; काम, क्रोध, लोभ, मोह के चक्रवातीय बिन्दु पर ईश्वरीय बिन्दु, में मिलकर एकाकार हो सकते हैं !

ब्रह्मबिन्दु तो मानव जाति की केवल परिकल्पना है और ईश्वरीय बिन्दु एवं कैव्लय बिन्दु; आयना में दिखने वाले प्रतिबिम्ब की तरह ब्रह्मबिन्दु का ही प्रतिबिम्ब है । जो ब्रह्म के ठीक उलटा स्वरूप में योगमाया का स्वरूप है ।

इसलिए गौतम और महावीर क्या ! कोई भी ऋषि मनीषि भी ब्रह्मबिन्दु के सत्य को उद्भाषित नहीं कर पाये ! इस प्रश्न के उत्तर में चुप ही रह गये । क्योंकि इसकी व्याख्या कौन करे, जो शब्दावली से बाहर है !

काम, क्रोध, लोभ, मोह तुम्हारा ईश्वरीय स्वरूप है । इससे बचने की परिकल्पना ही छोड़ो ! अपने प्राण ऊर्जा के रूपान्तरण के लिए, इसके विशुद्ध रूप- तमस्, रजस् एवं सतज् के स्वरूप में अपने प्राण ऊर्जा को बदलो !

जिसका प्रारम्भिक बिन्दु, सृष्टि बिन्दु की तरह तुम्हारे पारिवारिक परिवेश में समाहित है । तुमने यह वैभव, धन, सम्पदा, पत्नी, बच्चे, मान, सम्मान सब इसी ईश्वरीय बिन्दु के फैलाव से पाया है ।

केवल इस ईश्वरीय बिन्दु से अपने काम, क्रोध, लोभ मोह को संतृप्त कर तृप्ति की भावदशा में आना है ! प्रकृति तो तुम्हें इनके दोनों छोर से तृप्त होने का साधन दिया है । अगर तुम धन विद्युत के रूप में शिव हो तो पत्नी ऋण विद्युत के रूप में शक्ति है !

काम का फैलाव ही क्रोध, लोभ, मोह है । जिस तरह विष्णु के योगनिद्रा का फैलाव ही योगमाया के रूप में सृष्टि है । जैसे ब्रह्म के श्वसनक्रिया के एक साँस छोड़ने और लेने में सृष्टि और प्रलय है ।

उसी तरह यह काम-कामेश्वरी, तुम्हारी पति-पत्नि के शिव शक्ति का मिलन बिन्दु है एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, इसकी योगमाया है ।

अगर दिव्य स्वरूपा लावण्यमयी लक्ष्मी, रेशमी परिधान एवं रत्नजरित मुकुट एवं जराऊ स्वर्ण आभूषण में दिखलाई देती है; तो बिष्णु भी पिताम्बरी पहने मुकुट धारण किये, स्वर्णाभूषण एवं मणि मणिक की माला पहने हमारे देवताओं के

स्वरूप में दिखलाई देते है ।

लेकिन यह स्वरूप तो हमारे मानव जीवन के नर-नारी के विमोहित-स्वरूप का ही प्रतीकात्मक चित्रांकन है । यह तो तुम्हारे प्राकृतिक स्वरूप को ही, मनीषियों ने बिनष्ट होने के बचाने के लिए शास्त्रों एवं चित्रों के माध्यम से, तुम्हारे ही नर-नारी के स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के तिलस्म में बन्द कर रखा है।

नाभिकुण्ड से निकलते कमलदन्ड के ऊपर कमल पर बैठे, ब्रह्मा के एक साँस लेने में सृष्टि एवं छोड़ने में जो प्रलय का दृश्य दिखलया गया है, वह भी तुम्हारी प्रवृति में है !

वह जीवन-मरण की श्रृंखला-गति के ईंग्ला-पिंगला की स्वसन-गति के नियंत्रण से, नाभिकुण्ड से निकले कमलदन्ड स्वरूपा तुम्हारे सुषुम्ना में प्रवेश कर, तरंगायित होने की गति ही तुम्हें ब्रह्मा बना देती है । इस ईंग्ला-पिंगला की गति को साम्यावस्था में लाकर सुषुम्ना की गति में आने पर, ऋषि-मनीषियों को भी इस लालायित मानव योनि में आने के लिए तुम्हारी काम-कामेश्वरी की लीला, योगमाया की लीला हो जाती है ! साधन तो तुम्हारे इई-गिर्द अणु-अणु में समायी हुई है !

जरूरत है इसके सिद्धान्त को समझकर इसके प्रतिफलन की । तुम सृष्टि की अनुपम कृति स्वरूपा मानव तन में हो ! तुम्हारा कृष्णमय एवं राधामय स्वरूप ही सृष्टि के मूलबिन्दु का कारण है ।

इतना शक्तिशाली होकर भी तुम भिक्षापात्र लेकर साधु-संतों के मिथ्या स्वरूप, भ्रमजाल में फँस कर अपनी महत्वाकांक्षा का दंश झेल रहे हो ! तुम्हारा प्रेममय स्वरूप तो मंगलमय एवं अमंगलहारी है ! तुम अपने आप को एक बिन्दु की इकाई ही नहीं समझो ! तुम्हारा अणु अणु महासागर समाए बैठा है !

इन्हीं सम्भावना की कार्मिकगति एवं भावदशा के रूपान्तरित स्वरूप को कैसे हम ऊर्ध्वगति में ले जाय उसका पूर्ण विवेचना तो पूरे पुस्तक में की गयी है । लेकिन कुछ सूक्ष्म विवेचना "प्राणवायु एवं प्राण शक्ति में सूक्ष्मान्तर" नामक शीर्षक में करने का प्रयास किया गया है ।

स्पर्श समाधि (गौतमतंत्र)

चित्र संख्या-5

"ॐ' है मंत्र एवं काम-कामेश्वरी की क्रीड़ा लीला है तंत्र !" के अन्वेषन में ऐसा दिखाता है कि ध्यान बिन्दु एवं काम बिन्दु ही मुख्य आधारशीला है; इन दोनों ऊर्जा के उर्ध्वगमन एवं अधोगमन का !

जब-जब काम वासना जागती है, तो मूलाधार पर कुण्ड मारे सर्पनी अपना सर उठाती है एवं सुषुम्ना द्वारा अपना प्राणवायु का वेग पा कर, उसके गति में अपना गति मिलाती है ।

लेकिन यह तभी सम्भव है, जब स्वसन गति पर से पृथ्वीभार, जलभार एवं वायूभार कम हो ! नाभिकुण्ड तक आये ताण्डेन बिन्दु के नमनीयता बिन्दु पर आ कर, सूक्ष्म से सूक्ष्म श्वसन वायु स्पर्श होने से ही कुण्डल मारे सर्प का कुण्डल खुलता है एवं वह कुण्डलिनी के सर्पील गति में उर्ध्वगमन कर सकती है ।

श्वसनक्रिया का स्पर्श तो इस स्थूल शरीर के नाभिकुण्ड के नमनीयता बिन्दु पर ही होगी ! लेकिन कुण्डलिनी का सर्पील गति शरीर के पिछले भाग से गुजरती मेरूदण्ड के पोले भाग पर स्थिति चक्रों को स्पर्श करते हुए, अनाहत तक जा कर, अपनी विद्युतीय परिधि बनायगी । जो सूक्ष्म शरीर की गति में है एवं आत्मगति से दूगुने के लगभग कम्पन्न गति में कुण्डलिनी की गति में है ।

वासनात्मक काम-क्रिया की स्थिति में वही सर्पनी अपना फन तो उठाती है, वासना वेग में ! लेकिन वासना के क्षणिक वेग में वीर्य रूप में मुँह से फेन उगल, फिर मूर्छिता अवस्था में आकर कुण्डलमार मुँह को अन्दर छुपाकर सारी कुण्डलीय क्षमता को समाप्त कर लेती है और हम निढ़ाल, निराश एवं विरक्ति की स्थिति में आ जाते हैं । जो ऊर्जा हमें अनन्त तक की आत्मगति के तृप्तावस्था में ले जा सकती थी; वह क्षणिक उद्वेंग में हमारी मुक्ति की सारी सम्भावनाओं को तोड़ देती है ।

अतः तंत्र इस पर अनादिकाल से गहनता से अन्वेशन करता आया है । इसी अन्वेषण में बहुत सारे तंत्रों की विधियाँ सामने आयी ।

जैसे षोडशी विद्या, श्री विद्या, त्रिपुरसुन्दरी विद्या, भैरव तंत्र, सावर तंत्र वगैरह। वैसे भी सभी चक्रो को स्पंदन देने वाली चौसठ योगनियों की चर्चा मनिषियों एवं तंत्र शास्त्रियों ने की है ।

सोलह मातृका और बाबन वर्ण का निवास मणिपुरक में जहाँ तक काम क्षेत्र है, उसमें बतलाते हुए इसके चौसठ योगनियों की उपासना पद्धति मनीषियों ने उसके कम्पन्न गति को जान, मंत्र स्वरूप में साधना का स्वरूप प्रस्तुत किया है ।

मणिपूरक चक्र मेरूदण्ड पर शरीर के पिछले भाग पर नाभि चक्र से तीन अंगुल ऊपर है । लेकिन श्वसनक्रिया का, केन्द्र बिन्दु नाभिकुण्ड पर होने से, शब्दावली के बाबन अक्षर पर आज्ञा चक्र के अनुस्वार का टंकार पड़ने से इन योगनियों के आवाहन मंत्र बन जाते हैं एवं हमारे बैखरी वाणी के लाखों शब्दावली का कारण, मेरे प्राण वायु के कम्पन्न द्वारा ध्वनि तरंग ही होता है ।

प्रस्तुत चित्र में गौतम काल के भैरव तंत्र का प्रस्तुतिकरण है । जिसमें पंचमकार विधि-अपनाने पर भी कामिनी के स्थूल शरीर के आलिंगन द्वारा स्पर्श बिन्दु से, साधक के स्पर्श बिन्दु द्वारा ही साधना का स्वरूप देखने को मिलता है ।

यहाँ मानसिक प्रेमपाश का उद्याम तरंग जब चरम उत्कर्ष पर होता है, तो ध्यानस्थ एकाग्रता बिन्दु पर श्वसनक्रिया, प्राणायाम् की गति में नियंत्रित करते हुए, ताण्डेन बिन्दु से कुण्डलिनी गति में प्रवेश करने का साधना स्वरूप में दिखलाया गया है । चित्र में गौतम के भैरव तंत्र की अभिव्यक्ति में पंचमकार की शुद्धतम स्थिति को दर्शाया गया है । अदृश्य चक्रो की ज्योति मेरूदण्ड से पौन से डेढ़ ईंच बाहर तक दृव्यि ज्योति तरंग में है।

कामनी के एक हाथ में मदिरा प्याला एवं दूसरे हाथ में मदिरा पात्र दर्शाया गया है । यह चित्रांकन पंचमकार में भी अति कामातिरेक की मनोदशा को नियंत्रित कर शुद्धतम साम्भवी मुद्रा के ध्यानस्थ साधना क्रम के प्रस्तुतिकरण में प्रदर्शित किया गया है ।

जड़ी-बुटी से तैयार औषधीय मद्य अगर साधक साधिका के पेय में आता है तो वह सीधे आत्म तत्व के मनस शरीर पर अपना प्रभाव छोड़ता है एवं आत्म तत्व को विरल कर, ध्यान बिन्दु पर आने से प्राणवायु के भारीय तत्व को कम कर काम ऊर्जा को ध्यान ऊर्जा के केन्द्र बिन्दु में समाहित कर लेता है ।

कुण्डलिनी की परिधिय गति, मूलाधार और अनाहत के बीच कर्मबंधन को भस्म करने की गति में, अपने प्राण ऊर्जा का संकलित परिधिय गति बनाता है ।

यहाँ काम पुरूष वाचक एवं कामेश्वरी स्त्री वाचक स्वरूप में स्थूल शरीर के स्पर्श बिन्दु से ही सूक्ष्म शरीर के स्त्रैण एवं पुरुषत्व का प्रतिशत, विद्युतीय तरंग साम्यरस में आ कर, एकाकार बिन्दु बनाती है

कुण्डलिनी गति में बर्णित चारों चक्रों पर जहाँ तक द्वैत है, वहाँ तक की कुण्डलिनी गति में कर्मबंधन के भस्म होते ही साधक साधिका में अद्वैत की यात्रा हेतु आत्मगति प्रदान कर देती है ।

साधक स्त्रैण एवं पुरुषत्व के इलेक्ट्रॉन एवं पोट्रॉन के नाभिक बिन्दु न्यूट्रॉन पर समाकर अर्द्धनारीश्वर का रूप लेने लगता है एवं जन्म-मरण की योनिगत श्रृंखला से निकल समाधि की वैश्चिक, भागरथी एवं ब्राह्मी अवस्था प्राप्त करने लगता है ।

इस पंचमकार विधि में प्रत्यक्ष सम्भोग की व्यवस्था नहीं दिखती है और न कामोतिरेक में स्खलन की सम्भावना होती है । केवल स्पर्श बिन्दु द्वारा काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा द्वारा ज्ञान ऊर्जा में बौधत्व प्राप्ति के साम्यरस में चित्रण दिखलाई गयी है ।

यह वाममार्ग के ''रामायोग के चित्रण में चित्रित विशुद्ध प्रेम और आस्था के आनन्ददायक स्वरूप में दिखलाया गया है । जिसमें वगैर शारीरिक मैथुन के भी कुण्डलिनी जागृत कर आत्मगति पायी जा सकती है ।

राधा-कृष्ण का प्रेम प्रसंग एवं ऋषि व्यासदेव का चच्छु भेदन से धृतराष्ट्र, पाण्डव एवं बिदुर का जन्म कुछ इसी रामायोग के श्रेणी में हैं ।

चित्र का नामकरण ''डाकनी का प्रेम पाश भी'' हैं । जो पंचमकार पद्धति में मूलाधार पर डाकनी सिद्धि के स्वरूप में भी देखा जा सकता है । डाकनी लोक का सम्बन्ध पृथ्वी से मिला-जुला है एवं इनमें पृथ्वी तत्व की अधिकता होती है ।

साधक जब बैखरी वाणी के कम्पन्न तरंग में ''वं, शं, षं, सं'' का विधिवत साधना स्वरूप का साधना करता है, तो डाकनी पृथ्वीतत्व की अधिकता के कारण स्वयं प्रकट हो जाती है । या किसी स्त्री के लावण्यमय स्थूल शरीर का सहारा ले, साधक को नग्न भाव में भ्रमित करने लगती है । अगर साधक के मनोभाव में कामुकता का विकार आता है, तो उसकी साधना निष्फल हो जाती है ।

साधक पागल या विक्षिप्त मनोदशा का शिकार हो जाता है ।

कुण्डली साधना के गलत प्रयोग से कुण्डलिनी अपान प्राण के क्षेत्र में घुस जाती है और साधक के शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को बिल्कुल अव्यवस्थित कर देती है । जिसका निदान कोई भी भौतिकवादी तरीके से सम्भव नही है ।

केवल लोम-विलोम एवं प्राणाकर्षण प्राणायाम के मंदगति श्वसन द्वारा ही इसका कुछ निदान हो सकता है ।

अतः कोई भी साधना मनोभावदशा के नियंत्रण से ही सम्भव है । सिद्धियाँ हमें इस भौतिक स्थूल जगत की उपलब्धियाँ तो दे देती है । लेकिन कुण्डलिनी गति से ऊपर अद्वैत की परमानन्द की उपलब्धि की सारी सम्भावनाए अवरूद्ध कर देती है ।

तीसरी शताब्दी से सातवी शताब्दी तक तांत्रिकों ने इस प्राण ऊर्जा के द्वारा प्राप्त तंत्रविधि से इसका स्वरूप वासनात्मक कर, समाज में तंत्र के निकृष्ट स्वरूप को ही प्रदर्शित किया है । समाज इन तांत्रिकों से ज्यादा आक्रान्त हो रहा था ।

शराब जो किसी भी अन्न या पदार्थीय तत्व को सड़ाकर बनायी जाती है, जिसमें निकृष्ट जिबाणु के पैदा होने की ही सम्भावना रहती है । जिसके सेवन से वासनात्मक प्रवृति ही पैदा होगी ! तो तंत्र के इस गुह्य साधना को कैसे नैसर्गिक स्वरूप दिया जा सकता है !

अष्टांगयोग जहाँ खत्म होती है; वहाँ से ही इस रामायोग और मातंगीयोग की शुरूआत होती है । इसलिए इस योग का विशुद्धतम रूप योनिय चक्रवात को तोड़ने का ईश्वरीय स्वरूप है ।

अतः इस रामायोग के साधना पद्धति में काम-कामेश्वरी के काम ऊर्जा 'एवं ध्यान ऊर्जा का प्रयोग तो है!

लेकिन शारीरिक मैथुनात्मक नहीं है ।

केवल प्रेम और आस्था का आनन्ददायक नैसर्गिक स्वरूप ही ज्ञान ऊर्जा के बौधात्मक स्वरूप में है ।

कुण्डलिनी शक्ति

बज्रा योगिनी तमस् रजस् सतज् साधना क्रम में

चित्र संख्या-6

यह चित्रण तांत्रिकों में तमस्, मांत्रिको में रजस् एवं सदगृहस्त संत में सतज् भाव में करने की भावदशा में चित्रित किया गया है । बज्रा नाड़ी हमारे कामक्षेत्र के तीनो चक्रो से सम्बन्धित है एवं साधना शिव-शक्ति के अराधना स्वरूप में है ।

चित्र में नीचे बगल में तांत्रिको के शव् साधना के स्वरूप में या स्पर्श साधना के स्वरूप में भैरव के ठेहुना के ऊपर गोद में नग्न नारी का स्वरूप दिखलाया गया है ।

जिसमें भैरव का एक हाथ भग पर एवं दूसरा हाथ स्थन पर रखते हुए, तांत्रिक विधि में कौरनियाँ चढ़ा हुआ एवं स्पर्श योग साधना में, साम्भवी मुद्रा में आसनारूढ़ मुद्रा में दिखलाई गई है । तांत्रिकों की साधना श्मसान में शववत् शरीर का गिद्ध द्वारा भक्षण एवं नरमुण्डों के बीच दिखलाई जा रही है ।

उससे नीचे भक्तसाधक के रूप में गृहस्थ साधक के साधना का स्वरूप है; जो सुखासन में बैठकर शक्ति के अराधना में लगा है एवं कमल की ओर हाथ का इशारा बता रहा है, कि कमलवत् पानी में रहकर भी इस संसार के भोग-विलास को ईश्वरीय उपादान मानो!

इस संसार के द्वेश, अहिंसा, अहंकार के कीचर में रहकर भी, इसके दूसरी सम्भावना- सत्य, अहिंसा, प्रेम, आस्था, विश्वास का संवल पकड़ो !

क्योंकि तुम इस संसार में रहकर इन सांसरिक भारीय कीचड़ से कैसे बचोगे ! भला समुद्र भी इतना विशाल होते हुए, कहीं भी पृथ्वी के मिट्टी से अलग है ! समुद्र के नीचे गहराई में कहीं न कहीं तो पृथ्वी के मिट्टी का आधार है! कहीं न कहीं किनारा तो है ही !

गिद्ध हमारे लाश को नोचकर खा रहा है । लेकिन यह तो हमारे सूक्ष्म शरीर के कारण शरीर में स्थित आत्मा के साथ अमरत्व का अस्तित्व लिए हुए है । जिस प्राणो का मोह लिए हम इस संसार में बैठे हैं, वह प्राण तो सूक्ष्म तरंग में प्राण ऊर्जा के रूप में ब्रह्मव्यापी है !

फिर क्यों तुम इस गिद्धवत् द्वेश, हिंसा, अहंकार के भक्षण से घबड़ा रहे हो ! यह तो तुम्हारे भाव का परिवर्त्तन है, जो तुम्हे अधोगति में ले जाय या उर्ध्वगति में ले जाय !

योगनि के गले में चौबीस मुण्ड की माला है । यह तुम्हारे कर्मफल के अनुरूप तुम्हारे चौबीस जन्म की बलिदानी स्वरूप का चित्रण है । भगवान महावीर ने चौबीस जन्म के सचरित्रता एवं साधनामय जीवन के बाद निर्वाण की गति पायी । देवी के एक हाथ में कतरनी एवं दूसरे हाथ में लहू का प्याला है ।

यह स्वरूप है, तुम्हारे काम, क्रोध, लोभ, मोह का; जो तुम्हारे रूधिर प्रवाह में तमस् भाव में मानसिक तरंग पैदा कर, इस सासांरिक वासनामय जीवन में दौड़ रहा है ।

वह तुम्हारे भावनामय भक्ति प्रवाह में तुम्हारी ही अच्छाईयां उजागर होकर, इन वासना स्वरूप का भ्रक्षण एवं पान कर लेगी ! तुम तो शिव स्वरूपा होकर, दिव्यलोक की गति पाने में अपने सह्भागनी, अर्द्धागनी पत्नी का प्रेममय सानिध्य पाकर, इस जलते वासनात्मक संसार से अर्ध्वगति पाने में शिव-शक्ति स्वरूपा होकर, ब्रह्मगति की ओर यात्रा कर पाओगे!

इसी प्रतीक में देवी के संसाररूपी बल्लभ में डमरू रूपी शब्दनाद के ध्वनी तरंग में बल्लभ के ऊपर लगे सात लोको की श्रृंखला की तरह, हमारे षट्चक्र का दर्शन है। शिव-शक्ति मृगचर्मा पहने भक्त रूप में बैठे श्मसान में पीछे से, साध्क भक्त के सर पर हाथ रख रहे हैं ।

यह प्रतीक तुम्हारे साधनामय भक्ति रस एवं प्रेमरस में डुबा तुम्हारा गृहस्थ जीवन, तुम्हारी भावनात्मक गति में ही, तुम्हे अपने में समाहित कर पायगी !

बारह कमल दल की पंखुरी में पराग पर नग्न युवती नारी के स्वरूप को, अराधना के स्वरूप में दिखलाया गया है ।

यह प्रतीक नारी जाति के सोलह वर्ष तक में सोलह कला से यौवनावस्था प्राप्त कर, अनाहत के बारह दल के कम्पन्न स्वरूपा, बारह देवी के स्वरूप में प्रेम स्थापना कर, अर्द्धनारिश्वर हो जाने के स्वरूप में है । गले के माला में एक चौकोर यंत्र उड़ते हुए दिखलाया गया है ।

यह यंत्र शिव-शक्ति के मैथुनी जगत के त्रिकोण बिन्दु में समाहित हो, स्थितिप्रज्ञ हो जाने के स्वरूप में है ।

बगल में श्मसान में मुर्दे को जलाते परिजन को दिखलाया गया है । यह प्रतीक इस मायावी संसार के स्थूल जगत से लाशवत् शरीर के अन्तिसंस्कार में परिजनों के केवल मोह दर्शन में है ।

चिता पर लाश देते ही अग्नि तुम्हारे इस निर्जिव शरीर को ही नहीं भस्मकर देती ! बल्कि मोहआक्षादित तुम्हारे भ्रम को भी तोड़ती है, कि कोई भी परिजन, कुटुम्ब बान्धव, यहाँ तक की तुम्हारी इस स्थूल जगत की अर्द्धागनी भी, तुम्हारे साथ इस स्थूल जगत से नहीं जा सकती है!

साथ तो जायगा, तुम्हारा कर्मफल, तुम्हारे जन्म-मरण की श्रृंखला ही! जो प्रेत्तव जीवन द्वारा तुम्हें अधोगति या अर्ध्वगति में ले जाये! तुम्हारे स्थूल शरीर के राख के प्राणिक ऊर्जा स्वरूप निकलता तुम्हारा कर्मबंधन है !

इस भस्म राख में भी अब क्या रखा है ! वह तो सारी सूक्ष्म प्राण ऊर्जा का रूपान्तरित स्वरूप ले, अपने पांचो प्राणों में समाहित हो, तुम्हे प्रेत संस्कार दे दिया है !

जो मनुष्य जीवन तुम्हे इस देवी-देवता के संस्कार में शिव-शक्ति स्वरूपा मिला था ! उसका उपयोग तुमनें किस तरह किया, उसी का रूपान्तरण तो तुम्हारा प्रेतस्वरूप है ! अगर सत्य अहिंसा, प्रेम, आस्था, विश्वास, करूणा, मैत्रेय, मुदिता से तुमने जीया है, तो कौन तुम्हे अर्द्धनारीश्वर होने से रोक सकता है !

प्रकृति तो अपना नियम बदल नहीं सकती है ! अगर द्वेश, हिंसा, अहंकार, घृणा से तुमने जीया है, तो फिर क्यों प्रेत्तव के घृणित दावाबल से घबड़ा रहे हो ! वह तो तुम्हारे कर्मों का ही फल है ! जैसा जीवन हमने मानव जीवन में जीया है, उसी जीवन का अंकुरण तो, मेरा देवत्व एवं दानवत्व है !

चित्र में मंदिर के भवन का भी भव्य चित्रण है । यह प्रतीक तो तुम्हारे आकांछाओ, कामनाओं में रहते हुए, गाड़ी, बंगला, वैभव, एश्वर्य के बीच इस वैभवपूर्ण जीवन को मन्दिर मान, देवी के तरह सारे मोह-माया को छोड़, उर्ध्वगति में प्रस्थान का दिव्यस्वरूपा आत्मदर्शन है!

जो इस मोह माया के दावानल से तुम्हारे भक्ति, अराधना से प्रसन्न होकर, तुम्हे इन विजातिय भावनात्मक भारीय स्वरूप से बाहर करती है !

"टहा विद्या" की अधिष्ठात्रि देवी हमारे प्राणऊर्जा तरंग क्षेत्र में तो है, लेकिन वह देवी इस पृथ्वी के भारीय तत्व में प्रवेश नहीं कर सकती ! उड़ती जोगनी कुछ इसी तरह के चित्रण में है । तांत्रिको की श्मशान साधना लाशों के ऊपर होती है ।

कोई भी मनुष्य प्राणी की चेतना मृत्यु के उपरान्त अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा, लाशवत् पड़े स्थूल शरीर के, नाभिकुण्ड द्वारा धनंजय प्राण से तीन दिन तक जुड़ी रहती है । तांत्रिक इस धनंजय प्राण से जुड़ी स्थूल शरीर के लाश को, अपने साधना का केन्द्र बना लेते हैं

तांत्रिक मंत्राक्षरों की साधना से प्राप्त आसुरी विद्या द्वारा, उसके सूक्ष्म शरीर में अवस्थित आत्मा को कैद कर, उससे मनचाहा काम लेते हैं ।

यह तांत्रिक विद्या तीन तरह की श्रेणी में बांटा जा सकता है ।

(अ) **तमस् में प्रेतत्व की सामरी विद्या**

(ब) **रजस् में-यज्ञ किन्नर की आसुरी विद्या**

(स) **सतज् में देवत्व प्राप्त देवी-देवता की अराधणा से प्रवित्रता प्राप्त भावदशा में साधना की जाती है ।**

इसलिए तांत्रिक साधना की भावदशा एवं क्रियारूप पर निर्भर करती है, कि हम साधक अधोगति प्राप्त करें या उर्ध्वगति प्राप्त करें ! टहा विद्या बहुत पवित्र विद्या है । इसलिए इसकी अध्ष्ठिात्री पृथ्वी के भारीय तत्व में प्रवेश कर दर्शन नहीं दे सकती है ! आकाश मार्ग से ही उनका गमन है ।

लेकिन अराधना, साधना के निष्ठावान् तपव्रत् से फल जरूर देगी ! श्मशान साधना से सिद्धियां तो जरूर मिलेगी, लेकिन हम अध्ष्ठिात्री के सतज् ऊर्जा क्षेत्र से बिल्कुल अलग तो जायेंगे एवं अधोगमन में ही बंधकर रह जायेगें !

इसलिए किसी भी देवी-देवता के साधना में सतज् भावदशा में प्रेम, आस्था, विश्वास ही मेरा संबल हो सकता है । मंत्र शक्ति के उच्चारण में जब हम जिन्हवा से मंत्र उच्चारित करते हैं, तो वह बैखरी वाणी के शब्दावली में स्थूलरूप में उच्चारित होता है । मंत्र तो जिन्हवा के संचालन के कम्पन्न गति में उच्चारित होता है, लेकिन वह हमारे विचार तरंग के कम्पन्न में उच्चारित किये जाते हैं !

जबतक हमारे विचार कम्पन्न का स्पर्श जिन्ह्वा द्वारा प्रकम्पित नहीं होगा, तबतक कोई मांत्रिक साधना सफल नहीं हो सकती ! हम आज अपने भावना या मंत्रोचारण को अविष्कृत किसी भी उपकरण से उच्चारित कर, साधना द्वारा उच्चतर उपलब्धि पाना चाहते हैं ! जो कभी भी विचार तरंग के कम्पन्न के तरंग गति में नहीं आ सकता है !

आज इन्टरनेट के जरिये, जो हमारे वाणी या चित्र का कम्पन्न तरंग है, उसपर भी मौसम का असर पड़ जाता है और उसकी गति ध ीमी हो जाती है; तो इन ध्वनी विस्तारक से हमारा विचार तरंग कैसे सूक्ष्म जगत में जा सकता है ! आज का ध्वनी विस्तारक, मोबाइल, दूरदर्शन भी तो, हमारे भावना, आस्था और प्रेम के सेतु को बिलकुल सूक्ष्म जगत से तोड़कर रख दिया है ।

जब हम मंत्र के द्वारा भावजगत के सूक्ष्म गति में अपने प्राण शक्ति का संकलन या सम्प्रेषन अपने प्राण ऊर्जा द्वारा करना चाहते हैं, तो हमारे जिन्ह्वा से निकलने वाली वाणी का भी कई कम्पनगति हो जाता है ।

इसको हम इस तरह जाने की वायु की तीन अवस्था है। स्थूल वायु जो मानव के शारीरिक विकास क्रम में ऑक्सीजन के रूप में है । सूक्ष्म वायु-हमारे वायूमंडल तक की कम्पन्न ग्राह्कता गति में नाइट्रोजन के रूप में सूक्ष्म गैसिय स्वरूप में है ।

सूक्ष्मतम वायु-जो ईथर के रूप में ब्रह्मव्यापी है एवं सूक्ष्म तरंग गति में सृष्टि के मूल प्राण ऊर्जा ग्राह्कता की तरंग गति में, समय और दूरी (टाइम एण्ड स्पेश) के बिलकूल नगन्य गति में है ।

इसी कारण हम जिस समय एवं क्षण के हजारवें हिस्से के समय में भी, जो भी रेडियो प्रसारण या चित्र प्रक्षेपित करते हैं, वह उसी क्षण के समय के अन्तराल में, हजारो मील दूर से भी देख-सुन पाते हैं ।

लेकिन स्थूल वायु-ऑक्सीजन एवं सूक्ष्मवायु-नाइट्रोजन की सीमा रेखा पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण एवं दो सौ मील के वायुविय भार तक में ही है । हमारे बैखरी बाणी का कम्पन्न गति, ग्यारह सौ फीट प्रति सेकेण्ड है । जबकी परा वाणी का कम्पन्न तरंग प्रकाश कम्पन्न गति के आत्मगति तक 1,86000 मील प्रति सेकेण्ड से लेकर,

कुण्डलिनी गति 3,45000 मील प्रति सेकेण्ड एवं अन्नत तक है ।

लेकिन हमारे कान की सुनने की कम्पन्न तरंग गति 28 से लेकर 32 कम्पन्न तरंग तक है । 28 से 26 तक कम्पन्न तरंग पर, प्रेतलोक की कम्पन्न गति निसृत एवं आकर्षित होती है ।

हमारे विचार तरंग जब मन के संतुलन से केन्द्रीत होकर, जिन्ह्वा द्वारा उच्चारित होते हैं, तो वह सूक्ष्म तरंग जो विचार तरंग के केन्द्रीत होने से "अल्टासानिक" ध्वनी तरंग के रूप में तरंगित होते हैं, प्रकृति के प्राण ऊर्जा का बल पाकर, शक्ति के रूप में संग्रहीत होने लगता है ।

चूँकि बल केवल अपने आप में कम्पन्न पैदा करने में सक्रिय नहीं है, जबतक शक्ति का आघात उस पर नहीं लगेगा ! तबतक उसका रूपान्तरित त्वरित विद्युत गति, (रिजलटेन्ट फोर्स), सूक्ष्म तरंग के विद्युतीय गति में ईथर के तरंग गति में प्रवाहित हो, अल्टॉसानिक ध्वनी तरंग का रूप नहीं पकड़ेगा!

यही ध्वनी तरंग प्रकाश में परिवर्तित हो "एक्स-रे" का रूप पकड़, हमारे शब्दों को अनन्तगामी बना देता है । इस स्थूल शरीर के जिन्ह्वा बिन्दु पर शब्द उच्चारण जब आघात करती है, तो वही ध्वनी मंत्र का रूप लेकर, प्रकृति के प्राण ऊर्जा से देवी-देवता के आशीर्वाद के अनुगृहित होकर, हमें शक्ति से भर देती है ।

ईथर में प्रकम्पित हमारा बैखरी वाणी का स्वर लहरी-मध्यमा, पश्यन्ति से परा वाणी होते हुए, प्रकाश तरंग में ब्रह्मव्यापी हो जाता है। ईथर में प्रकम्पित किसी भी प्राणी का स्वर कम्पन्न, कभी नष्ट नहीं हो सकता है ! वह अनन्त के किसी विशाल शब्द भंडार के सागर में संग्रहीत होता चला जाता है ।

लेकिन स्थूल वायु ऑक्सीजन एवं सूक्ष्मवायु नाइट्रोजन में प्रकम्पित स्वर तरंग, हमारे पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र तक में ही नष्ट हो जाता है । क्योंकि उसके आवर्तनांक का मेगा साइकल एवं मेगा हर्टस का तरंग गति बहुत सीमित क्षेत्र में अपनी कम्पन्न गति कायम कर पाती है । इसी के सिद्धान्त पर आज-दूरदर्शन, मोबाईल, इन्टरनेट, राडार बगैरह की कार्यप्रणाली सम्पादित होती है।

यही सिद्धान्त मंत्र विज्ञान के कम्पन्न तरंग में शब्द ध्वनी को प्रकाश तरंग ध्वनी में बदलकर, हमारे सूक्ष्म शरीर के षट्चक्र द्वारा

स्पर्श समाधि
गौतम तंत्र
चित्र संख्या- 5

कुण्डलिनी शक्ति
खेचरी साधना
बज्रायोगनी
(तिब्बकत्तन पुरातन)
तमस्, रेजस् सतज्
चित्र संख्या-

छिन्न मस्ता
ॐ
कुण्डलिनी गति से आत्मगति
भ० समाधि वैदिक काल
चित्र संख्या- 7

ब्रह्मरन्ध्र
केन्द्र
स्थितिप्रज्ञ
अर्द्धनारीश्वर
पुरुषत्व बिन्दु
स्त्रैण बिन्दु
कुण्डलिनी शक्ति स्त्रैण पुरुषत्व
शिव शक्ति स्वरूपा

नियंत्रित एवं नियोजित होती है । आज हम देखते हैं, कि एक छोटे से "चिप्स" में भी-दो जी.वी. से बत्तीस एवं सौ जी.वी. तक के साथ में, सर्वसाधारण मोबाइल एवं लैपटॉप धारक के हाथ में यंत्र होते हैं ।

जिस एक "चिप्स" में सालभर तक हम फिल्म, गाना एवं संवाद लगातार सुन-देख सकते हैं । "चिप्स" तो नाखून के बराबर भी नहीं होता है । तो फिर हम कैसे इतने शब्द भंडार एवं चित्र भंडार को इसमें संग्रहित कर पाते हैं ! यह तो विज्ञान के अविष्कार का उदाहरण है !

लेकिन जहाँ हमारा सूक्ष्म शरीर इतने अनन्त ब्रह्माण्ड के कम्पन्न तरंग तक दौड़ सकती है, उसमें कितनी क्षमता होगी, हमारे कम्पन्न तरंग को संग्रहित करने की ! एक-एक अणु के परमाणु में एक ब्रह्माण्ड की परिकल्पना ही नहीं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की पूर्णता की रूप-रेखा भी है ! हम एक परमाणु के शक्ति के भंडार का उपयोग भी नहीं कर पा रहे हैं !

लेकिन हमारा शब्द तरंग जब ध्वनी तरंग के रूप में अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग से, अल्फा एवं एक्स-रे प्रकाश तरंग का रूप पकड़ ईथरिक गति से न्यूट्रॉन की गति की ओर प्रकम्पित होती है ।

तो हमारे सूक्ष्म शरीर द्वारा नियोजित स्थूल शरीर के जिन्ह्वा से निकलने वाला कम्पन्न तरंग ही, अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग का रूप पकड़ लेता है एवं मेरी वाणी ही हमारे देवत्व प्राप्त कर लेने से ब्रह्मव्यापी हो जाता है ।

हम अपने कम्पन्न तरंग के आवृत से ज्यादा या कम का कम्पन्न तरंग नहीं पकड़ सकते हैं ! चूँकि हमारे कान का ड्रायफ्राम (परदा) अपने कम्पन्न ग्राह्कता से ज्यादा या कम का कम्पन्न नहीं पकड़ सकता है ।

हमारे कान का परदा तभी प्रकम्पित होगा, जब एक ही तरह के आवर्तित मेगा साईकल; पर ध्वनी तरंग हमारे कान के पर्दे से टकरायगी !

रेडियो, मोबाईल एवं दूरदर्शन या विश्व का कोई भी कम्पन्न पैदा करने वाला उपकरण, तभी प्रकाम्पित होगा, जब उसके समानान्तर एवं उसके कम्पन्न तरंग का उसी से मेगासाईकल; एवं हर्टस साईकल का कम्पन्न उसके तरंग के गति में आयगा । पंक्षी हमारे कम्पन्न तरंग से ऊपर का कम्पन्न तरंग पकड़ता है ।

चूँकि उसके कान का परदा स्पर्श शक्ति एवं घ्राण शक्ति हमारे कम्पन्न, स्पर्श एवं घ्राणशक्ति से ज्यादा हो सकती है । जापान में एक पंक्षी होता है जो भूकम्प के कम्पन्न को चौबीस घंटा पहले ही पकड़ लेता है और एक दिन पहले ही गांव की आवादी को छोड़ देता है ।

वे पंक्षी हजारो की संख्या में गांव के पेड़-झारियों पर होते हैं । उसके गांव खाली करते ही, लोग भूकम्प की पूर्ब सूचना मान, गांव खाली कर देते हैं ।

आज विज्ञान इस कम्पन्न गति के तरंग में इस तरह विकसित एवं अविष्कृत हो रहा है, कि सारे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, कम्पन्न तरंग के नियंत्रण से अदभूत निष्कर्ष सामने दे रहे हैं । दो पहाड़ों के दर्रे के बीच से पंक्षी बगैर टकराये उड़ता रहता है ।

अब वैज्ञानिक इस तरह का सुपर सोनिक विमान तैयार कर रहे हैं, कि विमान भी स्वचालित यंत्र से दर्रे के बीच से, बिना टकराये तीव्रगति से उड़ता रहे । आज मोबाइल हमारे हाथ से निष्काषित प्राण तरंग के स्पर्श से संचालित किये जाते हैं । विज्ञान ने पदार्थ एवं प्राणी दोनो के कम्पन्न तरंग को जाना है ।

वैज्ञानिकों का शोध हमारे नीद्रा एवं स्वप्न पर भी चल रहा है । वे प्रयोग से ऐसा जान रहे हैं, कि नीद्रा में भी जो स्वप्न हम देखते हैं, वह अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग का परावर्तित स्वरूप है ।

हम अपने कर्मफल जो योनिगत चक्रवात से हमें प्राप्त है, उसका प्रतिबिम्ब रिजल्टेन्ट फोर्स- छाया, प्रतिछाया, जो हमारे न्यूरॉन सेल में संग्रहीत है, अल्ट्रासॉनिक प्रकाश गति में स्वप्न में तरंगायित होता रहना है ।

पूरी नीद्रा की स्थिति में एक दर्जन स्वप्न के लगभग हम देखते हैं । प्रत्येक स्वप्न के अन्तराल पर हमें गहरी नीद्रा आती रहती है एवं हमारा भावनात्मक एवं क्रियात्मक मानसिक भार स्वप्न द्वारा निष्कासित होता रहता है । हम भोजन के बगैर माह-दो माह जिन्दा रह सकते हैं ।

लेकिन अगर हमारे मानसपटल से स्वप्न को हटा दिया जाय, तो पन्द्रह दिन भी जीना मुश्किल हो जायगा । स्वप्न से हमारे क्रिया-कलापों के द्वारा बदलते दृश्यपटल की तरह ही, हमारी पुतलियाँ घुमती रहती है

मल-मूत्र के निष्काषन की तरह हमारा स्वप्न भी भावनात्मक मल के रूप में, अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग एवं प्रकाश तरंग में, हमारे मानस पटल से निकल, हमें भावनात्मक भारमुक्त करता रहता है ।

प्रकृति तो अपना नियम कभी बदल नहीं सकती ! अगर कोई भी पृथ्वी के वातावरण में जन्म लेगा, तो मृत्यु निश्चित है ।! लेकिन हम हनुमान को अमर मानते हैं ।

तो क्या ? हनुमान के लिए प्रकृति ने अपना नियम बदल लिया

नहीं ! अगर गहरी विवेचना में जाय तो 'हँ' शब्द का उच्चारण षट्चक्र के पाँचवे चक्र विशुद्धाय के बीज मंत्र के रूप में है एवं पांचवे ब्रह्म शरीर के रूप में मनुष्य योनि में क्रियाशील है । जहाँ मनिषियों ने वेदो के व्याख्या का कम्पन्न तरंग माना है ।

हनुमान को नैसर्गिक भक्त स्वरूप में माना गया है। जब इस पृथ्वी पर कोई शरीर जिन्दा नहीं रह सकता, तो हनुमान कैसे रह सकते हैं ! वे तो हमारे चारो वाणी तरंग में हमेशा प्राकृतिक रूप से तरंगायित हो सकते हैं !

यह चित्रण तो हमारे आत्म शरीर के आत्म गति में आये बलशाली हनुमान के 'हँ' उच्चारण के अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग एवं एक्स-रे एवं अल्फा रे प्रकाश तरंग में है, जो ब्रह्मव्यापी है !

जब हम साधना से उनके कम्पन्न तरंग में, अपने कम्पन्न तरंग को मिला पाते हैं! तो उन दैवी-शक्तियों से भर हम हनुमान के भावनात्मक भक्ति सागर में डूब पाते हैं!

सूक्ष्म जगत के अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग इसी तरह सूक्ष्म तरंग गति पर, शब्द के अथाह सागर भंडार से ध्वनी द्वारा अमरत्व प्राप्त महावीर के प्राण ऊर्जा का अनुग्रह, अपने पर उनकी शक्ति ऊर्जा बरसते महसूस करते हैं ।

इसी तरह हमारी आंख भी अपने ज्योति के निश्चित न्यूमेन्स पावर से ज्यादा या कम का, ज्योति ग्रहण नहीं कर पाता है । अगर आंख के क्षमता से ज्यादा ज्योति हम देखना चाहें, तो कौरनियाँ के तन्तु जल जायगें! कम में देखें, तो स्नायु पर काफी तनाव पड़ेगा !

अपने आँख के ल्यूमेन्स पावर से कम या ज्यादा ज्योति की ग्राह्कता हमारे आँख की नहीं होने से, हम प्रकाश तरंग को भी अंधकार के रूप में महसूस करते हैं । हमारे चारो ओर असंख्य प्रकाश तरंग हैं, लेकिन हमारी ग्राह्कता की क्षमता नहीं होने से हमारे लिए अर्थहीन है ।

हम जहाँ अंधेरा महसूस करते हैं, वहाँ प्रकाश कम्पन्न की अनन्त श्रृंखला हो सकती है । एक्स-रे, गामा रे, बीटा रे, थीटा रे, अल्फा रे- यह वैज्ञानिकों द्वारा अविष्कृत यंत्र द्वारा ही पकड़े जा सकते हैं !

हमारे मनिषियों ने तो सूर्य से निकलने वाली एक हजार रशिमियों का बर्णन मनुष्य, दानब, देव, के ग्राह्कता एवं संचालन प्राण ऊर्जा गति में ब्याख्या की है ।

हमारा ध्वनी तरंग नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन में प्रवाहित ऊर्जा तरंग में तो नष्ट हो जाता है! लेकिन वही जब भावदशा का संबल पकड़, विचारों के सम्प्रेषण में अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग को पकड़ता है ।

तो वही अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग ऋषियों द्वारा अन्वेषित हजारों ज्योति तरंग में बदल- देव, दानव, मनुष्य के प्राणगति में प्राण ऊर्जा संचालन का कारण बनता है ।

हमारी वाणी से निकले हर शब्द, मंत्र हो जाते हैं एंव प्राणवान साधक के नियंत्रण गति में चले आते हैं । प्राण तो देवी-देवता मनुष्य सब में है ।

इसलिए तमस्भाव में साम्भरी भाव की दैवी विद्या द्वारा सबके प्राण हमारे अल्ट्रासॉनिक ध्वनी तरंग से स्पंदित हो सकते हैं ! जो प्रकाश तरंग गति में ऊर्जावान होकर, ईथरिक गति एवं न्यूट्रॉण गति में, ईंजिंत प्राण शक्ति के प्रारूप को कम्मपित एवं आकर्षित कर सकते हैं ।

जिस अंधेरा को हम ज्योति विहीन मानते हैं, उसपर वैज्ञानिकों ने अन्वेषण कर, कई नई विज्ञान की श्रृंखला कायम किया है । घनघोर अंधेरे में भी चश्मा के रूप में ऐसा यंत्र अबिष्कृत किया है, जो अंधेरा को चीर कर सारा दृश्य स्पष्ट रूप से दिखला सकती है ।

चूँकि आकाश में तारे तो हमेशा उगे ही रहते हैं ! लेकिन हम अपने ल्यूमेंश पावर (दृष्टि क्षमता) कम होने से नहीं देख पाते हैं। लेकिन यंत्र उन तारों के प्रकाश के, एक प्रकाश किरण को भी पकड़कर, सारा दृश्य आँख पर लगे चश्मे

द्वारा, हमारे मास्तिष्क के दृष्टपटल पर डाल देता है । हम दिन के प्रकाश की तरह बाहर का दृश्य देखने लगते हैं ।

इन्हीं अविष्कृत विज्ञान का सिद्धान्त प्रतिपादित कर, वैज्ञानिकों ने ऐसे विमान का अविष्कार किया है, जो स्वचालित गति से आसमान से गुजर कर, ड्रोन हमले को सफल कर देता है ।

लेकिन उन विमानों की ध्वनी तरंग को न रडार पकड़ पाती है और न हमारी आँखे ही पकड़ पाती है। चूँकि उनका ध्वनी तरंग एवं प्रकाश तरंग हमारे देखने-सुनने की क्षमता से अधिक हो जाती है ।

इसी तरह हमारी मंत्र शक्ति जो भारमुक्त भावनाओं के ध्वनी तरंग से परावर्तित प्रकाश तरंग में होती हैं। जो इच्छित कम्पन्न गति के प्राणक्षेत्र के- भूत, प्रेत, असुर, देव, दानव सबको आकर्षित एवं विकर्षित कर लेती है ।

लेकिन हमारे प्राण ऊर्जा की ग्राहकता, हमारे श्वसन क्रिया द्वारा भारमुक्त होकर, नाभिकुण्ड पर ही पहुँचने पर, सारे प्राणीक प्रयोग सम्भव हो पाते हैं! हमारी सिद्धियों का सम्बल मेरा काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा का प्रतिकात्मक बल (रिजलटेन्ट फोर्स) मेरा भावनात्मक ध्वनी तरंग ही होता है !

इसलिए बन्धुओ !

हमें कुटुम्ब, बाँधव, परिजनों में रहकर भी, अपने भावनां को भारमुक्त करना है एवं सृष्टि के नियमावली को प्रसाद पूर्वक अपने प्राण ऊर्जा में समाहित कर देवत्व में ग्रहण करना है !

प्रार्थना

सूर्य और चन्द्र की तरह मन में भी अच्छे और बुरे विचार हमारे विवेक और अविवेक में राम-रावण की युद्ध की तरह चलते रहते है।

नीम का पेड़ बोयें या आम का, पृथ्वी और सूरज से वही लेता है जो उसकी जरूरत है। वैसे ही हम जिस भावदशा में अपने मानसिकता के ले जाते हैं, वही भावदशा की श्रृंखला प्रकृति हमें दे देती है ! और हमारी प्रार्थना उसी तरह की हो जाती है।

भग समाधि

कुण्डलिनी गति से आत्मगति

(चित्र संख्या - 7)

शिव-शक्ति कुण्डलिनी साधना - चित्रित चित्रों में प्रथमतः छिन्नमस्ता यंत्र है। पुस्तक में वर्णन किया गया है कि कैसे प्राण ऊर्जा, यंत्रों के रेखांकित चित्र में प्राणवायु के संधात से गमन कर संग्रहित एवं केन्द्रीत होती है। यंत्र सूक्ष्म शरीर के प्राणिक गति में अपनी शक्ति संचारित करती है।

यह चित्र-तमस् रजस एवं सतज् स्वरूप में साधना का चित्र है। इसके सतज् स्वरूप की व्याख्या जैन साधना स्वरूप में भी देखने को मिलती हैं। महावीर के मूर्तियों में चौसठ योगनी का भी चित्रण है। चित्रण का स्वरूप द्वापर के कृष्ण के छिन्नमस्ता साधना स्वरूप में भी है। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर का जैन धर्म, छब्बीस सौ साल पुराना है।

लेकिन महाभारत काल के कृष्ण काल का समय पांच हजार वर्ष पहले का है। जिस समय ज्ञान-विज्ञान, यंत्र-तंत्र परम उत्कर्ष पर था। भट्ट योद्धा एवं ज्ञानी, ऋषि-मुनि भी उत्कर्ष बिन्दु पर थे। घटोत्कच की मायावी लड़ाई एवं घटोत्कच पुत्र बरबरीक का तीन बाण में ही संहार की विभिषिका पैदा कर देने की अभिव्यक्ति, आज के (महारेणु बम) न्यूक्लियर बम के द्योतक में है।

कृष्ण का अद्वैत से नीचे उतर दैत में आकर, गीता जैसे प्रवचन कर जाना भी, बगैर साधना स्वरूप के सम्भव नहीं है। क्योंकि प्रकृति का सिद्धान्त है, कि जैसी हमारी गति होती है, प्राण संचरण का वही स्वरूप होता है।

महाभारत काल में भी सभी भट्ट योद्धा, राज प्रसाद एवं राजसुख में रहकर अद्वितीय युद्ध कौशल का परिचय दे रहे थे। स्वयंवर एवं हरण विधि से बहु पत्नीयों की प्रथा देखने को मिलती है।

इन प्रथाओं के मूल में इस छिन्नमस्ता साधना का रजस् एवं सतज् स्वरूप देखने को मिलता है एवं इन्हीं साधना स्वरूप को चित्र में बारीकी से दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

लेकिन आर्य और अनार्य की विधियां देव और दानव के प्रवृतियों के रूप में दिखलाई गयी है। कृष्ण वर्ण यानी चन्द्रस्वर-ईगला एवं रक्तवर्ण, सूर्यस्वर- पिंगला एवं छिन्नमस्ता का बलिदानी स्वरूप सुषुम्ना के द्योतक में है।

शिव-शक्ति के रूप में, मैथुनी जगत के द्योतक में है एवं साधनारत हमारी आपकी प्रतिकात्मक शिव और शक्ति के साधना विधि में है।

त्रेतायुग में राम-रावण काल में अनार्य, राक्षसी प्रवृति के मायावी स्वरूप में, रावण एवं अन्य भट्ट योद्धाओं के साधना स्वरूप में पंचमकार पद्धति को जाना जाता है। जिस रावण काल में सूरा और सुन्दरी का स्वछंद उपयोग था एवं शिवलिंग की पूजा पद्धति अनेक रूपों में थी।

राक्षस गुरु शुक्राचार्य का महामृत्युंजय तंत्र-मंत्र साधना भी बहुत प्रभावकारी एवं अमृतमय माना गया। जिसमें उथ्थलित लिंग की पूजा भी प्रशस्त मानी गयी। देवी का मुदिता अवस्था के नृत्य शैली में बलिदानी स्वरूप एवं दोनों बगल में रक्तपान करते कृष्णवर्ण एवं रक्तवर्ण की देवियों का स्वरूप हमारी आपकी मेरूदण्ड से चलने वाली ईगला-पिंगला एवं सुषुम्ना के प्रतीक में है।

मनिषियों ने सिद्धि की चरम सीमा का निर्देश सतज् भाव में माना है। योगशास्त्र में तीन ग्रंथियों के भेदन के बाद पूर्ण सिद्धि की स्थिति बतायी गयी है। इन्हें ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रूद्रग्रन्थि कहा गया है। नाभि चक्र में ब्रह्म ग्रन्थि, मणिपुर में विष्णु ग्रन्थि तथा आज्ञा चक्र में रूद्र ग्रन्थि का स्थान है।

इन ग्रन्थियों के भेदन से ही मनिषि द्वैतभाव से निकलकर, अद्वैतानन्द की वैश्चिक भावदशा प्राप्त कर पाते हैं। योगियों का ऐसा अनुभव है कि मणिपुर (नाभिचक्र) चक्र के नीचे की नाड़ियों में ही **काम और रति** का मूल निवास है। उसी पर छिन्ना महाशक्ति आरूढ़ हैं। इसी का उर्ध्व प्रवाह होने पर रूद्रग्रन्थि का भेदन हो पाता है। ये तीनों ग्रंथियाँ सूक्ष्म शरीर में अवस्थित है। स्थूल शरीर तो यंत्र मात्र है एवं सूक्ष्म शरीर से संचालित है।

देवी की दोनों सहचरियाँ तमोगुण एवं रजोगुण के प्रतीक में है। कमल विश्व प्रपंचवत है, एवं कामरति चिदानन्द की स्थूलवृत्ति है। बृहूदारण्यक की **अश्रवशिर** विद्या, शाक्तो की **हयग्रीव विद्या** तथा गाण्पत्यों के **छिन्नशीर्ष** गणपति का रहस्य भी, छिन्नमस्ता से ही सम्बन्धित है। हिरण्यकशिपु, वेरोचन आदी, छिन्नमस्ता के ही उपासक थे। बेरोचन अग्नि को कहा जाता है।

जिस अग्नि का स्थान मणिपुर चक्र (सूर्यचक्र) नाभि केन्द्र पर है। जहां वज्रा नाड़ी में इसका प्रवाह होने से इन्हें वेरोचनीया कहते हैं एवं (विजरा) बज्रा योगनी के रूप में साध्य है। जिसका चित्रण चित्र संख्या - 6 में भी किया गया है।

श्री भैरवतंत्र में कहा गया है, कि साधक इसकी अराधना से जीवभाव से मुक्त होकर शिवभाव के, शक्तिभाव को प्राप्त कर लेता है। छिन्नमस्ता को दश महाविद्या में जाना जाता है एवं दुर्गा सप्तशती में ग्यारहवें अध्याय में भी इसका वर्णन आता है।

ऐसा तांत्रिक विधान है, कि आधी रात अर्थात् चतुर्थ संध्याकाल में छिन्नमस्ता की उपासना से साधक को सरस्वती सिद्ध हो जाती है। शत्रु विजय, समूह स्तम्भन, राज्य प्राप्ति और दुर्लभ मोक्ष प्राप्ति के लिए छिन्नमस्ता की उपासना अमोध है।

छिन्न यज्ञाशीर्ष की प्रतीक ये देवी श्वेतकमल के पीठ पर खड़ी हैं। दिशाएं ही इनके वस्त्र हैं। उनके नाभि में योनि चक्र है। जिनकी देवियां कृष्णा (तम) और रक्त (रज) गुणों की देवियां इनकी सहचरि हैं एवं श्वेतवर्ण की सुषुम्ना स्वरूप स्वयं देवी छिन्नमसता हैं। ये शीश काटकर भी जीवित स्वरूप में अन्तरमुखी साधना के द्योतक में हैं।

चित्र 7 में शंकर को साम्भवी मुद्रा में, भग समाधि की साधना मुद्रा में दिखलाई गई है; जो शिव-शक्ति के साधना स्वरूप में है। बगैर छिन्नमस्ता साधना का सूक्ष्मतम स्वरूप जाने, साधना परम घातक भी है। अतः गुरू का निर्देशन एवं यौगिक क्रिया की साधनारत स्वरूप जानना भी परम आवश्यक है। इन्हीं स्वरूप में ऊँ के सतज स्वरूप की व्याख्या पुस्तक में की गयी है।

नीचे के चित्र में भग समाधि का रूप दर्शाया गया है। जिसकी चर्चा पुस्तक में कई जगह की गई है, कि कैसे पन्द्रह मिनट की समाधि में पशु भावदशा से, आधा घंटा की समाधि में वीर भावदशा एवं तीन घंटा की समाधि में दिव्य भावदशा का ओरामंडल बनता है ।

एक आणविक विस्फोट में आकर इलेक्ट्रोन, प्रोटोन की गति पाकर, नाभिक के न्यूक्युलिर में समाकर, दिव्य भावदशा का ओरामंडल बनता है।

नर-नारी का यह नसर्गिक मिलन हमें चिदानन्द की श्रेणी में ले आता है। संसार की सारी सिद्धियाँ और तृष्णा शान्त होकर, हम प्रेम के पुस्तक विमान पर चढ़ कर, गोलाक के यात्रा पर चल पड़ते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति में स्त्रैण एवं पुरूषत्व

चित्र संख्या-8

यह चित्रण चित्र संख्या-5, 13 एवं 36 की तरह ही व्याख्या का विषय वस्तू है ।

चित्र में कुण्डलिनी जागरण हेतु एक आसन के व्यवस्था में काम-क्रीड़ा का स्वरूप दर्शाया गया है । विशुिद्धतम काम-कामेश्वरी के स्वरूप में स्त्री-पुरूष दोनों के ब्रह्मरंध्र केन्द्र पर विकसीत कमल दल दिखलाया गया है । यह साधक साधिका के साभ्यरस में आ जाने की स्थिति का ब्रह्मदर्शन है एवं हमारे आपके साधना स्वरूप में है ।

साधिका में गर्भाशय रूपी मूलाधर बिन्दु, स्वध्ष्ठिान रूपी ग्रर्भाशय ग्रीवा पर काम की सर्पनी के फन की तरह विस्तार को आभामय प्रकाशवान दिखलाया गया है । चूँकि रजस्वला होने पर स्त्रियों में यह काम बिन्दु स्वरूपा केन्द्र ज्यादा सक्रिय हो जाता है । गर्भाशय का मूलबिन्दु मूलाधार, स्त्री का ऋणात्मक स्त्रैण बिन्दु है ।

प्रति एक चक्र के बाद सूक्ष्मतम सात शरीर की श्रृखंला में मूलाधर के स्त्रैण शरीर के बाद स्वाध्ष्ठिान पर पुरूष तरंग का घनात्मक प्रतिशत ज्यादा होता है । फिर मणिपूरक पर स्त्रैण शरीर का ही कम्पन्न तरंग होगा । इसी तरह श्रृखलावत् तरीके से अनाहत पर पुरूष शरीर का कम्पन्न तरंग, चित्र में ज्यादा शक्तिशाली एवं प्रकाशवान दिखलाया गया है ।

स्त्री में कामक्षेत्र में स्वाध्ष्ठिान एवं ज्ञानक्षेत्र में, अनाहत एवं चित् की स्थिति सबसे मजबूत होती है; जो आज्ञाचक्र के केन्द्रक क्षेत्र में है । लेकिन गर्भाशय, शक्ति का मूलकेन्द्र होने के बाद भी, प्रकृति संचालन हेतु प्रजनन प्रक्रिया का मुख्य कारण होता है ।

बच्चा विष्णु भगवान समुद्र स्वरूपा क्षीर सागर में, नाभि नाल से ही पुरनी पात द्वारा जुड़ा रह कर, माँ के नाभिकेन्द्र से प्राण ऊर्जा ग्रहण करता रहता है । इस कारण प्रजजन क्रिया के संतुलन में स्त्रियों का नाभिकेन्द्र कमजोर हो जाता है । जो संकल्प शक्ति का मूल केन्द्र है ।

इसलिए चित् की स्थिति प्रबल रहते हुए भी स्त्रियों का मन इस स्थूल जगत के धन, वैभव, संतान, पति के प्रति ज्यादा जागरूक रहता है; जो उनके स्थितिपज्ञ होने

में ज्यादा बाधा डालती है ।

लेकिन अनाहत पर स्त्रियों में, पुरूषत्व सूक्ष्म शरीर के संतुलन भाग का ज्यादा प्रतिशत होता है एवं अनाहंत स्त्रियों का ज्यादा मजबूत होता है । इसलिए समर्पित स्त्रियाँ देवीतुल्य हो कर प्रेम और आस्था के मार्ग पर अपने कुण्डलिनी गति के प्रवाह में ज्यादा सक्रिय रूप पकड़ पाती है ।

अनाहत पर स्त्री हो या पुरूष कुण्डलिनी के तीसरे कुण्डल के खुलने की गति में कर्मबंधन रहित होने पर, एकाकार बिन्दु के नाभिक केन्द्र पर अर्द्धनारीश्वर होने की सम्भावना होने लगती है । यह केन्द्र ही स्त्री में ज्यादा मजबूत है, जो प्रेम और आस्था में विभोर हो कर अपने प्रेमी को ईश्वर स्वरूपा मानने लगती है ।

प्रेम में दो का होना आवश्यक है !

इसलिए स्त्रीयाँ इस प्रेम में पागलपन की सीमातक पहुँचकर, प्रेमबंधन के जंजीर में जकड़कर, अपने को आनन्ददायक एवं स्थितिप्रज्ञ की श्रेणी में ले आती है । जो एक मजबूत कर्मबंधन है एवं ऊपर के योनि चक्रबात में उसे डाले रहती है ।

यही देवीयाँ विभिन्न लोको में अवस्थित हो कर प्रत्येक साधक के साधना का मूलकेन्द्र बिन्दु होती है । चूँकि प्रत्येक चक्र के शाब्दिक कम्पन्न तरंग पर देवी का ही स्वरूप है एवं अनुस्वार बिन्दु, शिव टंकार की तरह पुरूषत्व बिन्दु में समागम का संकेत है ।

इस मैथुनी सृष्टि के पूरक में इन देवियों का आवाहन टंकार भी मैथुनात्मक है । इन टंकार के पूरक बिन्दु में बैरवरी बाणी एवं स्थूल शरीर ही, ब्रह्मतत्व तक पहुँचने का मूल केन्द्र बिन्दु है ।

ठीक स्त्री के सूक्ष्म सात शरीर की उल्टी स्थिति में पुरूष में धन-विद्युत में मूलाधार पुरूषत्व, स्वाधिष्ठान पर ऋण विद्युत स्त्रीत्व, नाभिकेन्द्र पर धन विद्युत में पुरूषत्व एवं अनाहत पर ऋण विद्युत में पुरूष का स्त्रीत्व शरीर का मिलन है। अनाहत पर अदृश्य चौथे मनस शरीर के विकास से पुरूष में स्त्रीत्व का मूल प्राकृतिक स्वरूप- करूणा प्रेम, आस्था, विश्वास का ज्यादा उदय हो जाता है ।

साधक के व्यक्तित्व में चारित्रिक, सामाजिक, अध्यात्मिक सभी स्वरूपों में करूणा, मैत्री, मुदिता की नैसर्गिक अवस्था दृष्टिगोचर होने लगती है ।

ऊपर के विशुद्धाय एवं आज्ञाचक्र पर स्त्री-पुरूष में धन विद्युत एवं ऋण विद्युत आत्म शरीर एवं ब्रह्म शरीर का विकास हो जाता है ।

लेकिन सारे कर्मबंधन से मुक्त हो जाने के कारण इलेक्ट्रॉन-प्रोट्रॉन के नाभिक बिन्दु पर समाकर, प्रकृति के शक्ति ऊर्जा का विपुल भंडार लिए आत्मगति में उसकी यात्रा सुलभ और ब्रह्मव्यापी हो जाती है एवं वही आत्मावान नर-नारी, शिव-शक्ति की स्थितिपज्ञ स्थिति में आ कर प्रज्ञावान ईश्वरीय-देवी देवता का स्वरूप पकड़ लेते हैं।

इस काम-कामेश्वरी के साधना पद्धति में ध्यान की बहुत अह्म भुमिका है। काम का उद्याम तरंग तो, पूरे विश्व का सृष्टि और प्रलय थामे हुए है।

लेकिन ध्यान बिन्दु का सधना हजारो कामनाओं, लाखो कल्पनाओं का एकाग्रता बिन्दु; बिन्दु में ही समा जाना है। हमारी प्राण ऊर्जा तो, हमारी कामनाओं, कल्पनाओं एंव आकांक्षाओं में बिखरी पड़ी है; सूर्य के बिखरे किरण के लेन्सीकृत होते ही, केन्द्रीत बिन्दु पर आग पैदा कर देती है।

एवं आणविक-परमाणविक भ्रमण चक्र की परिस्थिति में भी, उसके कम्पन्न तरंग में आकर बिध्वन्सात्मक एवं सृजनात्मक परिस्थितियाँ पैदा कर देती है।

उसी तरह सहजता के भाव में, ध्यान बिन्दु का काम बिन्दु में, समागम की स्थिति हमारी चेतना को इस स्थूल जगत से, स्थूल शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत के, सूक्ष्म शरीर में प्रवेश के मार्ग पर मूलाधार द्वारा कुण्डलिनी गति के न्यूत्राण गति में, हमारी प्राण ऊर्जा को डाल देती है।

हमारे मस्तिष्क का तीन भाग है। जिसमें दो मतिस्क के सक्रियता का चित्रण तो पुस्तक के कई भागों में है। लेकिन तीसरा मस्तिष्क का भाग जो मेरूडण्ड के ऊपरीमूल पर मस्तिष्किय पीछले भाग के ऊपर है ।

एवं दोनों मस्तिष्क के पीछे है; उसकी सक्रियता तो स्थूल जगत के सारे क्रिया-कलापों से अलग-थलग, बिलकूल अछुन्न पड़ी रह जाती है। जिसमें सृष्टि स्वरूपा लघु मानव की, सारी अनन्त क्षमताएँ एवं प्राण ऊर्जा का अपार भंडार भरा पड़ा है। वह बिलकूल अछुता ही रह जाता है !

लेकिन काम बिन्दु का ऋणात्मक विद्युतिय पोल एवं ध्यान बिन्दु का धनात्मक विद्युत पोल, कुण्डलिनी का विद्युतिय सर्किट (परिधि) पूरा कर, हमें इसी तीसरे मस्तिष्क के अछुन्न भंडार में प्रवेश करा देती है। हम जिस परिस्थिति में रहते हैं, हमारी मानसिकता वैसी ही बनी रहती है।

अगर धन चाहते हैं, तो उसका उपार्जन तरंग मारता रहता है! अगर काम की स्थिति में हैं, तो हमारी सोच कामात्मक बनी रहती है! उसी तरह हम धार्मिक प्रवृति के होते हैं, तो आस्था विश्वास में हमारी मानसिकता बनी रहती है।

लेकिन जब हम मस्तिष्क के तीसरे भाग में कुण्डलिनी जागरण के जागृत मानव के रूप में प्रवेश पाते है, तो हमारी असार मानसिकता समाप्त होने लगती है एवं हम अह्रोभाव की मनोदशा में ध्यानस्थ होने की साम्भवी मुद्रा में केन्द्रीभूत होने लगते हैं।

तांत्रिकों-मांत्रिको ने इस साधना का स्वरूप वासनात्मक कर, हमें हमेशा अधोपतन के पथ पर डाला है। श्रुति के द्वारा स्मृति में रखने के कारण इस विज्ञान का मूलरूप समाज के सामने नहीं रह गया है। इस विज्ञान पर आचार्य रजनीश ने कुछ प्रकाश डालने का भरसक प्रयत्न किया है। जिस तरह ज्ञान के अच्छून्न भंडार से जुड़े रहकर रजनीश ने हजारो पुस्तक एवं प्रवचन माला तैयार कर दी; वह तीसरे लघु मस्तिष्क में प्रवेश किये वगैर सम्भव नहीं है।

जितनी जानकारियाँ आचार्य रजनीश ने दी है ; उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने कुण्डलिनी जागरण का जागृत मानव का स्वरूप पाने के लिए, इस कौल मार्ग का स्वरूप अपनाया होगा!

कम्पन्न तरंग, धन एवं ऋण विद्युत तरंग, गुरूत्वाकर्षण, आवर्तनांक, ताप, अन्धबिन्दु (ब्लैक होल), घनत्व सबों में प्राण ऊर्जा का गमन ही इस सृष्टि को गतिमान किये हुए है।

आत्मा और शरीर तो जगत और परामात्मा की तरह है। अगर शरीर और आत्मा मेरा एक दूसरे का सहयोग कर एकाकार हो जाय; तो ही इन्द्रीय और बुद्धि में सामंजस हो सकती है।

बुद्धि अगर पुरूष तत्व है, तो प्रकृति स्त्री तत्व है, एवं बुद्धि की लीनता अगर ध्यानस्थ होने में है! तो प्रकृति का आलिंगन हमें आत्मावान कर साम्यावस्था में ला देती है।

यद्यपि स्थूल जगत की यांत्रिकी व्यवस्था के अनुरूप ही हमारा योनिगत चक्रवात है।

लेकिन इस व्यवस्था को ध्यान एवं काम ऊर्जा के संतुलन द्वारा तोड़ कर, हम एकाकार एवं साम्यरस की स्थिति में आकर सहज हो सकते हैं। हमारा भौतिकवादी यात्रिकी शरीर भी सूक्ष्म शरीर के तीन केन्द्रों द्वारा ज्यादा संतुलित रहती है।

1. नाभिकेन्द्र (ताण्डेन बिन्दु से तीन अंगुल ऊपर)
2. हृदय केन्द्र (अनाहत पर)
3. बुद्धि केन्द्र (आज्ञा चक्र पर मन की स्थिति)

नाभिकेन्द्र सबसे नीचे है, लेकिन इसकी महत्ता इन तीनों केन्द्रो में सबसे अधिक है। नाभिकेन्द्र के नमनियता बिन्दु पर पहुँचे श्वाँस की गति पर, प्रत्येक नर-नारी में निर्मलता का भाव ज्यादा आने लगता है एवं भावना में शिशुवत् स्वच्छता की संवेदना ज्यादा तरंगायित होने लगती है।

जब हम नीद्रा की अवस्था में होते हैं, तो गहरी नीद्रा में हमारा मानसिक तनाव, स्वप्न के निष्कासन से तनाव रहित होने लगता है एवं श्वाँस ताण्डेन बिन्दु से चलने लगता है।

इसलिए पुस्तक में इस काम कामेश्वरी की जो योग साधना भगसमाधि द्वारा बर्णित की गयी है; उसका प्रायोगिक रूप ब्रह्ममुहुर्त में ही ज्यादा सफलीभूत होने की सम्भावना है।

संभोग के समय हमारी श्वाँसो की गति तेज धौकनी की तरह चलने लगती है और हम अपनी सारी सहजता खो देते हैं।

इसलिए ध्यानी पुरूष ही इस साधना में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। चूँकि ध्यान की स्थिति में श्वाँस, स्वयं प्राणायाम में चलने का अभ्यासगत प्रणाली, हमारा यांत्रिक शरीर पकड़ लेता है।

ध्यान में श्वाँस की प्राणायाम के मंद गति में आने पर, श्वाँस का स्पर्श ताण्डेन बिन्दु पर तो होता है! लेकिन कोई गतिमान ठोकर नहीं लगती है। ऐसी स्थिति में स्खलन की सम्भावना भी बिलकूल नहीं रह जाती है। अगर नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर श्वाँस के स्पर्श में, काम वासना को स्वीकार कर लिया जाय, तो बचपन की संवेदना निर्मित हो जाती है ।

द्वैत के मूलाधार से कुण्डलिनी अपने गति में अद्वैत की ओर बढ़ जाती है।

ब्रह्मरंध्र के शेषनाग रूपा सर्प से मिलन की गति में, बैखरी वाणी के कम्पन्न गति से निकल, परा वाणी के कम्पन्न गति में प्रवेश कर जाती है। नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु के नमनियता पर पहुंचे श्वसन स्पर्श पर, अपने स्पर्श ईन्द्रीय को समग्रता से स्वीकार कर लेने पर द्वन्द मिट जाता है एवं बुद्धि, वासना के पवित्रता को भी स्वीकार कर लेती हैं; तो अद्वैत के समग्रता में ब्रह्म बन्दु तक पहुँचने में भी हमारी आत्मगति को कोई बाधा नहीं पहुंचती है!

घनंजय उपप्राण का वास तो मस्तिष्किय भाग में ही है ! लेकिन यह त्वचा द्वारा पूरे शरीर पर नियंत्रण किये रहता है एवं उपप्राण रहते हुए भी प्राणों में सबसे उच्च माना गया है। मृत्यु के बाद भी सारे प्राणों के निष्कासन उपरान्त भी तीन दिन तक यह धंनजय प्राण, हमारी जीवन की डोर को प्रकृति के सूक्ष्म जगत से थामे रहता है एवं यही प्राण परकाया प्रवेश में सिद्ध पुरूषों का माध्यम होता है।

ध्यानस्थ अवस्था में प्राणायाम के सधने पर, हमारी यह धनंजय प्राण काफी संवेदनशील हो जाता है एवं हमारे त्वचा के किसी भी प्रभाग से प्राणऊर्जा ग्रहण कर, स्त्री-पुरूष के स्पर्श समागम की साधनारत योगिक विधि में ऋण विद्युत एवं धनविद्युत का सर्किट (परिधि) पूराकर, हमें प्रकृति के अवचनिय उपलब्ध्यिाँ एवं सुगन्ध से भर देता है। षट्चक्र का ज्योति स्फुलिंग मेरूदण्ड से पौन ईंच से डेढ़ ईंच बाहर तक बनी रहती है।

इसी प्रयोग का बर्णन चित्र संख्या 5 एवं 24 में कर, काम-कामेश्वरी के स्पर्श योगिक मुद्रा द्वारा कुण्डलिनी जागरण का स्वरूप दर्शाया गया है।

ह्रदय को साधना के दूसरे स्तर में देखा जा सकता है। लेकिन यहाँ पहुँचे भक्त लोगों का श्वाँस स्वयं ताण्डेन से चलने लगता है। श्वाँस अगर मन्द गति में नाक से चले; तो क्रोध, ईर्शा, द्वेश शान्त होने लगता है।

धनंजय का स्पर्श चैतन्य रोमकुपों एवं तव्चा से रहता है। प्रेम के आनन्दातिरेक में चुम्बन भी स्पर्श ईन्द्रीय का संवेदनशील कामात्तेजक प्रक्रिया है। चन्द्रमा के चन्द्र घटन-बिघटन से हमारे स्पर्श ईन्द्रीय पर, भावनात्मक प्रभाव बहुत पड़ता है। चन्द्रमा का नक्षत्रिय भम्रण हमारे शरीर के विभिन्न अंगों पर अपना स्पर्श भ्रमण भी विभिन्न संवेदना में डालता रहता है।

हमारी तव्वा रोमकुपों द्वारा भी पन्द्रह प्रतिशत श्वाँस लेती रहती है एवं प्रकृति से प्राण ऊर्जा की ग्राहकता भी हमारे त्वचा एवं रोमकुपो द्वारा अधिक है। रोमकुपो के संवेदनशील होने से शरीर का तीन ओरामंडल का परत, प्रकृति से प्राण ऊर्जा प्राप्त करता रहता है।

यह शरीर तो प्राणपखेरू उड़ने के बाद लाशवत् है! फिर तो उसमें संवेदना संचार की कोई व्यवस्था दृष्टिगोचर नहीं होती है!

लेकिन ध्यान में हमारी समग्र ईन्द्रीय केन्द्रीत होने लगती है एवं अन्तर जगत में प्रवेश करते ही, बाहर की चैतन्यावस्था हम खो देते हैं। इन्ही प्राकृतिक सिद्धान्तो के समन्वय बिन्दु पर यह स्पर्श बिन्दु के कामआसन प्रक्रिया में कुण्डलिनी जागरण कर, उर्ध्वगति पाने में साधना प्रारूप को दर्शाया गया है।

चूँकि कोई भी भावना तो मन से उठती है और कामनी के अंगों के स्पर्श से भी काम वासना के भावातिरेक में कुण्डल मारे सर्पनी अपना सर उठाकर जाग्रतावस्था में आ जाती है। उन्ही जाग्रतावस्था को चेतना द्वारा महसूस कर, हम ध्यानस्थ हो कर, अन्तर चेतना में प्रवेश करना चाहते हैं, तो सारा कामवेग ध्यानस्थ बिन्दु में समाने लगता है एवं आणविक विस्फोट की तरह काम ऊर्जा और ध्यान ऊर्जा का समन्वय बिन्दु, हमारी उर्ध्वगति की यात्रा का कारण बनता है।

ध्यान में तो हमारी चेतना ही समग्रता के बिन्दु पर सामने लगती है; तो कोई मंत्र भी कैसे उपयोगी हो सकता है! इस काम-कामेश्वरी की साधना में तो समग्रता का ही ज्यादा महत्व है। कामनी भी अगर पूर्ण समग्रता से समर्पण नहीं करें! तो साधना विफल हो जा सकती है। इन्हीं समग्रता की भावना को उत्तेजना का स्परूप देने हेतु, मद्य का सेवन किया जाता है एवं कामात्तेजक औषधिय हवन की प्रक्रिया चलायी जाती है।

साधना के स्तर में, ह्दय की भी अह्म भूमिका है। चूँकि भावना का केन्द्र तो ह्दय ही है और ह्दय से ही प्रेम और आनन्दातिरेक के स्पंदन को समझा जा सकता है। ह्दय केन्द्र पर पहुँचे नारी की प्राण ऊर्जा की ग्राहकता बढ़ जाती है एवं उसका ओरामंडल का प्रकाश वलय एक बिशुद्धतम रूप लेने लगता है। ह्दय केन्द्र पर पहुँचे भक्त लोगों का श्वाँस प्रेम में पहुँचे स्त्री की तरह ही ताण्डेन बिन्दु से चलने की सम्भावना बढ़ जाती है ।

श्वाँस नाभि से चलने से क्रोध, ईर्शा, द्वेश अपना प्राण ऊर्जा का रूपान्तरण कर-प्रेम, आस्था, विश्वास में अपना प्रवाह बना लेती है।

चूँकि प्रेम और भक्ति में, वासनात्मक भार चाहे काम, क्रोध, लोभ, मोह का ही क्यों न हो ! ध्यान बिन्दु की तरह समन्वय बिन्दु पर समाकर, अपना भारीय स्वरूप खो कर-कुरूणा, मैत्री, मुदिता का स्वरूप पकड़ने लगता है एवं जो प्राण ऊर्जा हम वासना में खर्च करते आये हैं। वह हमारे नैसर्गिक प्रेम, आस्था, विश्वास की कम्पन्न तरंग पर अपना विस्तार बना लेती है।

तीसरा केन्द्र हमारा बुद्धि का केन्द्र है और यह मन के ज्यादा पास है। हम स्थूल जगत को अपनी चैतन्यावस्था मानते हैं। इसलिए यह बुद्धि हमें अपने अन्तरमन के चेतना से तोड़े रहती है। हमारे मन में विवेक और अविवेक का द्वन्द्व तो चलता ही रहता है; जो राम-रावण के युद्ध के स्वरूप में, हमें पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क के एहसास में डाले रहता है। द्वन्द्व तो मन का ही विषय है!

लेकिन द्वन्द्वात्मक भावातिरेक को ध्यान द्वारा ही समंवय बिन्दु पर लाकर अन्तरमन में प्रवेश किया जा सकता है। हमारा प्रेम, हमारा विश्वास, हमारी आस्था रूपी विवेक ही, हमारी रावण रूपी-द्वेश, ईर्श्या, धृणा, अहंकार के अविवेक से बचाकर हमें तृप्त कर सकती है।

इस तृप्तावस्था के लिए एक ध्यान ही समग्रता का बिन्दु है। जहाँ हमारी-कल्पनाओं, हमारी आँकानक्षाओं हमारी वासनाओं में बिखरी हमारी प्राण ऊर्जा एकाग्रता बिन्दु पर समाहित होकर, प्रकृति के चैतन्यावस्था में आकर, हमारे अन्तरमन के द्वार को खोल, हमें अनन्त का सम्राट बना सकती है।

इसलिए बन्धुओं !

अपनी अपरमित चेतना के अच्छुन्न भंडार को समझो !

अपने चेतना में प्रकम्पित प्राण ऊर्जा के ग्राहकता बिन्दु हेतु, इस काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा की ईश्वरीय प्राकृतिक गति के समन्वय संस्कार में आकर !

बना डालो !

अपने आप को प्रकृति का देवतुल्य नर-नारी!

अहंकार

अहंकार शब्द को अभिमान के रूप में जाना जाता है ।

लेकिन क्या ?

हम जानते हैं कि अहंकार ही इस मनुष्य जीवन की श्रृखंला की दिव्यज्योति है । अहंकार ही काम-क्रोध, लोभ-मोह के चक्रवातिय परिधि का केन्द्र बिन्दु है एवं बिना इनके मनुष्य जीवन की आधारशिला कहाँ ? मेरा अहंकार ही हमें **मैं** होने का बोध दिलाता रहता है ।

प्राण शक्ति से प्राण ऊर्जा के बटबारे में इस सृष्टि को चलाने के लिए अधोगति में प्राण ऊर्जा का ज्यादा से ज्यादा संकलन मूलाधार, स्वाधिष्ठान और नाभिकुण्ड के चक्रवात पर यह ऊर्जा जमा होकर- काम, क्रोध लोभ के अहंकार को केन्द्रीत कर, मनुष्य जीवन की शैली को चला रहा है ।

जब हम ध्यान में होते है तो, **"मैं"** होने का बोध तो बचा ही रहता है, और यह मेरा अहंकार है ! यही काम, क्रोध, लोभ, मोह जब करुणा, मैत्री, मुदिता के ध्यानस्वरूपा केन्द्र पर एकाकार होती है, तो मेरा प्रेममय आस्था, विश्वास, प्रार्थना का रूप ले लेती है और हमारे केन्द्रीभूत ऊर्जा का संकलन हमारे सारे परिधियों को तोड़ती हुई एकाकार कर चिदानन्द का स्वरूप हमें दे देती है ।

तो क्या !

अहंकार को ही अपने केन्द्रीभूत होने का कारण नहीं माने ?

लोहा जितना साफ और शुद्ध होता है, उतना चुम्बकीय क्षेत्र उसका मजबूत होता है । ऊर्जा का प्रवाह उतना शक्तिशाली होता है ।

लेकिन प्राकृतिक सिद्धान्त से लोहा के प्रत्येक मौलिकुल (अणु) में पृथ्वी पर प्रत्येक धातु में पाये जाने वाले प्राकृतिक ऊर्जा के रूपान्तरण का गुण होता है ।

पारा में जो लोहा का रूपान्तरित स्वरूप है, अगर पारा 200 सौ मौलिकूल (अणु) से निर्मित है तो उसके एक मौलिकुल को गिरा देने से 199 मौलिकुल पर, वही पारा सोना का शुद्धतम रूप ले लेता है एवं उसमें ऊर्जा के प्रवाह का रूप और सूक्ष्मतम हो जाता है ।

युरेनियम में तो एटामिक ऊर्जा का प्रवाह और संचरण तो बहुत सूक्ष्म हो जाता है । इसको इस तरह समझे !

लोहा का चुम्बकीय प्रवाह बैखरी वाणी का कम्पन्न है एवं सोना का चुम्बकीय प्रवाह मध्यमा वाणी का कम्पन्न प्रवाह है एवं युरेनियम का चुम्बकीय प्रवाह परा वाणी का कम्पन्न प्रवाह है ।

ठीक उसी तरह यंत्रारूपी मानवीय शरीर रचना में प्राण ऊर्जा का प्रवाह जब साधना के स्तर से अपने प्राण चक्र द्वारा प्राण ऊर्जा के संकलन से, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह का तमस्, रजस् एवं सतज् के चक्रवातिय स्वरूप के केन्द्रबिन्दु पर एकाकार होती है, तो अहंकार का रूप ले लेती है ।

उसी स्वरूप का शुद्धतम रूप ध्यान है। जो प्रेम में होते हुए आस्था, विश्वास का संवल पकड़ "प्रार्थना" हो जाती है एवं हम चौथा शरीर अनाहत चक्र पर जहाँ आत्मशरीर का विकास है, आत्मस्वरूपा होकर, ईश्वर के केन्द्रबिन्दु पर एकाकार होने लगते है ।

अहंकार और हमारा अपना मनुष्य जीवन का अस्तित्व जो चौथे शरीर तक, स्वगृह में मनोमय शरीर की मानसिक गति के स्वरूप में थी ! रूपान्तरीत हो जाता है । अहंकार का स्वरूप जो लोहा के चुम्बकीय ऊर्जा की तरह था, बदलकर अपना तमस्, रजस् का रूपान्तरित स्वरूप खोते हुए सतज् स्वभाव के दिव्यस्वरूप में, सोने जैसे मौलिकुल में बदल जाने की तरह आत्मस्वरूपा हो जाता है ।

मेरा काम, क्रोध, लोभ, मोह जब तमस, रजस के चक्रवातिय प्राण ऊर्जा से ऊपर की गति में चला जाता है । तो यही प्राण ऊर्जा चक्रवातीय बिन्दु में समा कर सतज् स्वभाव में आकर निवार्ण का कारण बनता है एवं अहंकार ही मेरे दिव्यस्वरूपा होने की सीढ़ी बन जाती है ।

अहंकार में मेरे प्राणऊर्जा की ग्राहकता ही तो बदलती है ! एक कार अगर मेरे पास है । तो ड्राईवर अपने को कार के स्टेरिंग पर बैठकर भी अपने आप को नौकर समझता है। लेकिन जब हम मालिकाना भावदशा में उसी स्टेरिंग और सीटपर बैठते हैं, तो अपने आप को मालिकाना हक के गर्व में महसूस करते है ।

लेकिन दोनों भावदशा में न कार का मूल्य बदलता है और न भौतिक स्वरूप ही बदलता है ।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य एक ऐसी क्रियात्मक एवं भावनात्मक भावदशा है, जहाँ प्राणी काम-कामेश्वरी की लीला से तृप्त होने के बाद ही ब्रह्मचर्य की मध्यस्थ बिन्दु में अवस्थित हो सकता है । प्रकृति का नियम है, कि बगैर तृप्त हुए हम किसी भी संस्कारगत योनि से मुक्ति नहीं पा सकते । तो हम कैसे कल्पना कर सकते हैं, कि काम-कामेश्वरी की लीला से भागकर हम ब्रह्मचर्य व्रत का पाल कर रहे हैं !

यह शरीर तो यंत्र है । इसके सारे क्रिया-कलाप दस इन्द्रियों के राजा मन द्वारा सम्पादित होता है ।

क्या हम मानसिक रूप से ब्रह्मचर्य हो पाते हैं ?

हम जितना स्त्री तत्व का विरोध करते हैं, वह प्राकृतिक नियमानुसार हमें जकड़कर पकड़ती है, और मानसिक उदवेग के रूप में हमारे कर्मबंधन पर डालती है ।

बहुत से ऋषि, मुनि एवं हमारे महापुरुष ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते देखे गये हैं । जैसे शंकराचार्य और विवेकानन्द भी ब्रह्मचारी के कोटि में आते हैं ।

बन्धुओं ! ये ब्रह्मचारी होना भी एक जन्म की बात नहीं है !

वगैर पिछले जन्म में काम-कामेश्वरी से तृप्त हुए, हम संस्कारगत ब्रह्मचारी का रूप ले ही नहीं सकते !

यह भी प्राकृतिक नियम है कि शरीर के जिस चक्र के प्रधानता से प्राण निकलती है, उसी चक्र के प्रधानता से जन्म भी होता है ।

लेकिन उस चक्र की प्रधानता से जन्म लेने के लिए भी, माँ के कोख एवं पिता के वीर्य का मिलन उसी चक्र के समानता में चाहिए ।

माँ के स्तन में भी दुग्ध, प्रवाह, काम-कामेश्वरी के ऊर्जा प्रवाह से ही उत्पन्न होता है । जब हम माँ के गर्भ में होते हैं, तो तामसिक समाधि की अवस्था में ही होते हैं । गर्भाशय तो स्थूल शरीर के मल-मूत्र के घेरे में ही नारकीय स्वरूपा होता है । लेकिन हम गर्भ में प्राकृतिक समाधि की अवस्था में क्षीर सागर में अवस्थित स्वर्ग में ही तो होते है ! पैदा लेते ही स्वर्ग छोड़ने का दुख लेकर भूमि स्पर्श करते हुए, हम देवत्व छोड़, मनुष्य की मानसिक गति में आकर चिल्लाते हैं ।

लेकिन माँ का शिशु के प्रति ममत्व भावना, काम-कामेश्वरी के मातँगी योग

की तरह रूपान्तरित प्रेम का स्वरूप ही तो है ! हम शैशव काल में अपने सतज् स्वभाव में बालक स्वरूपा होकर स्तनूपान करते रहते है ।

हमारा पोषण माता के दूध से होकर अन्न, फल, जल के सहयोग से प्राकृतिक प्राण ऊर्जा प्राप्त कर, हमें अपने मानवीय विकासक्रम में ले आता है । तो क्या यह हमारे काम-कामेश्वरी के प्राण ऊर्जा के रूपान्तरित स्वरूप के वगैर सम्भव है ?

अहंकार के लेख में वर्णन किया गया है, कि लोहा में भी प्रकृति का सोना और युरेनियम तक हो जाने के प्राकृतिक गुण हैं । प्रकृति से ही प्राण ऊर्जा लेकर हमारी भी मानवीय जीवनशैली चल रही है एवं रूपान्तरण के सूक्ष्मतम् स्वरूप सभी मानव जाती में मौजुद है ।

एक जनरेटर में जब गति पैदा होती है, तभी शक्ति ऊर्जा बिजली के रूप में प्रवाहित होती है । लेकिन यह बिजली का प्रवाह किन स्रोत के ऊर्जा से प्राप्त होती है ! क्या कभी हम इसपर सोच पाते हैं ?

प्रकृति में, आणविक ऊर्जा से सृजन और विध्वंसकारी शक्तियाँ प्राप्त कर ली जाती है । जिसको नंगी आँखों से नहीं देखा जा सकता ।

उसीतरह मनुष्य में भी काम-कामेश्वरी का सैद्धान्तिक प्राण ऊर्जा है, जो चौरासी लाख योनि को गति दिये हुए है।

हमारे काम-कामेश्वरी के तमस् रजस् एवं सतज् ऊर्जा का रूपान्तरण ही समाधि का कारण बन सकता है । चूँकि हमारा जन्म भी समाधि में है और मरण भी समाधि की अवस्था में है ।

प्राकृतिक मृत्यु समाधि से हम वापस नहीं लौट सकते । लेकिन जब हमारा ध्यान सधता है और हम करुणा, मैत्री, मुदिता के त्रिधारा में प्रेम और प्रार्थना में एकाकार हो, परिधि के केन्द्रक में समाहित होने लगते हैं, तो ईश्वरीय स्वरूप होने पर समाधि से लौटने की प्राकृतिक व्यवस्था है ।

उसी तरहकाम-कामेश्वरी द्वारा कुण्डलिनी जागरण के व्यवस्था में जब हम ध्यानस्थ बिन्दु में आकर समागम करते हैं, तो हमारी प्राण ऊर्जा प्रकृति के प्राण ऊर्जा से प्रवाह ले अनन्तगामी हो जाती है ।

अगर समागम में पाँच मिनट की स्तम्भन शक्ति प्राप्त होती है, तो कम

से कम हम तीन माह के लिए पूर्ण तृप्त हो जाते हैं । अगर आधा घंटा स्तम्भन शक्ति प्राप्त करते है, तो कम से कम सालभर के लिए हम तृप्त हो जाते है । और तीन घंटा स्तमन शक्ति प्राप्त कर लेते है, तो इस स्वर्ग-नर्क के परिधि से ऊपर उठकर, समाधि की व्यवस्था में प्रवेश कर सकते हैं ।

समाधि में जाने के लिए श्वशनक्रिया के प्राण ऊर्जा के संकलन में श्वाँसगति बिलकूल मन्द होकर साम्यावस्था में आ जाती है ।

लेकिन काम-कामेश्वरी की वासनात्मक भावना आते ही शरीर के बहुत सारे (ग्लैण्ड) ग्रन्थि में मथन जैसी गति तो आती है! लेकिन साथ ही हमरी साँस भी काफी तेज और गर्म हो जाती है । यह तमस् स्वभाव की साँस की लम्बी गति हमें वासना से ऊपर नही आने देती है । जबकि मन्द से मन्द श्वांस गति ही हमें ध्यान से समाधि की परमउत्कर्ष गति तक ले जा सकता है ।

इसलिए कुण्डलिनी जागरण के काम-कामेश्वरी के लीला में प्राण शक्ति के संचयन के लिए प्राणाकर्षन प्राणायाम एवं 'ऊँ' साधना के कई आयाम का क्रियात्मक प्रायोगिक रूप में बर्णन किया गया है । श्वाँस की गति नियंत्रण ही प्राण ऊर्जा के संकलन की मूलभित्ति है ।

''अहंकार'' लेख में वर्णित लोहा, सोना और युरेनियम धातू जैसे रूपान्तरीत स्वरूप में हमारे प्राण ऊर्जा के मंदगति के प्रवाह में आने पर ही हमें वैखरी, मध्यमा और परा वाणी की शृखंला की कड़ी से निकलते हुए- तमस्, रजस् एवं सतज् रूप में हमें रूपान्तरित कर, हमें जन्म समाधि से मृत्यु समाधि तक की यात्रा सुनिश्चित करती है ।

इन्हीं बातों का ध्यान रखते हुए पुस्तक के कई लेखों में चर्चा की गयी है, कि स्त्री का चित्रणी एवं पद्मिनी स्वरूपा चरित्र ही, हमें विशुद्ध ध्यान और समाधि का स्वरूप पकड़ने में सहयोग दे सकती है ।

गणिका से भी कुण्डलिनी जागरण में सहयोग मिलेगा । लेकिन उसमें लोहा जैसी अशुद्धियाँ होने के कारण, वह तमस्-स्वभाव के काम-क्रोध, लोभ, मोह के गहनता को मजबूती से पकड़ेगा और हमें चौथे शरीर के तामसिक प्रवृत्ति से कभी ऊपर नहीं उठने देगा और मनुष्य जीवन के परम उत्कर्ष से वंचित कर देगा ।

लेकिन जब वही काम-कामेश्वरी का समागम चित्रणी और पदमिनी संस्कार

के स्त्री से होगा, तो उसका प्रेममय प्रार्थना का समर्पण ही हमारी ध्यानस्थ समाधि के बिन्दु को साकार कर पायेगी।

मेरा ध्यानस्थ समाधि की समागम साधना की अवस्था मन्दगति के प्राण ऊर्जा में चलने से स्त्री के निगेटिभ पोल एवं पुरुष के पोजेटिभ पोल के सर्किट को एकाकार कर, एक दिव्य ओरामंडल का प्रकाश परावर्तित करने लगेगा और हम सीता-राम, राधा-कृष्ण की अनुभूति में आकर स्वर्गलोक एवं गोलोक तक की स्वर्णिम आभामंडल की सम्भावनाओं से जुड़ जायगें । (चित्र संख्या-7 में देखें)

इसलिए बन्धुओं !

अपने पारिवारिक परिवेश को समझो !

प्रेम, आस्था, विश्वास के जीवनचक्र में आकर काम-कामेश्वरी की गहनता के सिद्धान्त को समझो !

इस काम-कामेश्वरी की लीला को वासनात्मक प्रवृत्ति में न आने देकर इसके स्वरूप को ईश्वरीय प्राण ऊर्जा में समझो ! एवं भगसागर से निकलकर भगसागर को पार कर जाओ !

थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि के चक्रवात से सदा के लिए मुक्त होकर ! सप्तऋषि की तरह आकाश के नक्षत्रामंडल में चमको ! यही साधना तुम्हें ब्रह्मचर्यव्रत के अनुरूप ढ़ालकर सभी योनियों के चक्रवात से मुक्त कर देगी ।

वाल्यावस्था में सात वर्ष तक भौतिक शरीर और चौदह वर्ष तक में भाव शरीर का पूर्ण विकास हो जाता है । प्राकृतिक रूप से प्रत्येक मानव में कामात्मक ऊर्जा अधोगति में जमा होकर मानसिक व्यक्तिरेक पैदा करनी शुरू कर देती है ।

हममें अप्रत्यक्ष रूप से यौन आकर्षण का चुम्बकत्व मानसिक ऊर्जा के गति में तनाव पैदा करने लगता है ।

लेकिन भौतिक शरीर के विकास तक में अगर बच्चें-बच्चियों में धारणा और ध्यान का संस्कारगत अभ्यास कराया जाय, तो लेख में बर्णित विभिन्न बिन्दुओं के समाधान की तरह, यह काम ऊर्जा का अधोगति का विकास ऊर्ध्वगति के विकास के रूप में रूपान्तरित किया जा सकता है एवं यही धारणा और ध्यान मातृत्व प्रेम में अवस्थित होकर

माँतगी योग का कारण बन सकता है ।

बच्चों के भाव शरीर से सूक्ष्म शरीर के विकास क्रम तक में ही कुण्डलिनी जागरण की पूर्ण सम्भावना बन सकती है । बच्चे भी ब्रह्मचारी की बुनियादी नींव पर खड़ा होकर प्रहलाद बालक ध्रुव, घटोत्कक्ष, अभिमन्यु एवं कृष्ण पुत्र प्रद्युन्न के श्रेणी में आ सकते हैं ।

हम प्राणवायु को ही जीवन का स्रोत समझते आये हैं । लेकिन वायु की गति तो पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के कुछ खास परिधि तक ही सीमित है । ब्रह्माण्ड में ईथर और न्यूट्रॉन का कम्पन्न क्षेत्र ही प्राण संचरण का कारण है । लेकिन यह प्राण ऊर्जा तो नहीं है !

सूर्य से सभी चेतन एवं अचेतन पिण्ड एवं प्राणी में प्राणस्रोत से प्राण संचरण हो रहा है। लेकिन क्या सूर्य ही प्राण स्रोत का कारण है ?

सूर्य भी तो कहीं से प्राण ऊर्जा से जुड़ी है । सूर्य को भी कौन प्राणऊर्जा दे रहा है ? हमारे आकाशगंगा में सात सूर्य की परिकल्पना की व्याख्या मनिषियों ने की है । जबकि अनेक आकाश गंगा हैं, एवं सैकड़ों सूर्य की परिकल्पना साकार रूप में ऋषियों ने दिव्य दृष्टि से जाना है । इस अनन्त में हम प्राणऊर्जा का स्रोत कहाँ माने ?

इसलिए हमारी आत्मा भी किन्हीं प्रकाश प्राण से जुड़ी है । और चित की स्थिति से होते हुए मनःशक्ति को गति दे रही हैं एवं हमारी मनःशक्ति ही उधोगति और उर्ध्वगति का कारण है ।

अगर हम इन्हीं प्रार्ण ऊर्जा के स्रोत को बच्चों के विकासक्रम पर ही धारणा और ध्यान के क्रम में ले आते हैं, तो यही काम-कामेश्वरी की प्राण ऊर्जा का संचरण उर्ध्वगति में आकर प्रेम, आस्था, विश्वास का संवल पकड़, मातँगी योग या ईश्वरीय भक्तियोग के रूप में मानव-जीवन के बुनियादी नींव पर ही रूपान्तरित हो ईश्वरीय स्वरूप पकड़ सकता है और ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारी का रूप पकड़ केन्द्रबिन्दु पर एकाग्र होकर ध्यानस्थ होने की चेष्टा में, हममें ब्रह्मस्वरूपा निवार्ण की स्थिति पैदा कर सकता है ।

सम्भावनाएँ

हम अपने धार्मिक संस्कृति, अपने आस्था और विश्वास में अपने मानवीय सम्भावनाओं को इस तरह जकड़ कर छोटा कर लिया है, कि यह अंधविश्वास और धर्मरूढ़िता के अंधकुप में सिसकियाँ ले दम तोड़ रही है ।

अपने सारी चेष्टाओं और सम्भावनाओं को यांत्रिकी कर लिया है और यंत्र के गुलाम होते चले जा रहे हैं । हममें स्वयं जो अनन्त तक के उपलब्धियों से भर जाने की सम्भावनाएँ थी, वह धर्मगुरु एवं साधु-सन्यासी द्वारा मिथक भ्रान्ती एवं अंधविश्वास पैदा करने से, मनुष्य जाति के परमानन्द हो जाने की सारी व्यवस्था को तोड़-मरोड़ कर रख दिया है ।

नतीजा सामने है !

जो हम और हमारे सन्तति- प्रेम, दया, आस्था, विश्वास का संबल ले आगे बढ़ सकते थे; वह घृणा, द्वेश, हिंसा के आधार पर खड़ी समाजिक व्यवस्था में, तीसरे महायुद्ध की विभिषिका के कगार पर खड़ी है ।

हमने अपने काम-कामेश्वरी के विशुद्ध लीला को इतना वासनात्मक कर लिया है, कि उच्च आत्माओं के आगमन के सारे रास्ते बन्द होते चले जा रहे हैं । अपने पशु भावदशा से वीर भावदशा होते हुए दिव्य भावदशा में जाने के नींब पर ही कुठाराघात कर लिया है !

गणिका हो या पत्नी अगर हम प्रेमपूर्ण भावदशा में समागम नहीं कर पाते, तो इस शरीर के केवल यांत्रिक गति को ही कायम रखना है ।

गणिका केवल शरीर बेच सकती है, मन और आत्मा नहीं । लेकिन पत्नी को भी हमने वासनात्मक शारीरिक एवं यांत्रिकी वंशानुक्रमिका का भाग मान लिया है ।

कई लेखों में चर्चा की गई है, कि इस स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर गति दे रही है एवं सूक्ष्म शरीर को कारण शरीर, जिसमें आत्मा है, वह गति दे रही है, एवं आत्मा किन्हीं अनन्त स्रोत से प्राण ऊर्जा ले रही है ।

जबकि हम अपने इस स्थूल शरीर को ही, जो जड़ एवं चेतन के समिकरण से बना है, सृष्टि का मूल कारण समझ, अपनी जीवन शैली चला रहे हैं । इस जड़ शरीर में तो चेतना सूक्ष्म शरीर के नियंत्राण में है ।

आत्मस्वरूपा होने की सारी सम्भावनाएँ आत्मकेन्द्रीत होने पर है। जो आत्मकेन्द्रीत होने के लिए धारणा, ध्यान, प्रेम, समाधि पर केन्द्रीभूत हुए वगैर सम्भव है नहीं !

काम, क्रोध, लोभ, मोह के तमस्, रजस् एवं सतज् चक्रवातिय बिन्दु से गुजरने के बाद ही- सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम के केन्द्र बिन्दु पर समाहित होने की सुविधा प्रकृति ने हमें प्रदान की है । लेकिन अपने पहले भौतिक शरीर में ऊपर उठते-उठते, भाव शरीर पर ही अपने केन्द्र को अधोगति में केन्द्रीत करते हुए, वासनात्मक काम के आगोश में हम अपना सर छुपा लेते हैं ।

जबकि यही किशोरावस्था का समय हमारे काम ऊर्जा को ज्ञान ऊर्जा में केन्द्रीत करने का समय होता है । प्रकृति तो अपना सृष्टि संचालन के हेतु हमारी सारी प्राण ऊर्जा को अधोगति में कामक्षेत्र पर केन्द्रित कर देती है । और हम स्त्री-पुरुष इसके यांत्रिकी गुलामी में अवश एवं जकरण के जंजीर में बंधकर ही अपने आपको मानवतन के अतृप्त भावदशा को तृप्ति का साधन मानने लगते हैं ।

जबकि किसी को तृप्त होते नहीं देखा गया है । तृप्ति तो धारणा, ध्यान, प्रेम और समाधि की उत्कृष्ट भावदशा है । जहाँ परमानन्द के भावदशा में समाहित हो, हम आनन्द की परम अनुभूति से जुड़ जाते है ।

हमारे भारतवर्ष में वैवाहिक सम्बन्ध इन्हीं धारणा, ध्यान के सिद्धान्त पर आधारित रश्मों में बाँधकर व्यवस्थित की गयी है । जहाँ स्त्री के संस्कारगत समर्पण एवं आस्था का संस्कार, सात फेरे और अपनत्व पैदा करने के कई विभिन्न रश्मों से जोड़ा गया है एवं इन्हीं वैवाहिक सम्बन्ध की ऊचाँई को प्रेममय जीवन का आधार माना गया है । ठीक है ! शरीरिक तल पर प्रेम की सम्भावना नहीं है !

लेकिन हमारी संस्कृति ने कुछ इस तरह दाम्पत्य जीवन को प्रेम और श्रद्धा के सुत्र में बान्धा है, कि यही वासनात्मक काम-क्रीड़ा बिशुद्ध काम-कला का रूप लेते हुए हमें प्रेममय आनन्द से सरावोर कर देती है ।

ऋषि-मुनियों एवं तत्व ज्ञानियों ने इसी सूत्र को चित्रों और सूत्रों में बाँधकर, हमारे समाज को चैतन्य रखने का प्रयास किया है । जिसके प्रतीक में- खजुराहों, कोर्णाक का सूर्य मंदिर एवं जगरन्नाथपुरी का कृष्ण-बलदेव मंदिर दृश्यमान है ।

लेकिन हम उनकी बारिकियों को नहीं समझ पा, उनके चित्रण को बिकृति रूप दिये चले जा रहे हैं ।

अष्टांगयोग में धारणा, ध्यान, समाधि की अवस्था के बुनियादी नींव को साधने के लिए, आसन सिद्ध की व्यवस्था कम से कम तीन घंटे की रखी गयी है । वे भी कुण्डलिनी जागरण के साधना क्रम में अपने स्त्रौण केन्द्रो को प्राकृतिक ऊर्जा से समतुल्य करने के लिए मन्दगति की व्यवस्था में प्राण ऊर्जा संकलन हेतु विभिन्न प्राणायाम के प्रायोगिक रूप की व्यवस्था अपनाते देखे गये हैं । उनकी समाधि भी प्रकृति के मैथुनगत चक्रवात से बिन्दु पर अवस्थित होने की है ।

चित्रों में शंकर के वक्ष पर काली को पैर रखकर रणभूमि में भी योगनिद्रा के ध्यानस्थ मुद्रा में दिखलाया गया है। जो हमरे योगानिद्रा में आने पर आत्मकेन्द्रीत होने का प्रतिकात्मक है ।

शिवलिंग को भी भग में स्थित ऊपर की दशा में दिखलाया गया है एवं महामृत्यून्जय के पूजा एवं जाप में अवस्थित लिंग की पूजा को सर्व सिद्धिदायक माना गया है । जो हमारे, **भग समाधि** से **भव समाधि** का प्रतिकात्मक स्वरूप है ।

तंत्र शास्त्र में शक्ति को उपर का अरणी, एवं शिव को नीचे का अरणी माना गया है । यह तंत्रशास्त्रा मानव सभ्यता का उच्चतम शिखर रहा है । हजारों साल पहले इसकी प्रखरता ने अनेकानेक उपलब्धियों से मानव संस्कृति को भर दिया । उसी की प्रतीति में काम-कामेश्वरी के समागम सम्बंध को तंत्र एवं 'ॐ' साधना के सहजता में आकर ध्यान साधना कुण्डलिनी जागरण की मूलभित्ति माना गया है ।

ठीक उसी तरह कुण्डलिनी जागरण में पुरुष की ध्यानस्थ मुद्रा कम से कम पन्द्रह मिनट के स्तम्भ में छः महीने की तृप्ति प्रदान करती है और पशु भावदशा से उपर उठने की नींव डालती है ।

आधा घंटा की स्तभन शक्ति वीर भावदशा, जो मनुष्य का स्वगृह है, वहाँ से ऊपर उठने की सम्भावनाओं को खड़ा करती है, एवं हम प्रकृति के अनेकानेक सिद्धियों एवं उपलब्धियों से भर जाते हैं ।

स्त्री-पुरुष का धन विद्युत एवं ऋण विद्युत का वलय, ध्यानस्थ मुद्रा की द्वितीय केन्द्र पर एक दिव्य ओरामंडल का आभा प्रकाश घेरे में हमारी

आनन्ददायक मुद्रा को ले लेती है । चित्र संख्या -7 हम अपने पुरुषत्व को नीचे की अरणी शिवरूपा एवं स्त्रीतत्व को शक्तिरूपा ऊपर की अरणी के रूप में ध्यानस्थ समाधि में समतुल्य बिन्दु पर आकर धन्य हो जाते हैं ।

इस पृथ्वी पर महामना ऋषियों एवं मनिषियों के आमंत्रण का कारण मेरा रज एवं बीर्य हो सकता है और हमें कम से कम सालभर के लिए तृप्त कर देता है । जब तीन घंटे तक की भग-समाधि शक्तिरूपा ऊपर की अरणी एवं शिवरूपा नीचे की अरणी के रूप में लगती है, तो हम समाधि की वैशचिक भावदशा में आ सकते हैं और थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि से ऊपर की गति में जा सकते हैं ।

लेकिन हमारे समाज व्यवस्था ने इस प्राण ऊर्जा को इसतरह अधोगति में लगा दिया है, कि हमारी सारी चेतना वासनात्मक हो रही है। हम साँस तो लेते हैं, लेकिन जीवनशैली के प्राकृतिक गति में ! हम समागम तो करते हैं ! लेकिन शारीरिक खुजली की तरह बिलकूल यंत्रावत् ! प्रेम तो करते हैं ! लेकिन आपसी यौन शोषण की तरह वासनात्मक ! जहाँ न तृप्ति है और न मुक्ति है ।

बन्धुओं !

हमें अपने प्राण ऊर्जा को मंदगति में संचरण करना होगा ! जिसके लिए लेख में भी विधियाँ बतायी गयी है एवं अपने काम ऊर्जा को व्यवस्थित कर नियंत्रित समय एवं अवधि में लाना होगा ताकि व्यवस्थित ब्रह्मचर्य व्रत की रूपरेखा तैयार की जा सके ।

अर्जुन कई शादियाँ करके भी, नर की उच्चतम उपलब्धि से विभूषित हुए ! कृष्ण बहुत सारी रानी-पटरानी के बीच रहते हुए, ब्रह्मचारी योगीराज कृष्ण कहलाए एवं नारायण हो गये ।

राधा के प्रेम ने कृष्ण को गोलोकवासी कर दिया । आज भी राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंग को देश, विदेश के प्रेमीजनों में, प्रार्थनामय प्रेम का संदेश देते हुए, प्रेम को ईश्वरीय संदेश माना गया है ।

परासर मुनि और निषाद कन्या मछोदरी के नदी के बीच ही समागम को हमारे समाज ने क्या ! ईश्वर ने दिव्य मिलन का कारण माना और व्यासदेव जैसे ऋषि

को जन्म दिया । जिनने इस समाज को ज्ञान-विज्ञान की बहुत सारी उपलब्धियाँ गीता एवं पुराणों के रूप में दी ।

दिव्यज्ञानी जनक महराज को अपने पत्नी के स्तन पर हाथ रखकर दूसरे हाथ से हवन कुण्ड में स्वाहा करते देखा गया एवं बारह वर्ष तक पत्नी के स्तन पर हाथ रखकर जनक के तपस्या करने के बाद भी उन्हें विदेह कहा गया । जो मनुष्य की यांत्रिकी गति से ऊपर की गति है, उससे ऊपर विदेह जनक के तप साधना को माना गया है ।

सूर्य से किरण चलती है, लेकिन किरण के करोड़ो मील की यात्रा के बाद भी हर किरण में सूर्य का सारा गुण होता है एवं सातो रंग की प्रतीति बनी रहती है। यही सातो रंग सात ग्रह के प्राण ऊर्जा के संवाहन का मूल कारण होता है।

ठीक उसी तरह प्रत्येक मानव तन में भौतिक शरीर से भाव शरीर की गति में चौदह वर्ष पूर्ण होने तक सभी शरीरिक अवयव को पूर्ण करने के लिए (ग्लैण्डस) ग्रन्थि का श्राव होने लगता है । हमारे पूर्ण शरीर में जो असंख्य कोषा से बना है, प्रत्येक कोषा प्राण ऊर्जा का संकलन कर्मबंधन, मानसिक और शरीरिक क्रियाकलाप के रूप में ग्रहण करने लगता है ।

मन जो आज्ञाचक्र के दोनों विभूओ का राजा है। हमारे चेतन मन में यांत्रिकी शरीर पर भी हर अणु एवं कोषा पर- काम, क्रोध, लोभ, मोह का अतृप्त प्यास प्राण ऊर्जा के संकलन में डालने लगता है । कभी न बुझने बाली प्यास में हम द्वेश, घृणा, अपराध, हत्या, बलत्कार जैसे घृणित अपराध बोध से भर जाते हैं । जो काम की वासनात्मक प्रवृति की केन्द्रीभूत प्राण ऊर्जा की उपलब्धि है ।

हमारे प्राकृतिक प्राण ऊर्जा के प्रवाह में मूलाधार, स्वाधिष्ठान आधा नाभिकेन्द्र पर काम ऊर्जा, सूर्य के सप्त आयामी किरण के बिखराव की तरह अधोगति भाग में प्रवाहित हो, इन केन्द्रो पर संकलित होने लगती है । जो हमारे जीवन शैली को चलाने हेतु मन की अंधी दौड़ को बनाएँ रखती है एवं कभी हमें तृप्त नहीं होने देती !

मन श्वाँसो की गति द्वारा ही अपने चेतन एवं अचेतन मन को विवेक एवं अविवेक के धर्मयुद्ध में फँसाये रखती है । चेतन मन जो इस यांत्रिकी शरीर के बाहरी मन का राजा है, कभी अपनी गति शान्त नहीं रखती और हमारे अतृप्त प्यास की तरंगक्षेत्र को कायम रखते हुए कभी तृप्त नहीं होने देती ।

लेकिन यही श्वाँसो की गति जब प्राणायाम् की मुद्रा में मंदगति में चलती है, तो वही मन हमारे प्राण ऊर्जा के स्रोत को मित्रवत् ग्रहण करने लगता है, और हमारे अन्तर चेतना के जगत का द्वार खुलता है एवं हम अनन्त की विभूतियों से भर जाते हैं ।

कामक्षेत्र आधा नाभिकुण्ड तक सक्रिय है, उससे निकलकर ज्ञानक्षेत्र की परिधि में छलांग लगा लेते है । सूर्य किरण से निकलने वाली सप्त आयामी किरण की तरह मेरी प्राण ऊर्जा का संकलन उर्ध्वगति में अनाहत, विशुद्धाय होते हुए, आज्ञाचक्र पर बैठे मन के अन्तरचेतना का सहभागी ,चित की स्थिति में स्थितिप्रज्ञ हो जाती है

अधोगति में बहने वाली प्राण ऊर्जा जो कुण्डलिनी के रूप में मूलाधार पर बैठी है, उर्ध्वगति का प्रवाह ले ब्रह्मरंध्र पर बैठे कुण्डलिनी सर्प से तत्वरित बिजली के प्रवाह के रूप में समाहित हो एकाकार हो जाती है एवं हम विष्णुरंध्र में एकाकार हो चिदानन्द और समाधि की व्यवस्था में चले जाते हैं ।

इसलिए बन्धुओं !

अपनी प्राण ऊर्जा के कार्यक्षेत्र को समझो !

अपने प्राण ऊर्जा को संचयनकर अन्तरजगत पर बैठे मन से, लेखित प्रकरण के सिद्धान्तो की बारिकियों को जानो !

काम-कामेश्वरी से प्राप्त प्राण ऊर्जा को कुण्डलिनी स्वरूप में जान, अपने आप को ब्रह्मस्वरूपा की आनन्दमय अवस्था में अवस्थित कर चिदानन्द हो जाओ !

तोड़ डालो !

सारे कर्मवंधन की बेरियों को ! और थलकर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि की यांत्रिकी गति से ऊपर अपने आपको अवस्थित करो !

इन्हीं पूरे लेख के सिद्धान्त को कभरपेज पर-धारणा, ध्यान एवं समाधि के रूप में दर्शाने का प्रयास किया गया है एवं काली के प्रतीक में इनकी उपलब्धियों को दर्शाकर मनुष्य जीवन की उपलब्ध्यिों को समझाने का प्रयास किया गया है ।

स्वार्थी

स्वार्थी वनो "स्व" का अर्थ जानो। तुम पहले अपनी सेवा करो! अपने अन्दर आनन्द उत्सर्गित करो! दुखः और सुख दोनों तुम्हारी उपलब्धि है और जो तुम पाओगे वही दुनिया को बाँट पाओगे!

मन

प्राणी मात्र में, मन उसके अस्तित्व का कारण है । जब हम स्थूल शरीर में होते हैं, तो मन ही नियंत्रण कक्ष में बैठकर हमारी प्राण ऊर्जा को आत्मा से चित् (ब्रह्मरंध्र) होते हुए, आज्ञा चक्र के सिंहासन पर बैठे मन के अन्तर्मन की स्थिति एवं बर्हिमन की स्थिति में, हमारे आन्तरिक, सूक्ष्म जगत एवं बाह्‌य स्थूल जगत में तारतम्य कायम रखता है ।

हमें पृथ्वी पर बने निश्चित मार्ग से चलना पड़ता है एवं निश्चित बिन्दु के भूभाग पर निवास स्थल बनाकर निवास करना पड़ता है । लेकिन मन की गति तो प्रकाश वेग से भी ऊपर की गति में चल सकती है । उसका पथ विश्व-ब्रह्माण्ड के ईथरिक एवं न्यूत्रान गति के अनन्त कम्पन्न क्षेत्र से होकर गुजरती है ।

हम चौरासी लाख के प्राणी भ्रमण में कभी सिंह की तरह दहाड़े होंगे एवं घ्राण शक्ति तीब्रतर होगी । कभी चमगादर की तरह रेडियो तरंग को जाना होगा, तो कभी उल्लू की तरह पन्द्रह डिग्री के कोण तक दृष्टि क्षमता एवं रात के गहन अंधेरे में भी देखने की क्षमता हममें आयी होगी । कभी स्वान की तरह गंध पहचान कर वस्तु या प्राण को चिन्हित करने की क्षमता आयी होगी ।

लेकिन मन तो हर प्राणी में उसके जीवन शैली को उसके योनि के अनुरूप अपनी गति में प्राण ऊर्जा के संचरण का कारण है । चौरासी लाख योनि में मन तो किसी भी स्थूल या सूक्ष्म प्राणी के प्राण ऊर्जा को थामे हुए हैं ।

यही मन जब मनुष्ययोनि में अनुप्राणित होता है; तो हमारे शारीरिक बनावट के इन्द्रीय तत्व एवं सूक्ष्मशरीर के प्राणतत्व द्वारा सभी जन्मों के प्राण संचरण को संजोये, ब्रह्माण्ड के अनन्त ऊर्जा क्षेत्र को थामने में सफलता प्राप्त करती है ।

लेकिन जरूरत है, अपने षष्टचक्रों को कुण्डलिनी जागरण द्वारा जागृत कर ब्रह्माण्ड के अनन्त कम्पन्न एवं ऊर्जा क्षेत्र के संचयन से गुजरने की । जब हम बर्हिमन के सिंहासन से स्थूल शरीर द्वारा पदार्थगामी वस्तुओं का अपने इन्द्रीय द्वारा उपयोग एवं उपभोग करते हैं, तो हमारी प्राण ऊर्जा अधोगति में बनी रहती है एवं शारीरिक छः चक्रो-

(१) सूर्य चक्र	(३) अमृत चक्र	(५) तड़ित चक्र
(२) अग्नि चक्र	(४) प्रभंजन चक्र	(६) सोम चक्र

के नियंत्रण से चलती है । लेकिन जब कुण्डलिनी जागरण की प्रतिक्रिया से हमारी प्राण ऊर्जा उर्ध्वगति पकड़ती है, तो सूक्ष्म शरीर के नियंत्रण कक्ष जो मेरूदण्ड (स्पाइनल कौड) के सुषुम्ना नाड़ी से गमन करती हुई, सूक्ष्मस्वरूपा छः चक्र-मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धाय चक्र, आज्ञा चक्र होते हुए ब्रह्मरंध्र तक पहुँती है ।

ब्रह्मरंध्र जो आत्मा द्वारा किसी अनन्त प्राण शक्ति से प्राण ऊर्जा ले रही है, उसमें संचरण करने लगती है । हम पदार्थ में रहते हुए पदार्थ का स्वरूप छोड़ चतुर्थ आयामी, कम्पन्न क्षेत्र में अपने अन्तरमन के सिंहासन पर बैठकर ब्रह्माण्ड के नियंत्रण कक्ष में आ जाते हैं और नियंता की श्रेणी पकड़ने लगते हैं ।

विज्ञान ने इस कम्पन्न के प्राण तत्व को पहचाना है । छोटे से छोटे चिप्स में लाखों पन्ने की किताब या लाखों चलचित्र के बिन्दुगत गमन को भी संचरित कर, बारम्बार दुहरा कर भी देख-सून सकने की क्षमता को कैद कर रखा है।

ठीक उसी तरह हमारे ब्रह्मरंध्र के सेरेब्रेटा कैभिटि में सेरेब्रल नामक भूरा तरल पदार्थ में तीन वाल की एन्टेना की तरह न्यूरॉन सेल में भी प्रकृति के अनन्त कम्पन्न क्षेत्र का करोड़ो वर्ष की प्राण ऊर्जा एवं प्राण शक्ति प्राणी मात्र के जन्म-मरण की परिधि में अंकित रहती है, जिसका वैज्ञानिक स्वरूप चित्र संख्या 17 में देखें ।

यह न्यूरॉन सेल सेरेब्रल भूरे रंग के तरल पदार्थ में 1008 फेरा दिये हुए, बाल से भी पतले स्नायु व्यवस्था में लपेटा मारे मटर के अन्डाकार स्वरूप में ब्रह्मरंध्र के नियंत्रण में होता है एवं विश्व-ब्रह्माण्ड के कम्पन्न क्षेत्र को थामे रहता है ।

जब हम अपनी कुण्डलिनी साधना द्वारा अपने आज्ञा चक्र के तीसरे नेत्र के प्राण ऊर्जा क्षेत्र को थामते हैं, तो त्रिकालदर्शी हो जाते हैं। अन्तरमन की सूक्ष्मगति में भूत, भविष्य एवं वर्तमान की किसी भी प्राण ऊर्जा शक्ति एवं उसके गति का संचरण क्षण-पलक में देख लेते हैं । जहाँ समय और काल की गति अति सूक्ष्मतर हो जाती है।

जो भौतिक मन के बहिर गति द्वारा पकड़ में आना असंभव है

भौतिक शास्त्र के एक प्रयोग में सेन्टीमीटर पैमाना में चिन्ह्रित जार में, जल निश्चित चिन्ह् तक डाल लिया जाता है एवं एक शीशे के रौड से धीरे-धीरे ऊपर की ओर से नीचे की ओर बिन्दुबार तरीके से हलके ढ़ग से ठोकर मारा जाता है

। शीशे के रौड से मारने के जिस बिन्दु पर जार में आवाज सोऽ ऽ ऽ की आवाज (रिजोनेन्स) गूंजती है, उस पैमाने के बिन्दु को नोट कर लिया जाता है ।

वह गूंज बिन्दु, बराबर जलतल से ऊपर के जलभार के अनुरूप ही गूंजा करती है। उस बिन्दु को नोट कर लिया जाता है । जार में थोड़ा-थोड़ा पानी डालते है एवं ऊपर की विधि से प्रत्येक गूंजबिन्दु को चिन्ह्रित कर लिखते चले जाते हैं ।

उसी तरह मानवतन में हमारे तमस्, रजस् एवं सतज् के काम, क्रोध, लोभ, मोह के अनुपात में प्राण ऊर्जा किस कम्पन्न क्षेत्र में गूंज करती है; वह हमारे मानसिक, शारीरिक-आन्तरिक एवं बहिर्गति के स्थूल और सूक्ष्म शरीर की प्राण ऊर्जा के संचरण पर निर्भर करती है

हमारे रहन-सहन, हमारा खान-पान हमारे सुख-दुख की हमारी सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश की अनुभूति के प्रयोग, जो हमारे चिन्ह्रित जार रूपी मानव शरीर के अन्तराल में गूँजती रहती है, वह हमारी मनोदशा एवं भावदशा का कारण बनती है ।

मंत्र विज्ञान एवं तंत्र विज्ञान की सारी अध्यात्मिक व्यवस्था इन्हीं मनोभाव के भावदशा का प्रतिफल है ।

हम आँख से कुछ भी वस्तु को देखते हैं, तो वस्तु ही हमारे आँख द्वारा हमारे मस्तिष्क में नहीं प्रवेश कर जाता है । हमारी आँख के द्वारा दृष्टि ऊर्जा वस्तु तक जाकर बिन्दुबार प्रतिबिम्ब लेकर लौटती है । जो हमारे चित् की स्थिति पर अंकित होती है । साधारणतया पाँच सेकेण्ड से ज्यादा दृष्टि ऊर्जा स्वभावगत रूप से एक वस्तु या प्राणी पर नहीं टिकना चाहती ।

लेकिन अगर उससे ज्यादा हम दृष्टि टिकाना चाहते हैं, तो हमारी आन्तरिक प्राण ऊर्जा, दृष्टिऊर्जा के रूप में निश्चित बिन्दु पर संकलित हो, एक अलग ताप एवं कम्पन्न को केन्द्रीभूत करने लगती है।

जो मनुष्य या प्राणीमात्र की प्राण ऊर्जा शक्ति भी उस दृष्टि बिन्दु पर सघन होने लगता है और हमारे नियंत्रण क्षेत्र में आ जाता है । अगले प्राणी के प्राणक्षेत्र में भी केन्द्रीत होकर हम उसका-भूत भविष्य वर्तमान जानने में सक्षम हो जाते हैं एवं उसके कल्याण तथा दुख का कारण बनते हैं ।

हमारे खान-पान के व्यवस्था से भी हमारी प्राण ऊर्जा के संचरण में

मानसिक गति वदलती है । भूभाग के नीचे के पैदावार कन्द-मूल में पृथ्वी तत्व ज्यादा होता है, तो मूलाधार और स्वाधिष्ठान पर पृथ्वी का तत्वभार ज्यादा बना रहता है । जल तत्व प्रधान खान-पान से अहंकार क्लेश जो मानसिक चंचलता का कारण है, वह स्वभाव में ज्यादा बनी रहती है ।

आकाश तत्व प्रधान फल-फूल खाने से आकाशीय ऊर्जा का ज्यादा प्राण शक्ति हम ग्रहण करते हैं, जो वाय विर्य तत्व ज्यादा ग्रहण करने से आकाश तत्व के प्राण ऊर्जा में गमन करने में हमारी मानसिक गति में सहायक होता है ।

जड़ तो सबों का पृथ्वी से एवं सींचन जल से ही होता है । लेकिन उसके पैदावार की बदलती व्यवस्था के कारण प्राण ऊर्जा मन के स्वभावगत-तमस्, रजस् एवं सतज् के काम, क्रोध, लोभ, मोह के जार के बिन्दुवार चोट की तरह हमारे मन की भावदशा बदलती रहती है एवं हम अपने मन के द्वारा अंगीभूत क्रिया-कलाप के गुलाम बने रहते हैं ।

इसलिए मनिषियों ने साधना में उपवास की व्यवस्था एवं फलाहार की व्यवस्था को सर्वोपरि माना है महावीर ने तो उपवास साधना से ही मन के सतज् भावदशा में आकर इहलोक और परलोक सुधारने की व्यवस्था कायम की है । इनकी साधना में मन की गति तमस्, रजस् के प्राण ऊर्जा क्षेत्र को छोड़कर सतज् भाव में आने के लिए ध्यान साधना को सर्वोपरि माना है ।

शुद्धतम प्राण ऊर्जा को पृथ्वी तत्व, जल तत्व और अग्नि तत्व के क्षेत्र से निकलने के लिए इनके अधिक्ता वाली हर ग्राह्र्य प्रत्येक भोजन एवं वस्तु से दूर रहने की व्यवस्था को सर्वोपरि माना है ।

क्योंकि ध्यान साधना के लिए दूषित मानसिकता से वचना भी साधना का स्वरूप है और ध्यान बिन्दु ही ब्रह्मबिन्दु तक समाहित होने का केन्द्रबिन्दु है ।

हमारे मन की गति (वन वे ट्रैफिक) एक पक्षिय गति की तरह होती है । वह जब भी भागेगी, एक ही रास्ते के बिन्दुबार गति में भागेगी । जब रास्ता बदलेगी, तो फिर उसी रास्ते के बिन्दुवार गति में भागेगी । इसीलिए मन के नियंत्रण के लिए ध्यान बिन्दु में समाध्स्थि होना आवश्यक है । तभी भावना के सजत् भावदशा में हम प्रवेश कर पायेंगे ।

लक्ष्मी, सरस्वती, काली जीवनगति

प्राणऊर्जा तो ब्रह्माण्डव्यापी है । लेकिन वह हमारी प्राणिक शक्ति के अनुरूप, हमारे स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर में अवस्थित आत्मा के स्वरूप में, हमारी प्रात्रता के अनुरूप ढ़ल जाती है ।

चित्रों एवं उपनिषदों में हमारे मनीषियों ने सांकेतिक भाषा में इस प्राणिक ऊर्जा के संचरण की गति बतायी है । लक्ष्मी का बाहन उल्लू एवं सरस्वती का वाहन हंस दिखलाया गया है । काली को शिव के बक्ष पर पैर रखकर संहारक मुद्रा में दिखलाया गया है ।

हालाकि इन तीनों देवियों को प्रवित्रता एवं दिव्यता की श्रेणी में उच्च्य श्रेणी में माना गया है एवं सृष्टि के आणविक गति में देखा जा रहा है । लेकिन सबों के वाहन एवं सवार होने की स्थिति हमारे मनीषि चित्रों के सांकेतिक भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास करते रहे हैं ।

उल्लू को केवल रात में दिखलाई देता है । सूरज के प्रकाश में वह अपने आपको अंधेरा में महसूस करता है । यह प्रतीकात्मक छवि हमारे आपके दैनिक दौड़ की गति को दर्शाती है ।

धन, ज्ञान के सूर्य रूपी प्रकाश को धूमिल कर देता है। धनअन्धता एक अबश-अथक दौड़ के अहंकार में हमें दौड़ाकर शिथिल कर देना चाहता है । धन की चाहत में हमारा ज्ञान रूपी विवेक दबकर रह जाता है । लेकिन इस उल्लू के ऊपर सवार लक्ष्मी को हमारे आणविक ऊर्जा की परिधि माना गया है ।

क्योंकि अंधेरे की ताकत को हम समझ नहीं पा रहे हैं । रोशनी मिटाई जा सकती है । अंधेरा नहीं मिटाया जा सकता । वह अंतरिक्ष के अनन्त कोने तक व्याप्त रहेगा । दीपक अगर हम जलाते है, तो वह कुछ दूरी तक प्रकाश देता है । लेकिन अंतोगत्वा उसे अंधेरा में विलीन होना ही पड़ता है ।

इसलिए उल्लू पर सवार लक्ष्मी की गरिमा भी अनन्तव्यापी है । राजकोख में जन्मे राजा भी तो, उल्लू पर सवार लक्ष्मी के मातृअंक की प्रतीति में हैं । जितने देवी-देवता को चित्रित किया गया है, बगैर आभूषण के उनका चित्रण नहीं है ।

तो लक्ष्मी को उल्लू पर सवार क्यों दिखलाया गया है !

इसकी गहन विवेचना से समझ में आती है, कि मनुष्य-जीवन की जीवनशैली में धन-वैभव की भी आवश्यकता है । कामिनी एवं कंचन का नियोजित सहयोग भी हमें परमानन्द कर सकता है । जिनके स्वरूप में - राम, कृष्ण, गौतम, महावीर को लिया जा सकता है ।

ये सभी अवतरीय पुरुष राजकोख में पैदा लिए एवं चौथे शरीर की चक्रिय गति में उनका जन्म परिधि है । फिर भी धन-सम्पदा की विभूति पाकर भी तृप्ति की भावदशा में उच्च ज्ञानज्ञ की श्रेणी में इस संसार में पूजे गये ।

रोशनी के लिए दीप जलाकर हम फिर बुझा भी सकते हैं । सूर्य अरबों वर्ष बाद नष्ट हो सकता है । लेकिन अंधेरा न कभी मिटा है और न कभी मिटेगा। लाखों सूर्य भी अंधेरा के अन्दर ही सिमटे बैठे हैं । बल्कि बहुत सारे नक्षत्र, ग्रह, सूर्य, उल्का पिण्ड इस अंधेरे की गहनता में सृजित होते है एवं अपनी अरबों वर्ष की कार्यशैली चला बिनष्ट हो जाते हैं ।

गहन अंधकार में भी अगर हम दो चकमक पत्थर को टकरा दें, तो बिजली के साथ रोसनी पैदा हो जाती है । क्योंकि प्राण संचरण के लिए अंधेरा और रोसनी किसी का विशेष महत्व नहीं है ।

प्राण संचरण तो प्राकृतिक गति है एवं उसे अंधेरा और रोसनी से कुछ लेना-देना नहीं है ।

उसी तरह करुणा, मैत्री, मुदिता से जो कामक्षेत्र तक की परिधि है, उससे ऊपर आने पर संत, मनीषी भी प्राकृतिक गति में आ जाते हैं । उन्हें भी किसी के दुख-सुख से कहीं कुछ लेना-देना नहीं रह जाता है । उनके अन्दर से तो करुणा और मैत्री का ऊर्जा प्रवाह मुदिता अवस्था में प्राकृतिक गति से प्रवाहित होती रहती है ।

उस करुणा और मैत्री के प्रवाह में स्नान करने के लिए मेरी प्राणिक ऊर्जा में संचरित प्राण ऊर्जा की अपनी आत्मिक क्षमता चाहिए

चौथे शरीर से ऊपर की गति में कुण्डलिनी जागृत संत तो अपने करूणा, मैत्री का प्रवाह बनाये ही रखते हैं । जरूरत है, हमारे आस्था और विश्वास में उनके प्रवाह को प्राप्त करने की क्षमता ।

ठीक है ! बहुत सारे संत कुण्डलिनी जागृत नहीं भी हो सकते हैं । लेकिन उनके आशीर्वाद देने में उनके किसी भी अचेतन मन के कोने में हमारे कृत्य के प्रति अविश्वास होगा, तो वह आशीर्वाद कभी फलित नही होगा । आशीर्वाद देने में सहजता के साथ आत्म विश्वास की भी परम आवश्यकता है ।

सरस्वती का वाहन हंस दिखलाया गया है । यह भी प्रकृति रूपा देवी के समग्र ज्ञान प्रवाह के प्रतिरूप में है । हंस दूध से, दूध और पानी का तत्व अलग-अलग करके दूध के तत्व का पान कर लेता है एवं पानी छोड़ देता है ।

उसी तरह ज्ञानी इस संसार रूपी अहंकार स्वरूप से काम, क्रोध, लोभ, मोह के तमस् स्वभाव से क्रमशः रजस् और सतज् स्वभाव में दया, प्रेम, करुणा, मैत्री, सहजता को निकाल लेते हैं एवं इस संसार में भी रहकर कीचर में जन्में कमलवत् कीचर और पानी से अलग रह कर, संसार में ज्ञान की दिव्य ज्योति जलाते रहते हैं ।

इस भौतिकवादी संसार में स्थूल जगत से उपलब्ध सारे धन-वैभव, राज्य, राज्य सुख छिने जा सकते हैं । लेकिन ज्ञानज्ञ का ज्ञान नहीं छीना जा सकता है । चूँकि ज्ञान का प्रवाह तो सूक्ष्म शरीर के प्रवाह से, कारण शरीर होते हुए आत्मगति में आगे बढ़ जाती है एवं जन्मों-जन्मों के कर्मबंधन रूपी अमरबेल पर चढ़कर, दूसरे जन्म के ज्ञानज्ञ की सीढ़ी बन जाती है ।

जितने भी अवतारीय पुरुष या कवि, वैज्ञानिक हुए हैं, उनके कई जन्मों की ज्ञान-श्रृंखला ही उनके अगले जन्म के ज्ञानज्ञ होने का कारण बना है। गौतम बुद्ध और महावीर भिक्षा का प्रात्र लेकर भीख माँगते रहे। लेकिन उनके मुख्यमंडल पर कभी भिखारी का भाव नहीं आया । वे तो इस भौतिकवादी सम्राट का पद छोड़कर विश्व के सम्राट स्वरूप शान्ति के अग्रदूत में देखे गये ।

इन भिखारियों ने ज्ञान के अनन्त बिन्दु से अपने को जोड़-आत्मज्ञ, ज्ञानज्ञ का दिव्यस्वरूपा ताज पहन लिया । इस भौतिकवादी संसार का सारा धन-वैभव, कंचन उनके लिए धूल के समान एवं कामिनी, शक्तिरूपा माँ के समान दृष्टिगोचर होने लगा ।

वास्तविकता भी यही है कि मृत्यु तो अटल सत्य है । उसके सामने धन, वैभव, कामिनी, कंचन सब यही पड़े रह जाते हैं । आत्मा के साथ, प्रेतत्व प्राप्त मेरा सूक्ष्म शरीर, मेरे सैकड़ो, हजारों वर्ष के कर्मफल और मेरी ज्ञान से अर्जित विवेक को लेकर ही साथ जाती है एवं अपने ज्ञान और विवेक के विशुद्धता में, अपने अगले जन्म का संस्कारयुक्त जन्म श्रृंखला निर्माण करती है ।

वासना

इस यंत्रबत् शरीर को चलाने के लिए वासना शरीर , जो सूक्ष्म शरीर की ही प्रतिछाया है, पूर्ण ऊर्जास्रोत का उत्तरदायी है। हमारा आरोमंडल काम, क्रोध, लोभ, मोह के व्यात्तिक्रमण का बर्तुत लिए मुखमंडल के चारो ओर परिधिगत विकिरण के स्वरूप में प्रतिभाषित होता रहता है।

वासना शरीर की ही प्रतिक्रिया, बचपन जवानी, बुढ़ापा है।

यूवा में वासना - जाग्रत अवस्था में

बुढ़ापा में - स्वप्नबत वासना भुलकड़ की प्रवृत में

मृत्यु में - सुषुप्ति अवस्था में होती है, लेकिन वासना तो साथ ही जाती है। जो प्रेतयोनि में सूक्ष्म शरीर में स्थिर रहकर नर्क और स्वर्ग भोग का एहसास अपने बीते कर्मबंधन के अनुरूप देती रहती है।

नया जन्म भी सुषुप्ति में होता है। इसलिए अगर मृत्यु होशपूर्वक हो, तो जन्म भी होशपूर्वक होगा एवं उर्ध्वगति से मनुष्ययोनि की गरिमा को पार करते हुए, मेरा ओरामंडल सुनहला उजला का समिक्रण लेकर विश्वस्तरीय हो जायगा।

बटमार

बदनाम रहे बटमार मगर,
घर तो रखवालो ने लूट लिया
मेरी दुल्हन सी रातो को
नौ लाख सितारों ने लूट लिया।

स्वछंद आकाश

तुम तो गुरु का पैर पकड़कर ही बैठ जाते हो ! अपनी कामना और स्वार्थ की भिभिक्षा में उन्हें जला डालना चाहते हो ! गुरु जो करुणा, मैत्री, मुदिता के सागर हैं, अपनी दया और प्रेम को सावन की घटा की तरह उढ़ेल देना चाहते हैं ।

लेकिन तुम्हारे स्वार्थ और अहंकार की भिभिक्षा, क्या तुम्हें उनके ज्ञानगंगा से सरावोर कर पाती हैं ?

तुम तो प्यासे के प्यासे रह जाते हो ! तुम तो उस गुरु के शरीर की उपासना कर रहे हो; जो दस-बीस वर्ष में दुनिया क्या, तुम्हें भी छोड़ जायेंगे ! उनके चित्र को धूप-अगरबत्ती दिखलाते रह जाओगे !

उनके मृत्यु के बाद तो उनकी वाणी, उनके तपोमय जीवन के संस्कार, सब तुम्हारे गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के कम्पन्न से अलग हो जायेगा ! गुरु तो दया और प्रेम तुम पर बर्षाना चाहेंगे ! लेकिन तुम्हारा कम्पन्न क्षेत्र उनसे बिल्कुल अलग हो जाने से, तुम तक उनका पहुँचना असंभव हो जायगा ।

तुम तो अपने शरीर के साथ गुरु के शरीर की साधना की है और वे तो अब रहे नहीं !

गुरु का शरीर भी तो यंत्र ही है एवं शरीर का मृत्यु तो शाश्वत सत्य है । वह तो केवल सूक्ष्म शरीर के, कारण शरीर में रह कर, आत्मा द्वारा संचालित होने वाला एक यंत्र है । वह तो संस्कार जन्य साधनामय जीवन को समाहित कर आत्मा तक पहुँचाने का यंत्रमय साधन है ।

हमें गुरु तक पहुँचने के लिए अपना जीवन भी साधनामय करना होगा ।

जानते हो ?

जब इन्द्र के दरबार में गंदर्भ चित्रसेन के वाद्ययंत्र पर अप्सरा रम्भा का नृत्य चलता होता है तो वाद्य यंत्र तो निर्जिव ही होता है । लेकिन बजाने वाले की अंगुलियाँ ताल पर भावना-सम्प्रेषन का स्वर निकलता है ।

उसी स्वर लहरी पर अपने घुंघरू का ताल और अपना स्वर लहरी मिलाकर, नृत्य की भाव भगिंमा में इन्द्र जो हम हीं हैं !

भावविभोर एवं आत्मविभोर हो पाते हैं ।

बंधुओं

गुरु के सूक्ष्म शरीर से ताल-मेल मिलाने के लिए, तुम्हारा सूक्ष्म शरीर भी प्रज्ञावान एवं साधनावान होना चाहिए । गुरु ने तो अपने तप, अपने प्रेम अपने दया के परिधि को ईश्वरीय कील में समाहित होने के प्रयास में छोटा ही कर लिया है ।

तुम भी जब उनकी ज्ञानगंगा की स्वर लहरी में अपना ताल मिलाना चाहोगे, तो भावलोक के दरबाजे स्वतः खुल जायेगें एवं तुम भी गुरु के आकर्षण का कम्पन्न क्षेत्र पकड़कर, ईश्वरीय कील में समाहित होकर, स्वयं ईश्वरीय भावदशा में आ जाओगे ! तथा ईश्वर ही होकर चिदानन्द और परमानन्द का स्वरूप पकड़ पाओगे !

यह शरीर यंत्र तो है ! लेकिन यह स्थूल शरीर प्रकृति की शक्ति लीला की अद्‌भुत देन है । वर्णित षट्‌चक्र में तीन चक्र, मूलाधार, स्वाधिष्ठान आधा नाभिक्षेत्र तक सूक्ष्म शरीर से जुड़ा, शरीर के नियंत्रण क्षेत्र में ही है ।

नाभिक केन्द्र तो सूर्य के नाभिक की तरह तुम्हारे यंत्रवत शरीर द्वारा पूरे ब्रह्माण्ड को पकड़ कर ऋषिलोक, सिद्धलोक एवं देवलोक को पकड़ते हुए, वैश्वानरलोक या तुम्हारे चौरासी लाख योनि के चक्रवात को पकड़े हुए है !

इसी चक्रवात के परिधि को छोटा करने में गुरु का यंत्रवत शरीर माध्यम तो है ! लेकिन उनके सूक्ष्म शरीर के आकर्षण में आने पर, यह दरबाजा-दया, प्रेम, करुणा के भावलोक के कम्पन्न में आने पर, मूलाधार से खुलेगा ।

बन्धुओं !

मूलाधार का दरबाजा खोलने के लिए चित्रसेन स्वरूपा गंदर्भ तुम हो !

रम्भा जैसी प्रेममयी अप्सरा तुम्हारी पत्नी है! काम-कामेश्वरी की सहज भावदशा तुम्हारे संगीतमय कम्पन्न की ओममय स्वर लहरी मिलाने की भावदशा है एवं भाव विमोहित हो आत्मानन्द हो जाने की दशा तुम्हारे कुण्डलिनी जागरण की ईश्वरीय शक्ति अवतरण की प्रक्रियात्मक भावदशा है ।

जिसका क्रियात्मक स्वरूप ''कुण्डलिनी जागरण द्वारा है गृहस्थी'' में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

इसलिए बन्धुओं !

गुरु की भावदशा में, उनका कृपापात्र होकर अपना साधनामय जीवन करुणा, दया, प्रेम जैसे निर्झर झरना का प्रवाह बन, पा लो, परम उत्कर्ष को !

तोड़ डालो !

सारे कर्मबंधन के नारकीय जीवन की परिधि को !

मनुष्य जीवन की गरीमामय स्वछंद आकाश को छू डालो !

खजुराहो १०५० वाँ स०

सूक्ष्म जगत में शब्दब्रह्म

चित्र संख्या-9

यह चित्रण शब्दावली के कम्पन्न-बैखरी वाणी के आधारशीला पर मध्यमा, पश्यान्ति, परा वाणी के ब्राह्मण्डीय कम्पन्न तरंग के स्वरूप में है । मानव ब्रह्म का ही एक ईकाई है एवं ब्रह्म तक के सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम कम्पन्न की गति इन चारो वाणियों की श्रृंखलागत तरंग की अनन्त परिधि में है ।

पुस्तक में बार-बार चर्चा की गयी है कि अनन्त शब्दकोष केवल इस स्थूल जगत का शब्दकोष है । लेकिन ब्रह्माण्ड की कोई तो परिधि होगी ही !

चित्र में शब्दावली के यांत्रिक स्वरूप में ''लँ'' मूलाधार के चतुषकोणीय चार दल के स्वरूप में है एवं पृथ्वी तत्व के द्योतक में है । नीचे भाग से दो लाल तरंग स्वरूप है । वह ईंगला और पिंगला के चन्द्रस्वर एवं सूर्यस्वर के द्योतक में प्राणवायु के केन्द्रीत गमना-गमन के स्वरूप में है ।

नीचे से एक लाल आभा उर्ध्वगति में दिखलायी गयी है । वह सुषुम्ना के स्वरूप में दिखलायी गयी है । वह सुषुम्ना के स्वरूप में मूलाधार पर कुण्डल मारे बैठे सर्पनी के स्पंदन क्षेत्र से शुरू होने वाले कम्पन्न गति में है एवं तामसिक क्षेत्र के द्योतक में अपान प्राण में लाल रंग से दिखलायी गयी है ।

दूसरा यांत्रिक शब्द ''वँ'' को षटकोण के स्वाधिष्ठान क्षेत्र पर दर्शाया गया है । ''लं'' एवं ''वँ'' को प्रकाश तरंग की परिधिय कम्पन्न गति के अन्दर रहते हुए भी, कुण्डलिनी के उर्ध्वगमन के स्वरूप में उजला आभामय प्रकाश तरंग को दिखलाया गया है । यह क्षेत्र कामक्षेत्र के तरंग का मूल कम्पन्न क्षेत्र है ।

मूलाधार पर अगर सप्तधातु का वर्गीकरण होता है, तो स्वांधिष्ठान पर इस वासनात्मक सांसारिक गति में शक्ति ऊर्जा के निस्तरण की गति है । जो कुण्डलिनी के सुषुम्ना के उर्ध्वगति में हो, ब्रह्मयात्रा के रास्ते पर है एवं काम ऊर्जा के अधोगति एवं उर्ध्वगति का मुख्य कारण है ।

कुण्डलिनी के सर्पनी को साढ़े तीन फेरा में वर्गीकृत किया गया है । जो समुद्र मथन के वासुकी नाग के साढ़े तीन फेरा के प्रतीक में है एवं मंदराचल पर्वत, जो कील के रूप में है, वह मेरूडण्ड से गुजरते सुषुम्ना के प्रतीक में है । और इस शब्दावली ''लं'' और ''वं'' के कम्पन्न गति में सर्पनी के कुण्डल के एक कुण्डल

खुल जाने के प्रतीक में है ।

"रँ" शब्द का टंकार तो नाभिकुण्ड से ऊपर मेरूदण्ड के पोले भाग से गुजरते सुषुम्ना पर सूक्ष्म शरीर के तीसरे चक्रिय केन्द्र पर है एवं इसे दस दलिय, दस कोण पर दिखलाया गया है । यह केन्द्र चतुर्थ आयामी सूर्य केन्द्र के रूप में सूक्ष्म शरीर में विराजमान है एवं यहाँ तक की कुण्डलिनी साधना में थलचर, जलचर एवं नभचर की योनियों से सदा के लिए मुक्ति के तरंगक्षेत्र में है ।

कुण्डलिनी मारे सर्पनी के दूसरा कुण्डल खुलने के स्वरूप में "यँ" के कम्पन्नक्षेत्र तक में मनुष्य का स्वगृह योनिगत स्वरूप है । जो अनाहत तक द्वैतक्षेत्र में है एवं शब्दावली के प्रत्येक प्रयार्यवाची शब्दब्रह्म में है । यहाँ तक सुख-दुःख, स्वर्ग-नर्क की सारी द्वन्द्वात्मक, भावनात्मक एवं कर्मानात्मक परिस्थितियाँ है और व्यालिस लाख की योनिगत परिधि को थामे हुए है ।

चारो वाणियों का कम्पन्न तरंग तो इस मैथुनी जगत में ब्रह्मव्यापी है । हम स्त्री-पुरुष के शारीरिक मैथुन को ही सृष्टि का कारण मानते हैं । लेकिन हमारे दोनो ओठों का मिलन भी एक मैथुनी गति है एवं वगैर मिलन के कम्पन्न पैदा हो नहीं सकती !

कोई भी नक्षत्र-ग्रह या आकाशीय पिण्ड, बगैर मैथुनी गति के जीवन्त स्वरूप में सम्भव है ही नहीं ! यहाँ तक की हमारे बहुत सारे आकाश गंगा भी, जो हमारे अनन्त जगत में क्रियाशील हैं, एक दूसरे का चक्कर काट रहे हैं । जब भी कोई सूक्ष्म से सूक्ष्मतर कम्पन्न होगा तो गति तो आयगी ही ! और गति ही इस स्थूल एवं सूक्ष्म जगत का मैथुनी स्वरूप कायम कर देता है ।

वही सूक्ष्म जगत का स्वरूप हम प्राणीमात्र के मैथुनी जगत का कारण है ।

शंकर के डमरू से चौदह शब्द के निकलने से, ऋषि प्राणिनी द्वारा देवभाषा संस्कृत के व्याकरण का उदभव् बतलाया गया है । यह अभिव्यक्ति चौदह भूवन-तल, वितल, सूतल, उतल, तलातल, रसातल, भूतल; पृथ्वी के अधोगति के एवं मूलाधार बिन्दु के ऊपर से -भू, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः सत्यम् तक में, बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति एवं परा वाणी के कम्पन्न तरंग में वर्णित किया गया है ।

इन्हीं शब्दावली को आधार मानकर, सोलह मात्रिका और बाबन अक्षर का उद्‌भव जान, ब्रह्म के सत्यम् तक के उद्‌घोष में "ॐ" को सप्त आयामी क्षेत्र तक

के कम्पन्न तरंग में ऋषियों ने जाना-समझा । जो कुण्डलिनी के प्रत्येक कुण्डल के खुलने पर शब्दक्रम का एक परिधिय स्वरूप प्राप्त कर लेता है एवं साधक के उन वर्णाक्षर के साधनाक्रम में उसे उन लोको के देवी-देवता के आशीर्वाद स्वरूप में सिद्धियों से भर देता है ।

मणिपूरक एवं अनाहत तक के स्वरूप में सर्पनी स्वरूपा कुण्डलिनी के दो कुण्डल खुल जाने का परिधिय स्वरूप का चित्रण किया गया है । मनुष्य जन्म को इसलिए उत्कृष्ट माना गया है,

चूँकि उसमें प्रकृति के गहनतम् संवेदना स्वरूप में नीचे के सारे कर्मबन्धन जो कामक्षेत्र में हैं, उसको तोड़ने एवं भस्म करने की गति में कुण्डलिनी शक्ति दी गयी है एवं उर्ध्वगमन की स्थिति में चौथे शरीर मनस शरीर से आत्मगति, जो ज्ञान क्षेत्र का कम्पन्न गति है, साधना स्वरूप में दिया गया है । मनुष्य ब्रह्म के एक ईकाई स्वरूप में अनन्त के सत्यम् क्षेत्र तक का अनन्तगामी कम्पन्न पकड़, शब्दब्रह्म के सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम ब्रह्म तरंग पर यात्रा कर सकता है ।

यह आत्मगति, आत्म शक्ति के तीसरे कुण्डल के खुलने पर सम्भव है । जो चित्र में प्रकाश तरंग के रूप में नीचे के दो कुण्डल खुलने से ज्यादा ही प्रकाशवान एवं उच्च तरंग गति में दिखलाया गया है एवं तीसरा कुण्डल खुलने की प्रकाश तरंग गति में है ।

सभी यांत्रिक शब्द को शब्दब्रह्म के स्वरूप में प्रकाशवान सुषुम्ना तरंग गति में दिखलाया गया है । इस तीसरे कुण्डल खुलने की परिधिय गति को "हँ" क्षेत्र के सोलह मांत्रिका में सोलह दलीय कमलदल के चित्रण में दिखलाया गया है । जो कंठक्षेत्र के विशुद्धाय चक्र पर है एवं उदान प्राण के समापन अन्ध बिन्दु पर है ।

यहाँ तक पहुँचे साधक को जन्म-मरण के कर्मबंधन से बिल्कुल मुक्त हो जाने का ईश्वरीय संविधान है । यह केन्द्रक ब्रह्मरंध्र से टपकते अमृत बुन्द को खेचरी मुद्रा के साधना द्वारा विशुद्धाय पर पान कर अमर होने के प्रतीक में है ।

लेकिन क्या !

इस नाशवान शरीर का अमर होना, हम अमरत्व माने ?

नहीं ! विनाश एवं सृजन तो सृष्टि के दो विद्युतीय तरंग, ऋण और धन विद्युत के रूप में ब्रह्मव्यापी है । यहाँ अमरत्व का मतलब है !

इस स्थूल जगत के पृथ्वीभार, जलभार एवं वायुभार के क्रमानुगत योनिय चक्रवात- थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि के आकाशीय तत्व भार से बाहर निकल स्थितिपक्ष हो जाना है ।

आकाशीय पिण्ड एवं नक्षत्र-ग्रह एवं आकाश गंगा में अन्य नक्षत्र ग्रह एवं सौर मंडल भी तो योनिय चक्रवात है एवं करोड़ो, अरबो वर्ष में इनका भी बिनष्टीकरण एवं स्वरूप में, सृजन और सृष्टि का कार्य तो चलता ही रहता है !

हमारे ऋषियों के योनिय चक्रवात को सप्त ऋषि, आकाश में एक पंति एवं समूह में झाड़ की तरह चमकीले तारे के रूप में देखे जा सकते हैं । भक्त ध्रुव को भी आकाश में भोड़ (ब्रह्म मुहुर्त) के समय उत्तर आकाश में अवस्थित चमकीले एवं बड़े नक्षत्र के रूप में देखा जा सकता है ।

हमारे शरीर में ही कोषा, रक्तकण एवं विभिन्न बीमारियों के जीवाणु जन्म लेते, पनपते, मरते रहते हैं । यह भी हमारा योनिय चक्रवात है । कितने जीवाणु केवल चौबिस घंटे में बचपन, जवानी एवं बुढ़ापा का दंश झेलते हुए, अपना बलिदान देकर हमें प्राण ऊर्जा देने- के लिए देते रहते हैं ।

यह चक्रिय योनिगत चक्रवात-लाखों-करोड़ो वर्षो से हम, कभी कीड़ा-मकोड़ा, कभी पेड़-पौधा, कभी जानवर, कभी पंक्षी के रूप में झेलते हुए व्यालिस लाख नीचे की योनि से ऊपर, मनुष्य के स्वगृह में पहुँच चुके हैं ।

जहाँ कुण्डलिनी गति द्वारा इन योनिय चक्रवात को तोड़ने एवं भस्म करने के लिए कुण्डलिनी के तीन कुण्डल तक की साधना व्यवस्था केवल मनुष्य योनि में ही है ! ऊपर की आत्मगति तो शब्दब्रह्म "यँ" क्षेत्र से ही है ! जिसकी व्यापकता हम चित्रित प्रकाश तरंग में देख सकते हैं ।

यहाँ बैखरी वाणी एवं मध्यमा वाणी का कम्पन्न तरंग बिल्कूल पीछे छूटने लगता है । वाणी के द्वारा इस आत्मगति में आये मनिषियों द्वारा, आनन्द की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती ।

चौथे शरीर पर पहुँचे वैद्य लुकमान ने लाखों पेड़-पौधे, जड़ी-बूटी से, केवल उनके सामने ध्यानस्थ होकर ही, उनकी उपयोगिता, उनकी रोगानुकूल मात्रा, उनके दोष, उनके गुण, उनके आयु, उनके मरण-जीवन की पद्धति सब पश्यन्ति एवं परा वाणी के माध्यम से जान लिया ।

वे पेड़-पौधे, जड़ी-बूटी कोई देववाणी-संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, चायनिज या रसियन भाषा तो नहीं जानते थे ! तो फिर अपनी उपयोगिता की संवेदनशील प्रायोगिक प्रारूप, लूकमान तक कैसे पहुँचा पाये ?

वह तो पश्यन्ति एवं परा वाणी का ही कम्पन्न तरंग है, जो ब्रह्मव्यापी है और उनका कम्पन्न आत्म तरंग से आकर्षित एवं विसर्जित होकर, इस समाज को लुकमान ने एक नये आयुर्वेद विज्ञान के सृजन के रूप में मानव जाति को दिया ।

आत्म तरंग की दीर्घ एवं लघु-कम्पन्न तरंग तो हमारे स्थूल शरीर को नियंत्रित करते हुए, सूक्ष्म और कारण शरीर में अवस्थित आत्मा द्वारा ही ब्रह्मव्यापी होकर, स्पंदित हो सकता हैं ।

"हँ" जहाँ कण्ठ पर विशुद्धाय चक्र का क्षेत्र है, वहाँ से हम दो प्रकाश तरंग को ब्रह्मरंध्र के सप्त आयामी "ऊँ" के कम्पन्न तरंग में मिलते देख रहे हैं। सुषुम्ना जो सफेद ज्योति तरंग में उर्ध्वगमन कर ब्रह्मरंध्र के शब्दब्रह्म "ऊँ" पर जा रही है ।

यह द्योतक है, हमारे प्राणवायु का कम्पन्न तरंग प्राण ऊर्जा के कम्पन्न तरंग में बदल जाने का ! यहाँ से इस प्राणवायु के वायुवेग का कोई महत्व नहीं रह जाता है । वह तो प्राणऊर्जा के ऋण एवं धन विद्युत तरंग में ब्रह्मरंध्र पर साम्यरस में आ जाती है ।

हमारी तीन कुण्डल खुलने पर- थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि के सारे योनिय चक्रवात को तोड़ते एवं भस्म करते हुए, हम नियन्ता की श्रेणी में चले आते हैं एवं मेरी वाणी ही परा वाणी का कम्पन्न तरंग पा कर ब्रह्मव्यापी हो जाता है ।

तीन कुण्डल खुलने तक जहाँ तक अनाहत है, कुण्डलिनी की 3,45,000 मील प्रतिसेकेण्ड की दर पर कम्पन्न गति है । जो सूरज के प्रकाश तरंग पर, कम्पन्न बिंदु तक पहुँचने में केवल चार मिनट का समय लेती है ।

इस स्थूल जगत के निर्माण, सृष्टि एवं पालन में इस सूर्यमंडल के सौर मंडल का महत्वपूर्ण स्थान है एवं इसी सौरमंडल के नक्षत्र-ग्रह से हमारा स्थूल और सूक्ष्म शरीर का नियंत्रण का प्राकृतिक व्यापार चलता रहता है । हम अपने कर्मबंधन का प्राकृतिक स्वरूप, सुख-दुख, स्वर्ग-नर्क, जीवन-मरण के रूप में झेलते रहते हैं

जो कुण्डलिनी गति के तीन कुण्डल खुलने तक भस्म हो जाती है एवं हम स्थितिप्रज्ञ होने लगते है । जो स्थितिप्रज्ञ होना ही हमारे आत्मगति का मूलबिन्दु है। आधा कुण्डल जो सर्प के सीधे स्वरूप में दिखलाई गई है, वह आत्मगति के प्रकाश तरंग के कम्पन्न में आ जाने के स्वरूप में है ।

कर्मबंधन के टूटे एवं उसके भार से मुक्त हुए बगैर, ऋषिलोक एवं ब्रह्मलोक की यात्रा सम्भव नहीं है ! सारी सिद्धियों का भार तीन कुण्डल खुलने तक में अनाहत के कम्पन्न क्षेत्र तक है । जहाँ तक बैखरी वाणी एवं मध्यमा वाणी का **न्यूत्राण** कम्पन्न तरंग है । इसके बाद की यात्रा आत्मगति में पश्यति एवं परा वाणी में हो जाती है ।

आत्मगति तो कुण्डलिनी गति के लगभग आधे से कुछ अधिक- 186000 मील प्रति सेकेण्ड है । जो सीधे ब्रह्म की ओर यात्रा की कम्पन्न गति है ।

जो ऋण विद्युत एवं धन विद्युत के अनाहत से ही एकाकार होने की सम्भावना पर, अपने कर्मबंधन का योनिय चक्रवात की गति खोकर, रेणु के नाभिक बिन्दु की तरह, अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप पकड़, हमें विशुद्धाय पर ज्ञान की परम अनुभूति में, चारो वेद की व्याख्या से ऊपर, शिवलोक में पहुँचा देती है । जहाँ दो दल के बीच का कम्पन्न "ऊँ" के परा वाणी में है और षट्आयामी क्षेत्र के कम्पन्नगति में है ।

शिव स्वरूप को मनिषियों ने हमेशा पारिवारिक परिवेश में, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, भैरव एवं वसहा के रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है ।

जो हमारे मानव जाति का ही प्रारूप है एवं हमारी ही उपलब्धियाँ, इस सांसारिक पारिवारिक परिवेश में रहकर भी स्थितिप्रज्ञ हो जाने के संकेत में है । आज्ञा चक्र पर निर्णय लेने की क्षमता जरूर है! जो ज्ञानक्षेत्र में है ।

लेकिन संकल्पशक्ति का फलन बिन्दु नाभिचक्र पर ही है । जो कामक्षेत्र में है एवं हमारी मनुष्य जाति की सारी द्वन्द्वात्मक परिस्थिति में है ।

इन्हीं सिद्धान्तों के सापेक्ष में यह "कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी" पुस्तक लिखी गयी है । जहाँ सारी सिद्धियों की कामना छोड़ते हुए, सारे कर्मबंधन को तोड़ते हुए, अवर्चनीय आनन्दसागर में डुबकी लगा कर, ब्रह्मस्वरूपा हो जाने एवं स्थितिप्रज्ञ हो जाने के स्वरूप में है ।

जो पुस्तक अथक परिश्रम से तीन साल में लिख पाया हूँ ! वह ऋषि, मनिषि ध्यानस्थ होते ही, केवल तीन क्षण में इसके ज्ञान गरिमा को प्राप्त करते हुए, अगम-अथाह, ज्ञान के सागर में डूबकी लगा लेते हैं ।

मूलाधार पर केवल कुण्डलिनी के जागरण से कोई विशेष उपलब्धि नहीं है । जब तक एक कुण्डल के खुलने तक स्वाधिष्ठान की परिधि कायम नहीं हो जाती ! तब तक साधक को काफी शारीरिक एवं मानसिक कष्ट का सामना करना पड़ता है ।

एक कुण्डल की परिधि समाप्त होते ही साधक में अवर्चनीय चारित्रिक एवं अध्यात्मिक सुगन्ध की सुवास का स्पंदन सामने दिखने लगता है एवं साधक कुछ अलग-थलग व्यक्तित्व में महसूस होने लगता है । साधक को स्वयं नहीं महसूस होता है कि उसका मानसिक आयाम, गुरूत्वाकर्षण एवं सोचने का दृष्टिकोण बदल चुका है ।

बल्कि उनके परिवारजन एवं सानिध्य में रहनेवाले परिजन, मित्र वगैरह महसूस करने लगते हैं, कि साधक का व्यक्तित्व बदल गया है ।

कुण्डलिनी जागृत लोग छल-प्रपंच, ईर्ष्या-द्वेष के माहौल में अपने आप को सामंजस्य में नहीं रख पाते हैं । लोग उन्हें जिद्दी समझने लगते हैं ।

चूंकि साधक का संकल्पबल बहुत दृढ़ होने लगता है । वह चुपचाप केवल अपने संकल्प में आये चारित्रिक एवं अध्यात्मिक गठन को ज्यादा महत्व देने लगता है ।

प्रथम कुण्डल खुलते ही उसके आर्शिवाद में बल चला आता है एवं अचेतन में दिये गये भावनात्मक आशीर्वाद भी फलित होने लगता है । चूँकि वह सूक्ष्म शरीर की व्यवस्था से दिया गया आशीर्वाद होता है ।

दूसरा कुण्डल खुलते ही, जो अनाहत तक क्षेत्र घेरे हुए है; साधक में अनुपम ज्ञान, शौर, वीरता, भक्ति, प्रेम, आस्था एवं करूणा, मेत्रैय भाव का उदय हो जाता है । साधक में प्राणमोह नहीं रह जाता है एवं साधक एक अलग इतिहास की रूपरेखा संसार के सामने प्रस्तुत कर पाता है । उसके मुंह से अचेतन में निकली वाणी भी आर्शीवाद एवं श्राप के रूप में फलित होने लगता है ।

तीसरा कुण्डल खुलते-खुलते सारे कर्मबंधन के भस्म हो जाने से असत्य, द्वेष, घृणा, मांन-अपमान का सारा मायावी संसार पीछे छूट जाता है एवं साधक-कल्पना एवं स्वप्न में भी सत्य में जीने लगता है । वह अगर स्वप्न भी देखता है, तो सत्यार्थी की तरह एवं स्थितिप्रज्ञ की स्थिति में, चौथा आधा कुण्डल के खुलते ही आत्मदर्शी एवं ब्रह्मदर्शी की श्रेणी में चला आता है ।

गौतम और महावीर तो चालिस वर्ष में ही ज्ञान को प्राप्त हो गये । लेकिन उनकी उम्र चली अस्सी वर्ष तक । चूंकि शरीर तो पिछले जन्म की गति में जहाँतक प्राण ऊर्जा प्राप्त किया है वहाँ तक चलेगी।

लेकिन सूक्ष्म शरीर तो ज्ञान क्षेत्र में प्रवेश के बाद ही, अपना सूर्यमंडल का चतुर्थ आयामी क्षेत्र खो देगी! सूक्ष्म शरीर तो आत्मा का कारण शरीर लिए ब्रह्मव्यापी है एवं उसकी यात्रा तो समाधि प्राप्त कर लेने के बाद भी, दिव्यराज्य के उद्‌गित अमरत्व ज्योति प्रकाश तक की सूक्ष्मतम कम्पन्न तरंग पर जारी रहेगा!

इसलिए भगवान महावीर को बाहरी बस्त्र का आवरण तो असार लगा ही! बल्कि स्थूल शरीर भी असार लगने लगा। उन्होंने वस्त्र गिराये नहीं ! वह तो असारता के निर्विचार समाधि में बिलकूल गिर गये एवं स्थूल शरीर के रहने या न रहने से उनका कोई प्रयोजन नहीं रह गया।

जैसे निर्जिव घड़ी में चाभी की ऊर्जा जहाँ तक है, प्राणऊर्जा वहाँ तक चलेगी।

उसी तरह पुर्वजन्म के संस्कारो के अनुरूप, दैनिक सिद्धान्त में शरीर वहाँ तक चली! जहाँ तक प्राण ऊर्जा की ग्राहकता इस स्थूल शरीर को प्राप्त थे !

चित्र संख्या- 9

चित्र संख्या-10

चित्र संख्या-11

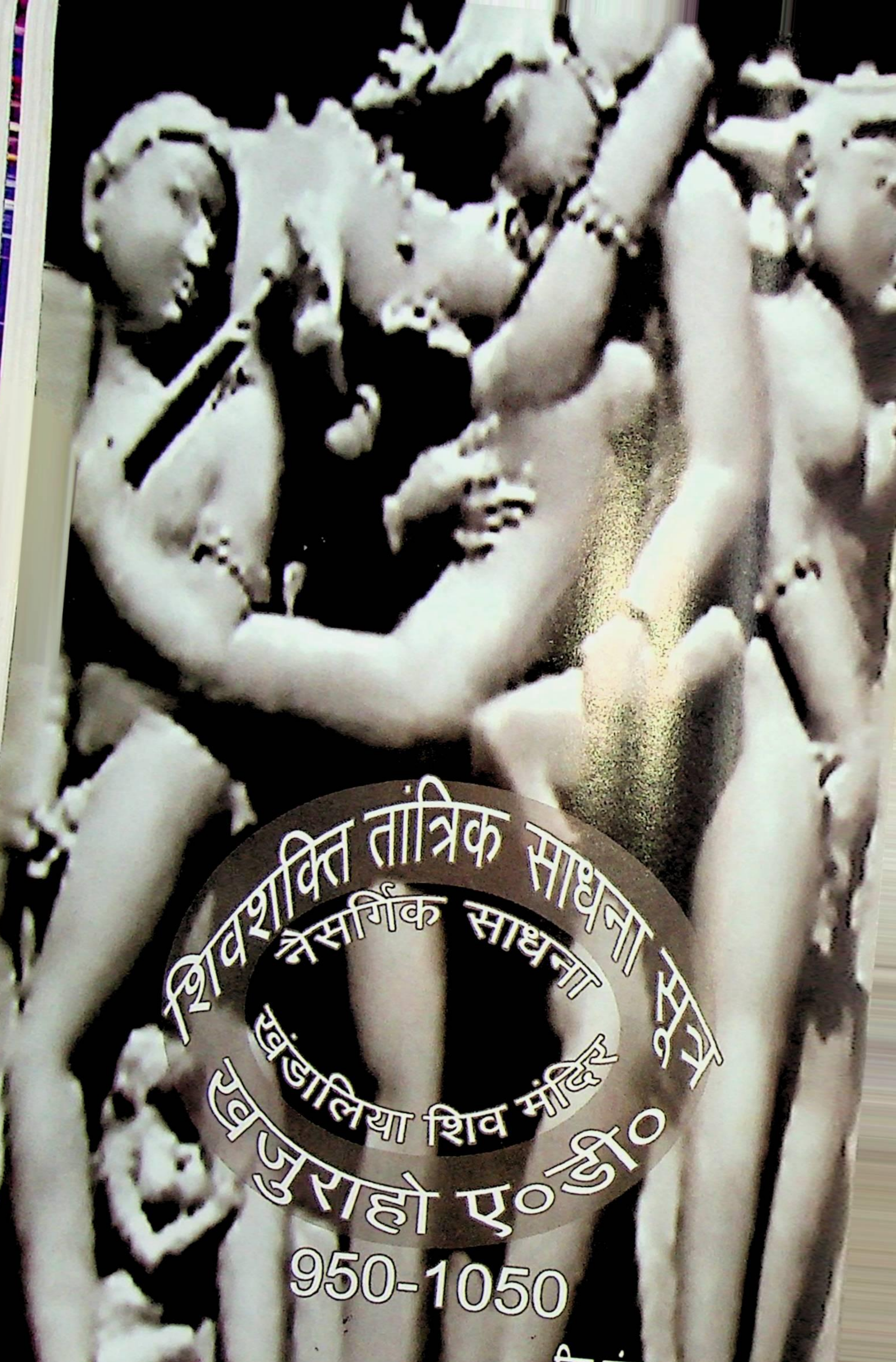

चित्र संख्या- 12

षोडशी विद्या

चित्रा संख्या-10

चित्र में ''ऊँ'' दर्शन को, मैथुनी जगत से पार जाने के सैद्धान्तिक प्रारूप में दर्शाया गया है ।

प्रथमतः जो परिधिगत बिन्दु के अन्दर ''ऊँ'' दर्शन की व्याख्या का प्रयत्न है । यह राजस्थान के चित्रित चित्रकारिता । A.D. 1900 शा० से लिया गया है एवं बीच का ''ऊँ'' जैनधर्म के स्वावलम्बी आत्मदर्शी तीर्थंकरों की अभिव्यक्ति में दर्शायी गयी है । चित्र में सभी बाबन शब्दावली को मंत्रशक्ति से विभूषित किया जा सकता है, जब उसपर शिव का टंकार बिन्दु अनुस्वार पड़ा हो !

मैथुन से ही मिथुन का नाश हो सकता है एवं हम अर्द्धनारीश्वर हो स्थितिप्रज्ञ हो सकते हैं ! दस महाविद्या में किसी भी देवी की अराधना कर रहे हों! शिव टंकार के बिना ब्रह्म के लोको में हमारी शब्दावली की टंकार नहीं जा सकती ।

कुछ मंत्रों का उच्चारण शैली चित्र में दिखलाया गया है । जो ''ऊँ'' के उच्चारण शैली, **अ**-तमस्‌भाव **उ** रजस्‌भाव **म** सतज्‌भाव में है । सभी मंत्रो में तीन ब्रह्मण्डीय कम्पन के अन्त में सतज् भाव का **'म'** का कम्पन्न का शब्दटंकार तो है ही !

तीनों कम्पन्न का मैथुनी चक्र प्रतिपादित हो; शिवटंकार, अव्यक्त रूप के अनुस्वार बिन्दु में समा जाता है । सभी देवीयों का किसी ना किसी रूप में मैथुनी जगत से सम्बन्ध है ।

हम शारीरिक मैथुन को ही संसार माने बैठे हैं ! लेकिन शब्दटंकार मैथुन तो सूक्ष्म जगत की अनन्त ब्रह्माण्डीय भावदशा है । पूरा ब्रह्माण्डीय जगत कील की परिधि में घूम कर, मैथुनी चक्रवात पैदा किये हुए है । व्यासदेव ने चच्क्षु मैथुन से धृतराष्ट्र, पाण्डव एवं विदूर का गर्भाधन करबा दिया ।

अतः हमें अपने शब्दबोध को भी शब्दभेद से ऊपर एकाकार बिन्दु के अनुस्वार में समा देना होगा एवं अपने परिवारिक परिवेश में भी लक्ष्मी-विष्णु एवं शिव-पार्वती की परिधि पार करनी पड़ेगी !

प्रणवाक्षर ओंकार में अ+उ+म = ''ऊँ'' में सृष्टि के संचालक, तीनो देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अभिव्यक्ति मानी गयी है ।

तीनों देवता का निराकार ब्रह्म आदिशक्ति में समादिष्ट होने के भाव को अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप दिया गया है। इन्हीं सिद्धांतो को पुस्तक में समझाने का प्रयास किया गया है ।

"ऊँ" में सप्तआयामी कम्पन्न होने से दिव्यराज्य तक का व्योम पार कर जाने की क्षमता है । लेकिन मनुष्य तन में हम बैखरी वाणी में हैं एवं मनुष्य का स्वगृह-मनोमय शरीर, अनाहत तक है । जहाँ तक नर-नारी का भेद है एवं काम-कामेश्वरी की लीला सक्रिय है एवं ब्रह्मचर्य ब्रत का भी महत्त्व है ।

अनाहत पर तो यही "ऊँ" का शब्दटंकार चतुर्थ आयामी क्षेत्र में प्रवेश के बाद बैखरी और मध्यमा का शब्दटंकार खो देता है ।

मनुष्य योनि में अनाहत केन्द्र पर अर्द्धनारीश्वर हो जाने के स्व्रूप में अनाम "ऊँ" पर बिन्दु होकर, निःशब्द के नाभिकेन्द्रक (न्यूक्युलियर) की तरह, निष्क्रिय बिन्दु में समा जाता है। हमारी प्राण ऊर्जा की लौ अकम्प आत्मस्वरूपा हो कर आगे ब्रह्म की यात्रा कर पाता है ।

चूँकि हम "ऊँ" का शब्द नाद एवं चित्रित व्यवस्था की साधना करते हैं । इसलिए चौथे शरीर तक में "ऊँ" की उपलब्धि का भ्रम पैदा होने से, ऊपर की अनन्त यात्रा रूक जाने की सम्भावना रहती है ।

लेकिन चौथे शरीर तक पहुँचाने में, साधना के कई जन्म लग सकते हैं एवं "ऊँ" के जैसा शक्तिशाली शब्दब्रह्म इस सृष्टि में नहीं है !

जिस तरह आत्मस्वरूपा होने के लिए इस स्थूल शरीर का ही उपयोग कर, हम सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर से आत्मगति में पहुँच पा सकते हैं ।

उसी तरह शब्दब्रह्म में "ऊँ" के बैखरी और मध्यमा वाणी के टंकार में ही हम अपनी साधना कर, सूर्य के चतुर्थ आयामी क्षेत्र के - देवलोक, सिद्धलोक, ऋषिलोक की परिधि तोड़ते हुए, परमब्रह्म के सप्तआयामी क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं । जहाँ ब्रह्म की शून्यगति है ।

अतः पुस्तक में काम-कामेश्वरी की लीला तंत्र एवं "ऊँ" के ब्रह्मनाद को मंत्र के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

ऊँ

प्रणवबिन्दु प्रणवाक्षर

अ	=	निर्माण
उ	=	व्यक्ति
म	=	अनुसुच्यता (जूड़ना)
अर्द्ध चन्द्र	=	परम शून्यता की प्रतीति
बिन्दु	=	ज्योति में ज्योति का एकाकार होना, आत्मा की विलिनता परमात्मा में

मंत्र		तंत्र	
(अ)	क्या है?	(अ)	कैसे हो? तंत्र यानि ! प्राप्ति
(ब)	तार्किक प्रश्न !	(ब)	क्या उपलब्धि है !
(स)	मन का मंत्र धोखा !	(स)	सूत्रो में प्रवृष्टि !
(य)	मन का बिस्तार !	(य)	क्रिया की वास्तविकता !
(र)	मंत्र कल्पना !	(र)	तंत्र क्या है? तन का विस्तार

तंत्र एवं मंत्र दोनो के मैथुनी चक्र के प्रणव बिन्दु पर ही समष्टि से व्यष्टि की ब्रह्म यात्रा है ।

ऊँ

ऊँ कोई वाचक शब्द नहीं है। यह तो सामवेद् का ध्वनी तरंग है। हमारे ऋषियों ने इसे शब्दरूप में बाँधने का प्रयास किया है। लेकिन अगर पूर्ण 'ऊँ' ध्वनि शब्दों में बंधी होती, तो ऋषिगण चौबिस स्पंदन क्षेत्र तक ही नहीं रुक जाते। जबकि 'ऊँ' की छत्तीस फ्रिक्वेन्शी हैं, जो चौसठ लोकों से जुड़ी है। मानवतन की व्यवस्था भी चौबिस तत्व तक है।

ऊँ ब्रह्म स्वरूपा

चित्र संख्या–11

ऊँ की मात्रा

अ + ऊ + म

मैं + वह + तू

सत - चित्-आनन्द - सचिदानन्द

ब्राह्मण - वेद - यज्ञ

(क) सत्- जब **'ऊँ'** की ध्वनि भीतर गूंजती है तो मैं हूँ से **'मैं'** हट जाता है तो **'हूँ'** बचेगा यह हूँ भाव-'सत्भाव' है।

(ख) चित - जब आन्तरिक मुर्छा टूटेगी तो परमचैतन्य से भरने पर आत्मा की लौ अकम्प हो जायगी, तो चित की स्थिति बनेगी।

(ग) आनन्द - चिर आनन्द की वर्षा

ब्राह्मण जाति से यहाँ मतलब जिसने ब्रहम को जान लिया, अनाहत ध्वनि सुनने लगा।

जीवन ऊँ से शुरू होती है और ऊँ में ही मृत्यू लेकर समाप्त होती है। ऊँ के उच्चारण में भी फर्क आने से साधक की साधना में बहुत फर्क आता है।

जितनी देर **तक ऊँ का उच्चारण करते हैं, उतनी देर तक 'म' का उच्चारण** करें, तो ऊँ इसकी साम्यावस्था हो जाती है।

शंख से अगर **ऊँ** का उच्चारण साम्यावस्था में किया जाय, तो देवलोक तक ध्वनि जाती है एवं देवतागण अत्यधिक प्रसन्न होते हैं।

ऊँ का उच्चारण सात्विक, राजस् एवंम् तमस् रूप में करने की अलग-अलग विधि है। नाभि चक्र तक तमस् भाग है। अतः वहां से निकलने के लिए साधक तमस् ऊँ का भी प्रयोग करते हैं।

ऊँ शब्द सप्त आयामी समझ में आती है। ऊँ के चित्र की व्याख्या सात रूपों में की जा सकती हैं ।

ऊँ की 34 फ्रिक्वेशी (कम्पन) 64 लोकों में है। हमारे ऋषि, मुनि **24** से ऊपर नहीं जा पाये **12** फ्रिक्वेंशी सूर्य के पार दिव्यराज में समझ में आती है। जो निर्वाण की स्थिति से ऊपर है। सामवेद ऊँ के आधार पर ही शाब्दिक वेद है।

ऊँ का मैथुनी ग्राफ

नाद	+	बिन्दु = योगतंत्र
ध्वनि तरंग		प्रकाश तरंग 1,86000 मील प्रति सेकेंड
स्टेटिक इर्णजी (स्थिर उर्जा)	+	गतिशील ऊर्जा
शिव		शक्ति = ब्रह्मशक्ति
नमः ध्वनी (परमेशान्त) (परमात्म)	शिव संकल्प महाकाल	नारी तत्त्व
		परमेश्वरी
ईथर 186000 मील (प्रतिसेकेंड)	चित तत्व	न्यूत्रान 345000 मील प्रति सेकेंड कुण्डलिनी की गति
	ऊँ प्रणव का मैथुनी चक्र	
इलेक्ट्रॉन (–) ऋण	न्यूट्रॉन विद्युत विहिन	प्रोटॉन धन (+)
पावर	फोर्स	इनर्जी
महासरस्वती	महालक्ष्मी	महाकाली
वाक् शक्ति	प्राण शक्ति	मनःशक्ति

अ + ऊ + म = ऊँ

नाभि चक्र चतुर्थआयामी सूर्य मंडल के सौर जगत का कील है एवं अनाहत ब्रह्माण्ड के अनन्त आकाश के ऊँ के सप्त आयामी परिधि का कील है । अनाहत के अनन्त आकाश में बिशुद्धाय पर हम मनुष्य में अगम अथाह ज्ञान भंडार का केन्द्र है। तो क्यों हम बेदो पुराणो में बन्धे परे हैं ? वो तो अतीत के व्यवस्था के अनुरूप अतित की उँचाई है। वर्त्तमान तो मेरा बह्माण्डीय ऊँ का आकाश है! और निशब्ध से निर्वाण में जाकर कैवल्य तक प्राप्त करने का रास्ता है।

कुण्डलिनी शक्ति में ऊँ का आकाश

पुरूष तत्व पूर्ण रूप से ऋण विद्युत है एवं नारी पूर्ण रूप से धन विद्युत है।

लेकिन कहीं भी विद्युत ऋण और धन साम्यावस्था से अलग नहीं होते। इसलिए प्राकृतिक रूप से पुरूष के मूलाधार पर धन विद्युत की प्रबलता रहती है। जो कामुकता का केन्द्र है एवं नारी में ऋण विद्युत की प्रबलता है।

लेकिन कुण्डलिनी शक्ति नारीतत्व है और इसकी गति 345000 मील प्रति सेकेण्ड है। जो आत्मगति से 186000 मील प्रति सेकेण्ड से काफी ऊँची हो जाती है।

मध्यप्रदेश में रेत बालू वाले नदी के किनारे एक तरह का सर्प होता है। उसका मनुष्य में जहर डालने का तरीका कुछ अलग है। वह बालू के रेत की बिल में रहता है। लेकिन रात में घर में घुसकर सोये मनुष्य से दूर फनलगाकर बैठ जाता है एवं मनुष्य के सांस में सांस मिलाकर, मनुष्य में सांस द्वारा ही जहर डाल देता है। मनुष्य जहर के कारण नीला होकर मर जाता है।

लेकिन नदी से घर के अन्दर प्रवेश करने में रास्ते मे कोई अवरोध नहीं रहने देता है। इस साँप से बचने के लिए लोग खिड़की दरवाजा में दो धारी तलवार की तरह रौड का प्रयोग करते है। जिसको हटाने के प्रयत्न में साँप लहू लूहान होकर मर जाता है।

ठीक उसी साँप के साँस मिलाने की तरह जब हम ऊँ ध्वनि की लय को अपने सूक्ष्म शरीर के उठते केन्द्रों के लय से मिला लेते हैं, तो साधक की सिद्धियाँ उन केन्द्रों पर सिद्ध हो जाती है।

ऊँ ध्वनि मंत्र को साधारण रूप में हम इस तरह ले सकते हैं। हमारे यहाँ बिजली की 220 भोल्ट, 440 भोल्ट, 33000 भोल्ट, 133000 भोल्ट बिजली प्रवाहित होने के वायर लगे हैं।

तो छोटे-मोटे मंत्र को 220 भोल्ट से 33000 भोल्ट तक का माने। और जब ऊँ शब्द में ही 1,33000 भोल्ट की उच्चतम क्षमता विद्यमान है। जिसका ताप ही हम सम्भाल लें, तो छोटी-छोटी सिद्धियों में क्यों अपने आप को भटकाकर इस संसार के वृतियों में बाँधे !

राम-राम भी बोलते हैं, तो तुरंत-तुरंत गैप आता है लेकिन ॐ के ध्वनि में तो तुरंत गैप आता ही नहीं है। ध्यानावस्था में तो गैप आता ही नहीं है !

हम प्रार्थना कर रहे होते हैं, तो कुछ माँग रहे होते हैं। जब हम ध्यान की स्थिति में होते हैं, तो हम स्वयं के साथ कुछ कर रहे होते हैं। जब ध्यान सधती है, तो दया और प्रेम ही करुणा का रूप ले लेती है।

योग की भावदशा

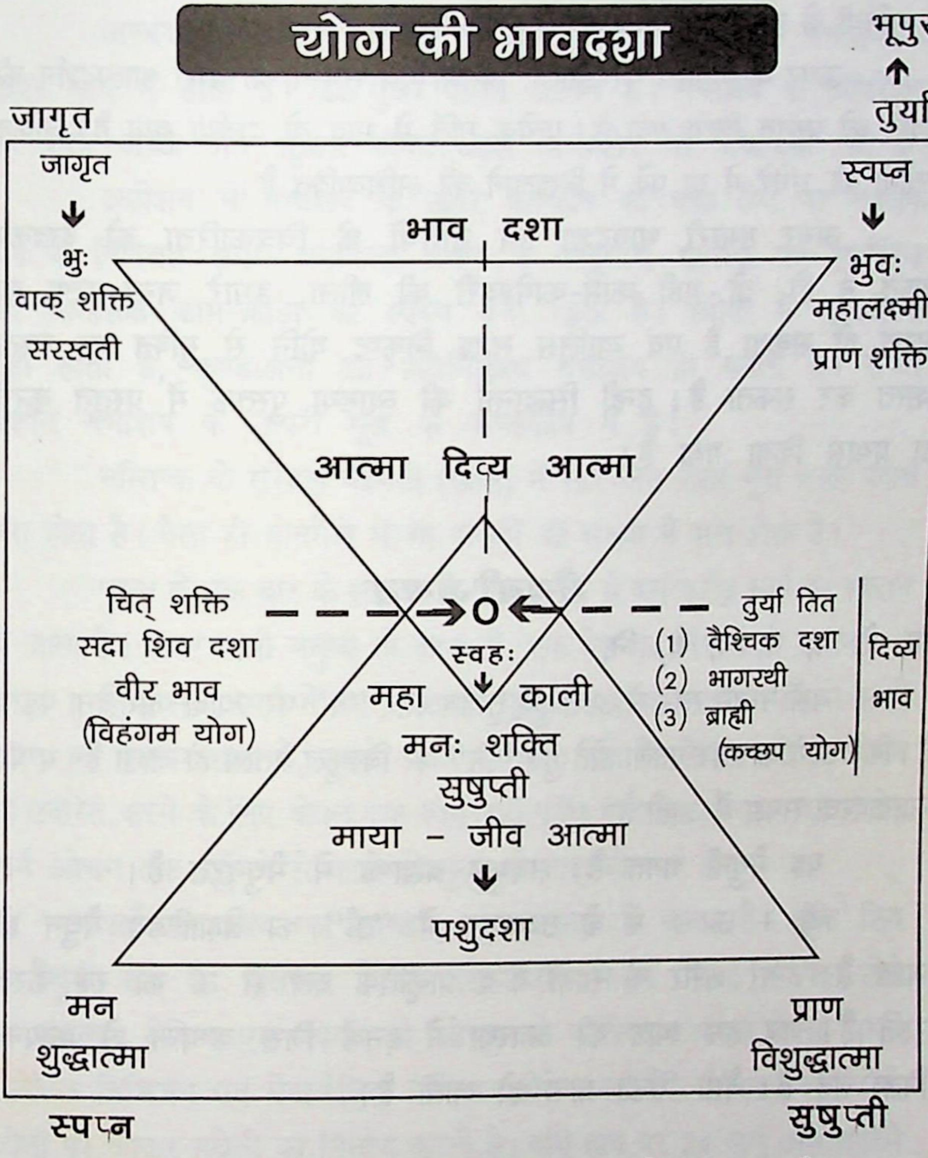

अ + उ + म = ॐ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय पिण्ड और मनुष्य में व्याप्त

शिवशक्ति तांत्रिक साधना सूत्र

(<u>चित्र संख्या 12</u>)

यह चित्र प्राचीनकाल लगभग एक हजार वर्ष पहले के तांत्रिक साधना की भावदशा को दर्शाती है। खजुराहो के खंडालिया का शिव मंदिर एवं लक्ष्मण मंदिर में, इसको तंत्र के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक रूप में दर्शाया गया है। मंदिर के गर्भगृह एवं नीचे के दिवालों पर शिव और शक्ति के रूपमें तांत्रिक साधना का प्रारूप, लगभग सौ मूर्तियों के द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है।

ऊपर के दिवालों पर ईंगला, पिंगला एवं सुषुम्ना के द्वारा आत्मदर्शन की पद्धति को प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक मुर्ति में भाव तो दर्शाया गया है। लेकिन गुप्तांगों को अंधेरे में या पर्दे में दिखलाने की अभिव्यक्ति है।

अगर हमारी भावदशा इन मुर्तियों के चित्रकारिता को देखकर विकृत न हो, तो यही काम-कामेश्वरी की लीला, हमारे जन्म-मरण का कारण हो सकता है एवं व्यालिस लाख निकृष्ट योनि से मुक्ति का रास्ता प्रशस्त कर सकता है। इन्हीं सिद्धान्तों की व्याख्या पुस्तक में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मैथुनी जगत

सा, रे, ग, म, प, ध, नि,

यहाँ मध्यम स्तर से उठते हुए तृतीय स्तर ''ग'' पर ज्यादा जोर देना पड़ता है। फिर आगे का स्वर पतला होते हुए ''नि'' पर बिल्कुल पतला हो जाता है। म पर साम्यावस्था समझ में आती है।

यह मैथुनी जगत है। सबकुछ ब्रह्माण्ड में मैथुनरत है।

अ + ऊ + म के उच्चारण में ''ऊँ'' का ब्रह्माण्डिय मैथुन हो जाता है। हमारे शरीर के सातो केन्द्र प्राकृतिक रूप से ऊँ का रब करते रहते हैं। जब हम ध्यान की अवस्था में इनके जिस कम्पन्न से कम्पन्न मिला लेते हैं। वैसी सिद्धी प्राप्त हो जाती है।

नारीत्व की पूर्णता

नारीत्व पुरूष तत्व से ज्यादा पूर्ण है। इसको इस तरह समझें।

जब हम मैथुनरत होते समय कामुकता से भर जाते हैं, तो हमारे बोनमैरो एवं अन्डकोष में समुद्र मथन जैसा मथन होने लगता है एवं कुछ ही मिनटों में सात करोड़ से दस करोड़ स्पर्म का स्खलन हो जाता है। ये स्पर्म प्रोटेस्ट ग्लैण्ड के बगल में पैदा होकर जमा हो जाते हैं।

अण्डकोष पुरूष के इन्द्रीय के नीचे होता है। स्त्री में गर्भाशय के ऊपर भाग में होता है। जो मुख्य सेक्स आर्गन है। गर्भाशय के ऑपरेशन के समय अच्छे और कुशल डॉक्टर इस अन्डकोष को बचा भी लेते हैं।

आप्रेशन में गर्भाशय के ऊपर अण्कोष को बचा लेने पर मासिक धर्म के निश्चित समय चन्द्रकला भ्रमण के अनुसार, मासिक एवं शारीरिक एवं मानसिक काम-क्रीड़ा का स्पंदन बना रहता है। स्त्रीयों में कुण्डलिनी नही होती है, कुण्डलिनी का प्रतिनिधित्व गर्भाशय ही करती है। सेक्स आर्गेन गर्भाशय के ऊपरी मूल के अण्डकोष में है।

मस्तिष्क के सेरेब्रल कैभिटी (खोल) में सेरिबेलम जैसा भूरा तरल पदार्थ भरा होता है। वैसा ही बोनमैरो में भी करोड़ों की संख्या में भरा होता है।

पुरूष के एक बार के स्खलन में सात करोड़ से दस करोड़ स्पर्म का स्खलन हो जाता है। अगर सभी मनुष्य हो जाय तो, एक देश का निर्माण हो जायगा।

चूंकि सभी स्पर्म में हम या हमारे पुर्वजों के संस्कार और स्पर्म के अपने आत्मा का संस्कार होता है, उनके अपने कर्मबंधन होते हैं। लेकिन स्त्री के ओभम को उर्वरित करने के लिए केवल एक स्पर्म वहाँ पहुँच पाता है। और वह दस करोड़ स्पर्म ओभम तक पहुँचने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

यहाँ पर शिव का ताण्डव, नृत्य समझ में आता है। चूंकि शिव के मैथुनी रूप का प्रतिफल है, ये दस करोड़ मानव आत्मा के पैदा होने का संकल्प। लेकिन एक स्पर्म जब ओभम को फर्टिलाइज करता है तो उसमें क्रोमेटिक डिभिजन एवं मेटाबोलिक डिभिजन होने लगता है। सर्वप्रथम अणु दोनो हथेली पर जाकर हथेली का निर्माण करती है। बांये हाथ पर 24 अणु और दाहिने हाथ पर 23 अणु होने पर पुरूष संस्कार के बच्चे का निर्माण होने लगता है।

लेकिन दोनों हाथों पर 24–24 अणु के निर्माण में कन्या संस्कार के बच्चे का निर्माण होने लगता है।

यहीं बुनियादी जन्म की प्रक्रिया से स्त्री और पुरूष का भेद होने लगता है। गर्भ से ही दोनों के कम्पन्न अलग-अलग हो जाते हैं। आजकल डॉक्टर यंत्र द्वारा इन्हीं कम्पन्न के आधार पर गर्भ के अन्दर ही कन्या या बालक होने की सम्भावना बता देते हैं। अच्छे वैद्य तो गर्भिणी की नाड़ी की गति देखकर भी बच्चों के लिंग का वर्गीकरण कर देते हैं। वैसे मासिक धर्म में दिन गिनती से भी नर या मादा का आभास मिल जाता है।

लेकिन यही मासिक धर्म की प्रक्रिया स्त्रियों की मुक्ति में बाधक है। इन चार दिनों में डिम्भ के फटने से इनके सेक्स के ग्लैन्ड में कामुकता की ज्यादा प्रधानता हो जाती है, जो प्राकृतिक हैं। इनकी कामुकता का प्रतिबिम्ब ओरामंडल में स्पष्ट ऋषिगण देख लेते हैं।

यह ओभम शरीर के गन्दे खून से बना होता है। इसलिए कामुकता भी वासनात्मक ही रहती है।

दूसरा कारण है स्त्रियों की मुक्ति में बाधक, कि बच्चा जनने के कारण इनका नाभि केन्द्र कमजोर होने के कारण स्त्रियां प्राय तुरंत ही भयभीत हो जाती है। जबकि नाभि केन्द्र ही संकल्पशक्ति का केन्द्र है।

हम व्यवहारिक जीवन में देखते हैं, कि थोड़ा भी कष्ट का अनुभव होने पर, वे मूर्ति में स्थापित भगवान का आसरा ले लेती हैं। तीसरा कारण उनका आज्ञाचक्र का कमजोर होना। प्रकृति प्रदत्त कारणों से स्त्रियों का आज्ञाचक्र कमजोर होता है। इसलिए उनका मानसिक संतुलन बहुत कमजोर होता है। मानसिक संतुलन कमजोर होने के कारण पुरूष दो चार स्त्रीयों को शादी करके रख सकता है।

प्राय स्त्रियों में इसी कमजोरी के कारण उनमें धन, वैभव, सोना, श्रृंगार में ज्यादा अभिरूचि होती है। जिसका लाभ उठाकर पुरूष उन्हें परतंत्र किये रहते हैं।

स्त्रियों के निम्नांकित केन्द्र ज्यादा सक्रिय होते हैं–

१. कामकेन्द्र - यानी - भौतिक शरीर (मूलाधार स्वाधिष्ठान)

२. हृदय केन्द्र - मानस शरीरचौथा शरीर

३. एवं चित - निर्वाण शरीर सातवां शरीर

ताकतवर होता हैं। इन तीनो केन्द्रों पर नारीतत्व में ज्यादा ऊर्जा का प्रवाह है।

चौथा शरीर अनाहत हृदय केन्द्र है, जो प्रेम और आस्था का सागर लिए शरीर के अन्दर बैठा है। चित की स्थिति क्षीरसागर है, जहाँ शान्ति ही शान्ति हैं।

इसलिए स्त्रियां प्रेम में ज्यादा आस्थावान हो पाती है। इनकी मुक्ति का रास्ता प्रेम में है। और प्रेम में दो का होना अनिवार्य है। जहां दो होगा वहां बंधन तो है ही ! लेकिन यह बंधन सच्चिदानन्द स्वरूप है।

ऋषि भी जब छठे केन्द्र पर आ जाते हैं, तो आत्मविभोर सच्चिदानन्द स्वरूप होकर उससे ऊपर निर्माण में नहीं जाना चाहते।

बच्चे से ममता दिखाई जा सकती है। मां का स्नेह प्राप्त किया जा सकता है। शत्रु से घृणा दिखाई जा सकती है। लेकिन पति से प्रेम ही दिखाया जा सकता है। जो आस्थावान पत्नी को ब्रह्मस्वरूपा देवी के रूप में स्थापित कर सकती है।

हमारे पुरातन इतिहास में ज्यादा से ज्यादा सतियों का होना इसका प्रमाण है। स्त्रियों का कामकेन्द्र, हृदयकेन्द्र और चित्केन्द्र ज्यादा सबल होता हैं। कामकेन्द्र और चितकेन्द्र जब मध्य के हृदयकेन्द्र पर केन्द्रित होती है, तो मीरा और राधा पैदा ले लेती है।

स्त्री का प्रेमप्रवाह अगर बलबती है या कामुकता प्रबल है, तो दोनों स्थिति में ऋण विद्युत बहुत प्रबल बनेगी। कुण्डलिनी जागरण में उठेगी दोनों ऊपर ही ! लेकिन प्रेम ईश्वर की ओर ले जायगी, कामुकता पृथ्वीतत्व से जुड़ी उपलब्धी देगी। लेकिन अशान्ति पैदा करने वाले अगले जन्म होंगे।

काम कामेश्वरी तो प्रकृति संचालन के लिए प्रकृतिक सिद्धान्त है।

समुद्र तल का मध्य जितनी गहराई में होती है, उतना नीचे उसका मध्य बिन्दु शक्तिशाली होता है। उसी तरह काम कामेश्वरी का दोनो छोड़ जितना लम्बा होगा, दोनों का मिलन भी उतना ही विशमयकारी और शक्तिशाली होगा। मध्य में आने से ध्यान उतना ही सध सकता है। काम से लड़ने वाले लोग तो लड़ाई में ही अपनी ऊर्जा गवां बैठते हैं। स्त्रियाँ अन्तर्मुखी होती है। पुरूष बहिर्मुखी होता है। इसलिए स्त्रियां अकेले में भी लज्जवान होती है। पुरूष रोशनी में स्त्री को देखना चाहता है। स्त्रियां हमेशा अंधेरा पसंद करती हैं। पुरूष प्रेम में विह्वल होता है।

तो नेत्र खोलकर प्रेयसी को देखना चाहता है। लेकिन स्त्री जब विह्वल होती है, तो हमेशा आंख बन्द करके हृदय के झरोखे से देखती है। सभी शक्तियों में प्राणशक्ति मुख्य हैं।अन्य शक्तियाँ प्राण शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं। प्राणशक्ति ही ऊर्जा का बंटवारा पूरे शरीर में करती है।

मनुष्य में काम का जितना तनाव होता है, उतना और किसी जीव में नहीं होता। भय, क्रोध, ईर्ष्या, अपमान, सबका तनाव कभी-कभी होता है, लेकिन काम का तनाव सबसे सधन है। एक प्रकार से बराबर बना रहता हैं। इस तनाव का प्रभाव कामकेन्द्र से लेकर नाभिकेन्द्र यानी अपान प्रदेश प्रयन्त पड़ता रहता है।

इसी के फलस्वरूप क्षोभ, द्वेश, राग, विराग, क्षणिक वैराग्य, आशा, निराशा, संयोग, वियोग, प्रियता, के भाव उत्पन्न होते हैं। वास्तव में ये सभी भाव कामकेन्द्र के चारो ओर फैली हुई चेतना के स्पंदन है।

प्राण शरीर की धन विद्युत धारा मस्तिष्क में प्रवाहित होता है एवं ऋण विद्युत धारा शरीर के अन्दर के भागों में। दोनों का मिलन केन्द्र में हृदय पर होता है। हृदय महत्वपूर्ण केन्द्र है। जहां प्राणशक्ति की दोनों विद्युत धारा मिलकर स्पंदन के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं।

शराब भी आत्मतत्व को ज्यादा विरल करती है। उसका मनोमय शरीर पर ज्यादा आघात है। इसलिए पिपालिका मार्ग में तांत्रिक, मांत्रिक शराब का उपयोग करते हैं। चूंकि शराब सड़ाकर निम्नस्तर के जीवधारियों को पैदा कर बनाया जाता है, इसलिए ये निम्नस्तर की प्रवृतियां पैदा करती है। शराब पीकर लोग प्रायः सच बोलने लगते हैं।

स्त्रियां शराब पीकर ज्यादा खतरनाक हो जाती हैं। चूंकि भावना के केन्द्र मनोमय शरीर पर उसका ज्यादा आक्रमण होता है।

ऋषिगण के सोमरस पान की व्याख्या सामने आती है। शंकर के भंग और धतुरा खाने की स्वीकृति योग में रखी गयी है। चूंकि कुण्डलिनी जागरण में शरीर में एक अव्यक्त पीड़ा होने लगती है। जो साधक की साधना को विचलित करती रहती है। संतुलन बनायें रखने के लिए सोमरस या भाँग का प्रयोग करते हैं।

पुत्र-पुत्री प्राप्त करने में स्वर एवं तिथिवार

सृष्टि के नियम अटूट एवं अटल हैं। सूर्य भी उदय होकर प्राणशक्ति देने में पल सेकेण्ड का अन्तर नहीं कर पाता। सूर्य की गति एवं ताप की करोड़ों वर्ष की गणना आज और अभी की जा सकती है। उसी तरह हमारे जन्म-मरण भी प्रकृति के निश्चित गति में है। हमारी प्राणशक्ति के गमना-गमन में भी स्वशन स्वर एवं तिथिवार का निश्चित वर्तुल है।

हम अपने स्वशनक्रिया को तिथिवार के एवं घंट-पल के अनुसार नियंत्रित कर मनोनुकुल सौभाग्यशाली, धार्मिक एवं एश्वर्यवान पुत्र-पुत्री प्राप्त कर सकते हैं। जिनके सिद्धान्त का संक्षिप्त वितरण निम्नलिखित है।

प्रथम तीन राते एंव अष्टमी, एकादशी, त्रयोदशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा समागम के लिए वर्जित है।

रजस्वला होने से चौथी रात्रि में गर्भ रहने से अल्पायु तथा दरिद्री, छठी रात्रि में साधरण आयु वाला, आठवी रात्रि में ऐश्वर्यशाली, दशमी रात्रि में चतुर, बारहवीं रात्रि में उत्तम, चौदहवीं रात्रि में उत्तम गुण संपन्न और सोलहवीं रात्रि में सर्वगुण संपन्न पुत्र उत्पन्न होता है।

पाँचवीं रात्रि में संतान सुख वाली, सातवीं रात्रि में बंध्या, नौवीं रात्रि में ऐश्वर्यवती, ग्यारहवीं रात्रि में दुश्चरित्रा कुल का नाश करने वाली, तेरहवीं रात्रि में वर्णशंकर संतान उत्पन्न करने वाली, पंद्रहवीं रात्रि में सौभाग्यवती अथवा राजपत्नी कन्या उत्पन्न होती है।

जब पुरूष का दाहिना स्वर और स्त्री का बायाँ स्वर चल रहा हो, उस समय समागम करने से पुत्र उत्पन्न होता है और जब स्त्री का दाहिना तथा पुरूष का बायाँ स्वर चल रहा हो, उस समय गर्भाधान रहने से कन्या का जन्म होता है।

इसलिए पुत्र की इच्छा करने वाले पुरूष को बाएँ करवट और कन्या की इच्छा करने वाले पुरूष को दाहिने करवट लेटने के उपरांत रति-कर्म करना चाहिए जिससे इच्छित स्वर चलने लगें।

यदि पुरूष बाएँ करवट लेते तो उसका दहिना अंडकोश विशेष शक्तिमय हो जाता है। कामोत्तेजना होने पर अंडकोषों की नाड़ियों द्वारा ही शरीर की धातुओं में से वीर्य निकलने की क्रिया होती है।

दही से घी निकलने में जो कार्य रई (मथनी) करती है, वही वीर्य बनाने में अंडकोषों की नाड़ियाँ करती हैं।

शरीर के दाहिने भाग में पुरूषत्व के लक्षण विशेष मात्रा में पाये जाते हैं। दाहिने अंडकोष की नाड़ियाँ भी दाहिने ही अंग का मथन अधिक करती हैं, तद्नुसार वीर्य में भी पुरूषत्व की मात्रा अधिक होती है। इस प्रकार बाएँ करवट लेटने पर जो समागम किया जाता है; इससे पुत्र की उत्पत्ति होती है।

यदि पुरूष सूर्य-स्वर में स्त्री-संगम करे और संगम होते ही सुषुम्ना स्वर बहने लगे, तो उस समय के गर्भाधान से अंगहीन, कुरूप नपुंसक पुत्र होता है अथवा गर्भ गिर जाता है।

यदि ऋतु के आरंभ में पुरूष का सूर्य-स्वर और जल तत्त्व हो तथा स्त्री का चंद्र-स्वर तथा पृथ्वीतत्त्व हो एवं भोग के समय स्वर बदले नहीं तो बाँझ के भी पुत्र होता है।

यदि भोग काल में पुरूष का सूर्य-स्वर चले और वीर्य स्खलित होते ही चंद्र-स्वर हो जाये, इस क्रम से स्त्री गर्भ धारण नहीं करेगी। अगर करेगी तो पुत्री होगी, पुत्र नहीं। स्त्री-पुरूष का यदि एक ही नाक से श्वास चलता हो, तो गर्भ नहीं रहता है।

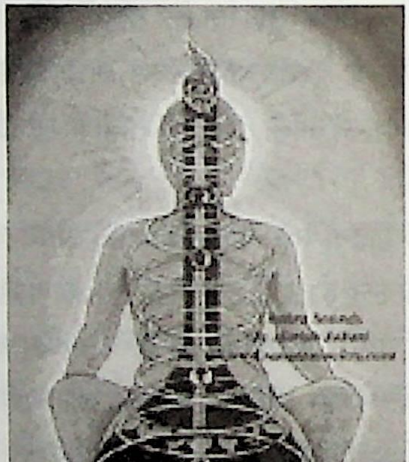

स्त्री-पुरूष में "स्त्रैन एवं पुरूषत्व"

प्रकृति ने अपने मैथूनी जगत के संचालन के लिए, हर स्त्री पुरूष में स्त्रैन एवं पुरूषत्व की मात्रा प्रत्येक केन्द्र पर लगभग साठ और चालिस प्रतिशत का रखा है। लेकिन पुरूष में एक गुण विशेष है कि मूलाधार पर स्त्रैन एवं पुरूषत्व का अनुपात बराबर रखा है। यानि (-) माईनस (+) प्लस बराबर है।

लेकिन स्त्री में मूलाधार पर अगर स्त्रैन ज्यादा है, यानि 60 प्रतिशत तो स्वाधिष्ठान पर पुरूषत्व कम है, यानि 40 प्रतिशत एवं नाभिकुण्ड पर अगर स्त्रैन ज्यादा है, यानि 60 प्रतिशत तो अनाहत पर 40 प्रतिशत पुरूषत्व है एवं विशुधाय पर तो माइनस पल्स यानि स्त्रैन, पुरूषत्व का मान बराबर तो जाता है।

लेकिन अगर दोनों को क्वान्टम के सिद्धान्त से अलग किया जाय, तो स्त्रैन का प्रतिशत ज्यादा आता है।

उसी तरह पुरूष में भी मूलाधार पर स्त्रैन एवं पुरूषत्व साम्यावस्था में है। और क्वान्टम के सिद्धान्त से अलग किया जाता है तो पुरूषत्व यानी पोजिटभ की मात्रा ज्यादा होती है।

फिर स्वाधिष्ठान पर स्त्रैन (-) निगेटिभएवं नाभि चक्र पर पोजेटिभ (+) पुरूषत्व की मात्रा अधिक है। जहां निर्भयता एवं संकल्पशक्ति का केन्द्र माना गया है। अनाहत पर स्त्रैन कम यानी 40 प्रतिशत है, तो विशुद्धाय पर स्त्रैन और पुरूषत्व साम्यावस्था में आ जाती है।

इन्हीं दोनों जगह साम्यावस्था में स्त्रैन एवं पुरूषत्व के आ जाने से पुरूष में कुण्डलिनी जागरण की ज्यादा सम्भावना बन जाती है। सातवें शरीर तक स्त्री और पुरूष में निगेटिव एवं पोजेटिभ की मात्रा कम-ज्यादा का अनुपात होने के कारण, इस मैथुनी जगत में स्त्री पुरूष में आकर्षण बना हुआ है एवं यही आकर्षण सृष्टि को चला रही है।

चूंकि स्त्री में मूलाधार पर केवल स्त्रैन ज्यादा है, लेकिन मूलाधार, अनाहत एवं चित्त्शक्ति का केन्द्र, ब्रह्मरंध्र स्त्री में काफी ताकतवर है। इसलिए स्त्री के मुक्ति का रास्ता प्रेम में है। और प्रेम में दो का होना आवश्यक है।

इसलिए पीछे लिखा गया है, कि स्त्री दो में बंधकर जबतक अर्द्धनारीश्वर का रूप साम्यावस्था में आकर नही ले लेती तब तक उसको मुक्ति नहीं है।

और प्रेम में साम्यावस्था आती नही। या इस पार या उस पार पागलपन की सीमा तक ! इसलिए स्त्रियों की मुक्ति सम्भव नही तो पाती। लेकिन अत्याधिक पागलपन की सीमा तक पहुँचने से आत्मविभोर की आनन्ददायक स्थिति में पहुंच जाती है और मुक्ति की कामना ही नही करती।

हम समझ रहे हैं कि, वासनात्मक या काम कामेश्वरी का विशुद्ध रूप लिंग और भग में है। लेकिन ये दोनों तो एक अति स्पंदनशील, संकोचनशील, मांस पेशिया का लोथड़ा है। इसमें गति या स्पंदन तो पुरूष के प्रोसटेट ग्लैण्ड के संचालन एवं स्त्री में गर्भाशय के ऊपरी मुख पर अण्डकोष में कामुकता के भाव का प्रवाह आने से आती है। जो आज्ञाचक्र पर बैठे मनःशक्ति से आती है। जिसका संचालन क्रमशः चित्तृशक्ति और आत्मशक्ति करती है।

पुरूष के अण्डकोष में मीलो लम्बे सूत जैसे नाड़ियों के द्वारा समुद्र मथन जैसी स्थिति तैयार होती है और प्रोस्टेट के बगल में स्थिति शुक्राणु कैभिटी में करोड़ों शुक्राणु कुछ मिनटों में ही तैयार हो जाते हैं। जिन सभी शुक्राणु में हमारे एवं हमारे दादा-दादी, नाना-नानी सभी के गुण अवगुण कर्मबंधन के अनुरूप आ जाते हैं।

इस ब्रह्मस्वरूपा प्रकृति में भी हमारे सौर मंडल, में स्त्रैन एवं पुरूषत्व का अनुपात बनाये रखने के लिए, किसी ग्रह को एक चन्द्रमा तो किसी ग्रह को सात चन्द्रमा का आकर्षण विकर्षण सौरमंडल में स्थिर रखे हुए हैं।

अभी-अभी पेपर में पढ़ा है कि नासा के द्वारा छोड़े गये उपग्रह यंत्र ब्रह्माण्ड का निरीक्षण कर सूचना दे रहे हैं। उसने अभी तक 706 (सात सौ छः) ऐसे आकाशीय पिण्ड की सूचना दी है, जिसके कई नक्षत्र ग्रह एवं चन्द्रमा हो सकते हैं एवं बहुतों पर विभिन्न परिस्थिति के अनुरूप जीवन हो सकता है।

आकर्षण-विकर्षण रूपी गुरूत्वाकर्षण का अनुपात ब्रह्माण्ड में इस तरह है, कि कोई भी आकाशीय पिण्ड एक दूसरे से नहीं टकराता। तारे, नक्षत्रों की भी जीवन लीला एक योनि परिवर्तन के रूप में समझ में आती है। क्योंकि एक निश्चित, करोड़ों, अरबों, वर्षो की आयु में ये नक्षत्र ग्रह भी बनते टूटते रहते हैं।

इनसब परिस्थितियों को देखते हुए लगता है कि, जो ब्रह्माण्ड में गुण-अवगुण भरे हैं, वह एक पिण्ड में भी भरे हैं।

एवं मनुष्य एक पिण्ड का ही रूप है। मनुष्य में भी पूरे ब्रह्माण्ड की शक्ति भरी है। तैंतीस करोड़ देवता का स्पंदन क्षेत्र हमारे नस नाड़ियों के मायाजाल पर ही है। उनका नक्षत्र मंडल हमारे तीनों शरीर के सौर मंडल में षटचक्र एवं कई छोटे छोटे चक्रों में है। तीन शरीर का वर्णन चित्र संख्या-3, 20, 21 एवं 37 में किया है।

प्राणऊर्जा दूसरे शरीर, सूक्ष्म शरीर में सूर्यचक्र पर संचालित होकर, पूरे ब्रह्माण्ड रूपी सभी चक्रों के कम्पन्न, स्पंदन क्षेत्र के द्वारा, अरबो-खरबों तीसरी पश्यिन्ति वाणी एवं चौथी परा वाणी के द्वारा, हम मानव के अस्तित्व को देवताओं के अस्तित्व से भी ऊपर ले जाने की क्षमता रखती है एवं उसका आकर्षण-विकर्षण, काम-कामेश्वरी के गुरूत्वाकर्षण में समझ में आती है।

जिसका सिद्धान्त अपने पुस्तक "कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी" में सूक्ष्मता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह यंत्र रूपी मानवशरीर, सूक्ष्म शरीर से संचालित होती है। सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर में, कारण शरीर में आत्मा बैठी है। जो रेणु की परिधि केन्द्र में बैठे नियंता से एकाकार होने की क्षमता रखती है।

इसलिए अपने आपको पहचानों? आप नियन्ता में समाहित होकर आत्म स्वरूपा चिदानन्द, ब्रह्मानन्द हो सकते हो!

आपके अन्दर पूरे ब्रह्माण्ड की कील की धूरी एकाकार हो बैठी है?

ऋषि मंडल, सिद्ध मंडल, देव मंडल या वैश्नावर जगत की जितनी आत्माएं हैं, जब पृथ्वी पर मानव कल्याण हेतु पैदा लेना चाहती है, तो उन्हें भी क्रमबद्ध तरिके से पहले कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल शरीर में आना पड़ता है।

पश्यिन्ति वाणी और परावाणी की सूक्ष्म तरंग (फ्रिक्वेंशी) ही प्रकाश तरंग में बदलकर **एक्स-रे** का रूप ले लेती है एवं ऋषि मंडल से क्रमबद्ध तरीके से फिर मनुष्य योनि तक के वाणी में परिवर्तित हो जाती है।

जिस तरह हिमालय की दुर्गम घाटी में ज्ञानगंज नामक मठ चतुर्थ आयाम में है। वहाँ बराबर दिव्य ज्योति से भरा हरा कोहरा छाया रहता है। चतुर्थ आयाम में होने से चर्मचच्छू से वहां कुछ भी नहीं देखा जा सकता।

उसी तरह गीता भी कृष्ण के द्वारा अर्जुन को जो संवाद के रूप में कही गयी है। वह चतुर्थ आयाम में कही गयी है, जो ऋषि मंडल के भी आयाम हैं।

लेकिन संजय को जो आंख दी गयी, वह चतुर्थ आयाम (फोर डाईमेन्शन) में दी गयी।

इसलिए जो कृष्ण और अर्जुन में संवाद हो रहे थे, वह किसी के चर्मचच्छु से नहीं देखा जा रहा था एवं परा वाणी के रूप में होने से कुछ ही क्षणों में कह दी गयी। परा वाणी में (टाइम एण्ड स्पेश) समय और दूरी तो बहुत सूक्ष्मतम स्तर पर होकर नहीं सा होने का प्रतीत होने लगता है।

आजकल टी.भी पर कृष्ण सिरियल में कृष्ण के पुत्र प्रधुम्न के मायावी प्रदर्शन में, आग, पानी, बिजली का जो नियंत्रित प्रयोग हाथ के चक्रवात से दिखलाया जा रहा है ।

वह "कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी" के बिल्कुल सिद्धान्त के अनुरूप है। उसमें भी गुरु के रूप में स्त्री को दिव्यभाव में दिखलाया गया है। जो मांतगी साधना का रूप है।

त्रेताकाल में, राम-रावण का युद्ध कौशल एवं मायावी युद्ध भी बिल्कुल कुण्डलिनी जागरण के सिद्धान्त पर है। महाभारत काल के सभी योद्धाओं के युद्ध कौशल एवं कौतुक की उपलब्धि भी इसी सिद्धान्त पर है।

मानव चौथे शरीर मानस शरीर में प्रवेश के बाद सृष्टि के बहुत असम्भव दिखने वाले कौतुक सिद्धान्तों को सम्भव होते दिखा सकता है।

हम अपने व्यालिस लाख योनि जो नीचे की ओर है अपने चर्मचच्छु से थलचर, जलचर एवं नभचर के रूप में किट, पतंग, जानवर एवं जलिय जीव को तो देख पाते हैं। लेकिन सूक्ष्म किटाणु को नंगे आंखों से देख नहीं पाते।

लेकिन अपने व्यालिस लाख योनि के दिव्ययोनि को अपने चर्मचच्छु से बिल्कुल नहीं देख पाते। जिनमें गन्दर्भ, किन्नर, नक्षत्रलोक, पितृलोक एवं देवलोक, ऋषिलोक, वैश्नावर जगत के आत्मपरक लोक आदि आते हैं।

इसलिए अपने दिव्यभाव के योनि के प्रति आत्मविस्मृत हो रहे हैं। दिव्यभाव की योनि बगैर कुण्डलिनी जागरण के सम्भव नहीं है।

नागलोक

नागलोक को भी ऋषियों ने एक पवित्र लोक में माना है। उन्हें स्वच्छ स्थान एवं सुगंध में रहने की प्रवृत होती है। वैश्वानर जगत के लोग कभी-कभी अपने कर्मबंधन को काटने के लिए नागों के रूप में जन्म ले लेते हैं और तपस्या करते हैं। कहा जाता है कि कुछ निश्चित बिषैले नाग को सौ वर्ष में शिर पर मणी हो जाता है। **वह मणि भी कौस्तुक मणि के रूप में समझ में आती है।**

मनुष्य योनि में केवल सात वार लगातार जन्म लेने की सुविधा है। इसके बाद संस्कारगत कर्मबंधन के अनुसार नीचे की योनि या ऊपर की योनि में जन्म लेना पड़ता है।

नागलोक को उच्च श्रेणी का लोक माना गया है। हम अपने धार्मिक संस्कृति में भी देखते हैं कि विष्णु सर्प सैया पर सोये है। शंकर के गले में सर्प है। कृष्ण पांच फन वाले कालिया नाग पर नृत्य करते है। रामायण में लक्ष्मण को शेषनाग अवतार बताते हैं। बिषैले नागों के फन पर स्पष्ट विष्णु के पादुका का चिन्ह दृष्टिगोचर होता है। देश के विभिन्न भागों में कई रूपों में नाग पूजा होती है।

तिब्बत में पहाड़ी इलाकों में नाग जाति भी निवासी करती है। नागलोक से सात तरह की फूल आने की चर्चा है। जैसे नागचम्पा, कटेली चम्पा, केशर चम्पा, कनक चम्पा, मैगनोलिया चम्पा, गोल्डेन चम्पा, सफेद चम्पा।

नागलोग से फिर मनुष्य योनि में जन्म लेने की सुविधा है। **लेकिन नागलोक से जन्मे मनुष्य में संस्कार तो उच्च होते हैं। लेकिन जिस जन्म से लोग आते हैं, उनका संस्कार भी प्रायः साथ होता है।**

इसलिए नागलोग द्वारा आये स्त्री, पुरूष प्रायः सुन्दर काया और उच्च संस्कार के होते हैं। लेकिन पूर्व संस्कार के कारण, क्रोधी, धन और रूप के प्रति आकर्षित होते हैं। जो उनके अच्छे साधक होने के बावजूद भी ऊपर के लोको में जाने में बाधक हो जाता है।

इन्हीं बिषैले और तपस्वी सर्प के मारने से कालसर्प दोष लगता है। जो ब्रह्महत्या के बराबर है। माता-पिता को कष्ट देने वाले को भी कालसर्प दोष लगता है। जो मनुष्य जीवन में सबकुछ उपलब्ध रहते हुए बिषम परिस्थिति के बीच जीते हैं।

शरिर के अंगो एवं ग्रन्थियों के

अंक Number	तत्व Elements	शरीर अंग Organ	अंगुली जोड़ Finger Joint
0	तम Tam	प्रजनन अंग Reproductive Organs	दांया अंगुठा Right Thumb ← He Jt. → Ne Jt.
1	पृथ्वी Prithvi	फेफडे/बड़ी आंत Lung / Larg Insteine 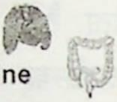	दांयी कनिष्ठा Right Small Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
2	जल Lal	ह्रदय/छोटी आँत Heart/Small Insteine	बांयी कनिष्ठा Left Small Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
3	अग्नि Agni	यकृत / पिताशय Liver / Gall Bladder	बांयी तर्जनी Left Index Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
4	वायु Vayu	गुर्दे / मूत्राशय Kiddney/Urinery Blader 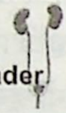	दांयी तर्जनी Right Index Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
5	आकाश Akash	प्लीहा / अमाशय Spleen / Stomach	दांयी अनामिका Right Ring Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
6	काल Kaal	मेडुला/मेरूदण्ड Medulla / Spine	बांयी अनामिका Left Ring Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
7	दिशा Disha	पोन्स/सेरीबेलम Pons / Cerebellum	बांयी मध्यमा Left Middle Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
8	मन Mann	मष्तिक/लिम्बिक Brain / Limbic System	दांयी मध्यमा Right Middle Finger ← Ho Jt. / He Jt. → Ne Jt.
9	आत्मा Atma	केन्द्रक Nucleus of Brain	बांया अंगुठा Left Thumb ← He Jt. → Ne Jt.

साथ ग्रह एवं चक्रो का सम्बंध

ग्रंन्थियां Glands	शरीर के द्वार Body Holes	ग्रह Grah	चक्र Chakra	गुण Energy Speciality
थेलमस Thalamus	नाभि Navel	महा उत्पति Super Origan	कुण्डलिनी Kundliny	अंधकार Darkness
जनेन्द्रियां Gonads	दायां कान Right Ear	सूर्य Sun	मूलाधार Muladhara	शब्द/नाद Sound
एड्रीनल Adrenal	बायां कान Left Ear	चन्द्र Moon	स्वाधिष्ठान Swadhisthana	रस Taste
अग्नाशय Pencreas	बांयी आंख Left Eye	मंगल Mars	मणिपुरा Manipura	प्रभा Radiance
थाईमस Thymus	दांयी आंख Right Eye	बुध Mercury	अनाहत Anahata	स्पर्श Touch
पैराथाईराइड Parathyroid	दायां नासाछिद्र Right Nostril	वृहस्पति Jupiter	विशुद्धा Vishudha	गंध Smell
थाईराइड Thyroid	बायां नासाछिद्र Left Nostril	शुक्र Venus	आज्ञा Agya	अहंकार Ahankar
पिट्यूटरी Pituitary	मुख Mouth	शनि Saturn	सहास्त्रार Sahastrara	लक्ष्य Aim/Motto
पीनीयल Pineal	प्रजनन द्वार Reproductive Hole	राहू Rahu	मनोचक्र Manochakra	संकल्प Determination
हाईपोथलमस Hypothalamus	मलद्वार Anus	केतू Ketu	परमचक्र Paramchakra	प्रकाश Light

सूर्य वलय एवं मनुष्य जीवन

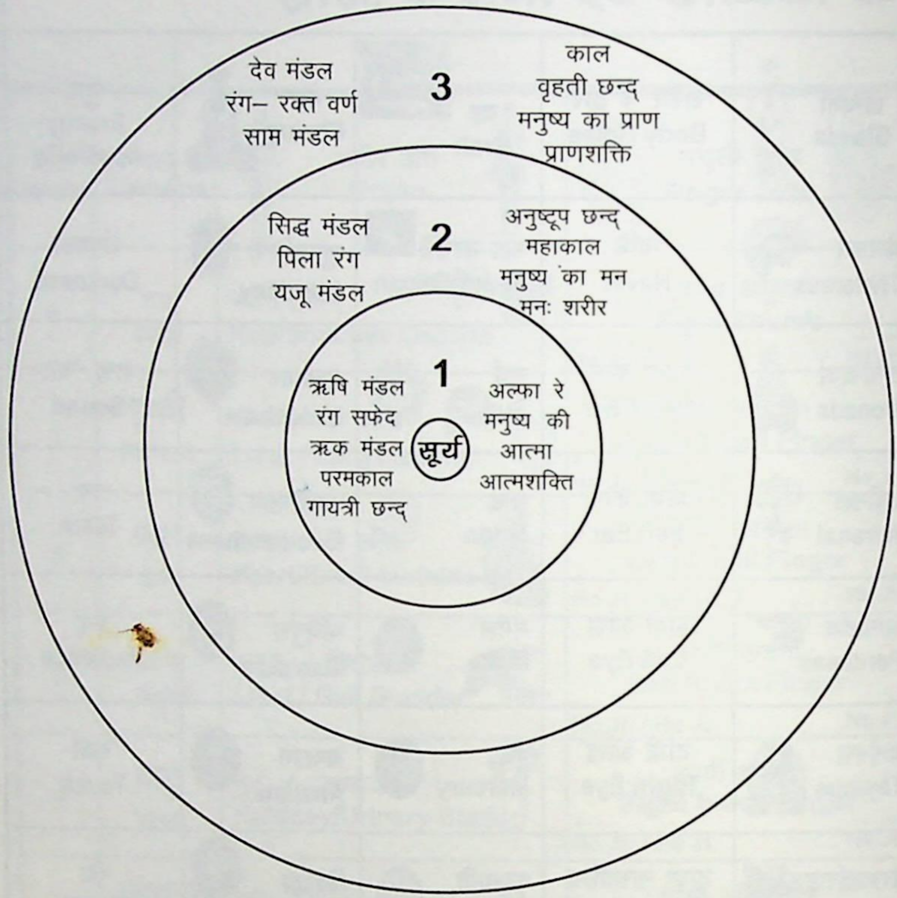

पृथ्वी की तरह सूर्य के चारो तरफ भी तीन लोको का वलय है। **(क) पहला वलय** - ऋषि लोक का है। इससे निकलने वाली रश्मि सफेद है। इसमें ऋषिगण का निवास है। इस वलय से "अलफा रे" निकलती रहती है। जो पृथ्वी पर ब्रह्ममुहुर्त में 3 से 5 बजे तक के समय में यहाँ के प्राणियों को प्राप्त होता है।

(ख) दूसरा वलय - सिद्ध साधकों का है। इससे निकलने वाली रश्मि - पीले रंग का है इससे छोटी दीर्घा वाली "अल्फा रे" निकलती रहती है। जो अरुणकाल में पृथ्वी के प्राणियों को मिलता रहता है।

(ग) तीसरा वलय - देवलोक है। इसमें देवता लोगो का निवास है। इसका रंग रक्तवर्ण है। यह पृथ्वी के प्राणियों को उषाकाल के बाद प्राप्त होता है। (डेल्टा रे) इन तीनों वलय का सम्बन्ध मनुष्य से बराबर बना रहता है।

क्रमशः मनुष्य की आत्मा, मनुष्य का मन, मनुष्य का प्राण तीनों वलय के तीन चक्र में है। उनके तीनों चक्रों को परमकाल, महाकाल और काल कहते हैं।

तीनों मंडलों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। इन सीमाओं के अन्दर तीनों वलय को क्रमशः गायत्री छन्द, अनुष्टूप छन्द और वृहती छन्द कहते हैं।

(घ) स्वर से सूर्य और चन्द्र का संबंध -यह नहीं समझना चाहिए कि पंद्रह दिन बिल्कुल एक-सी गति से ही स्वर चलेगा। चंद्रमा की कलाओं का सूक्ष्म परिवर्तन प्रति पक्ष कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। प्रतिपदा को नाड़ी का आरंभ होकर प्रतिदिन सूर्योदय उपरांत पर स्वर बदलता है। जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को इड़ा नाड़ी 1, 2, 3, 7, 8, 9, 14 और पूर्णिमा इन तिथियों को सूर्योदय पर (बाई) इडा (चन्द्र) नाड़ी रहेगी और शेष 4, 5, 6, 10, 11, 12 तिथियों को दाहिनी सूर्य नाड़ी चलेगी। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रति तीन दिन बाद सूर्योदय पर स्वर बदलेगा, यह नैसर्गिक नियम है।

विवेकपूर्ण और स्थायी, कार्य चंद्र-स्वर में किए जाने चाहिए। जैसे- विवाह, दान, मंदिर, कुआँ, तालाब बनाना, नवीन वस्त्र धारण करना, घर बनाना, आभूषण बनवाना, शांति के काम, आदि का आरंभ भी ऐसे ही समय में होना चाहिए, जब शरीर के सूक्ष्म-कोष चंद्रमा की शीतलता को ग्रहण कर रहे हों।

उत्तेजक, आवेश एवं जोश के साथ करने पर जो कार्य ठीक होते हैं, उसमें सूर्य-स्वर उत्तम कहा गया है। जैसे-क्रूरकर्म, स्त्रीभोग, भ्रष्टकार्य, युद्ध करना, देश का ध्वंस आदि।

कुछ क्षण के लिए जब दोनों नाड़ी (सुषुम्ना) चलती हैं तब प्रायः शरीर संधि अवस्था में होता है। यह संध्याकाल है।

सूर्य की उत्तरायण और दक्षिणायन दो गतियाँ हैं। उसी प्रकार शरीर में इड़ा, पिंगला श्वास की दो गतियाँ हैं। दिन और रात्रि के दो भेद भी इसी प्रकार हैं। दिन उत्तरायण है, तो रात्रि दक्षिणायन। इड़ा उत्तरायण है, तो पिंगला दक्षिणायन। जिस प्रकार उत्तरायण के महीनों में शीत की प्रधानता रहती हैं, उसी प्रकार चंद्र नाड़ी शीतल होती है और दक्षिणायन के महीनों में जिस प्रकार गर्मी की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार सूर्य नाड़ी में उष्णता एवं उत्तेजना का प्रधानता होता है।

वैश्वानर लोक

काल स्वयं सूर्य है

दिव्यराज में जितने ऋषि है। सब ब्रह्मतेजोमय है और अमर है। काल राज्य में जितने ऋषि है सब अंधकार राज्य में है जिसका प्रकाश उदगित सूर्य है।

दूसरे शब्दों में सूर्य नाद ब्रह्म है। वह बराबर "रब" करते हैं, इसलिए सूर्य का दूसरा नाम रवि है।

काल राज्य को सौर मंडल और दिव्यराज को ब्रह्ममंडल कहते हैं।

इसी तरह पृथ्वी के चारो ओर जो परिधिगत लोक है, उसमें तीन-सूक्ष्म जगत दूसरा हाकनी, लाकनी, शाकनी, काकनी जगत एवं तीन वैश्वानर जगत का तीसरा और चौथा जगत मनुष्य के दोनों नाभिकुण्ड के कम्पन्न क्षेत्र में है।

सूर्य भी मनुष्य के नाभिकुण्ड पर मणिपुर चक्र के प्रतीक में है, एवं मणिपुर चक्र सूर्य चक्र के नाम जाना जाता है। पूरे शरीर की नश नाड़ियाँ एवं स्वशन क्रिया का नियंत्रण नाभि केन्द्र से है, जो सूर्य केन्द्र के क्षेत्र में है।

वैश्वानर जगत में कुण्डलिनी जागरण वाले का ही प्रवेश है। यह वैश्वानर जगत आधा पृथ्वी के मंडल में एवं आधा आकाशीय मंडल में आकाशीय सात लोकों की सीमा में धुला मिला है। जिस तरह नाभि कुण्ड आधा स्थूल शरीर कामक्षेत्र में और आधा सुक्ष्मशरीर ज्ञान क्षेत्र में है।

नाभि क्षेत्र में प्रवेश ही वैश्वानर जगत में प्रवेश का दरवाजा है। ये तीनों जगत मनुष्य में, मस्तिष्क, हृदय और नाभि के चुम्बकीय तरंग में आते हैं।

संकल्प शक्ति जब उन्नत एवं पूर्ण विकसित होती है तब

मस्तिष्क में - अल्फा रे तरंग

चित में - बीटा रे तरंग

नाभि में - डेल्टा रे तरंग निकलने लगती है। सूक्ष्म वैश्वानर जगत मानवेतर प्राणियों के विचारों, भावनाओं और मन की सूक्ष्मतम आवश्यकताओं का लोक है।

मनुष्य की चार अवस्था है - **जागृत, स्वप्न, सुषुप्ती और तुर्या**। इससे सम्बन्धित मनुष्य के चार शरीर हैं।

१. स्थूल शरीर **२. वासना शरीर**

३. सूक्ष्म शरीर **३. मनोमय शरीर**

मन के चारों स्थितियों के अनुरूप इसका संबंध इन शरीरों से है।

मन तो आत्मा का क्रियाशील रूप है।

वैश्वानर जगत में इच्छाशक्ति और मनः शक्ति की बहुत प्रधानता है। इस लोक के निवासी अपने इच्छा और मन के अनुकुल परिस्थिति में निवास करते हैं। मनोनुकुल निर्माण की क्षमता इनमें होती है।

मृत्यु का ईश्वरीय विधान है, कि जिस केन्द्र से प्राण जिस संकल्पशक्ति और इच्छाशक्ति से निकलती है। जन्म उन्हीं केन्द्रों के द्वारा प्रवेश द्वार है।

चूंकि वैश्वानर जगत पृथ्वी के नौवा जगत तक हैं इसलिए जन्म और मरण भी इनके लिए सुनिश्चित है। लेकिन वैश्वानर जगत की आत्माएं उच्च श्रेणी की होती है। इसलिए इनके लिए उच्च श्रेणी का कोख चाहिए।

जो ध्यान और कुण्डलिनी जागरण से ही सम्भव है। विश्व में जितने बड़े साइनटिस्ट, गायक, नर्तक, कवि, साहित्यकार, वैद्य, डॉक्टर वगैरह होते हैं, वे सभी उचित कोख पाकर ही पृथ्वी पर जन्म ले पाते हैं।

इनकी कुण्डलिनी प्राकृतिक रूप से जगी होती है। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण, लेकिन उन्हें पता ही नहीं होता है कि कुण्डलिनी के जगे लोग हैं।

आज के युग में हमारी सारी ऊर्जा अधोगति की ओर जा रही है।

पिछले तीन हजार वर्षों के इतिहास में केवल आठ दस आत्मदर्शी एवं पथप्रर्वतक लोग ही पैदा ले पाये हैं। गौतम, महावीर, कबीर, गुरूनानक, विवेकानन्द, जिसस क्राइस्ट, मोहम्मद, लाओत्से, गुरूगोविन्द इत्यादि। वैश्वानर जगत से ऊपर की आत्माओं को क्या कहें, वैश्वानर जगत की आत्माओं को भी इस जगत में आने की सुविधा नहीं मिल रही है।

ऐसा लगता है कि कृष्ण ने जो नौ द्वार की चर्चा कि है, शायद यही पृथ्वी का नौ जगत तो नहीं है! मृत्यु का दशमा द्वार तो केवल उच्च ऋषि मुनि, के लिए ब्रह्मरंध होकर है।

कुण्डलिनी सिद्धि एवं षट्दल चक्र

चित्र संख्या-13

चित्रित योग साधना की स्थिति में, चक्रों के स्वरूप को समझाने का प्रयास किया गया है।

मूलाधार चक्र (Besic Chakra) - यह चक्र पृथ्वी तत्व से सम्बन्धित चक्र है। जहाँ सप्त धातु का रसायन तैयार हो, शरीर को प्राण ऊर्जा प्राप्त होती है। इसी केन्द्र पर काम शक्ति का मूल बीजरूप है नाड़ी के पाँच गुच्छक पर कुण्डलिनी के निवास का स्थल माना गया है। जो शक्ति रूप में सुषुम्ना के मुँह को बन्द किये बैठी है एवं जो कुण्डलिनी जागरण के साधना के बल पर उर्ध्वगति पकड़ सकती है।

इस चक्र के असन्तुलन से कई तरह के रोग शरीर पर दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे - हड्डियों का कैन्सर, हड्डियों के जोड़ का दर्द, रक्त विकार, एलर्जी, घावों का बिस्तार आदी रोगों की भी सम्भावना हो सकती है।

वैसे ही अगर मूलाधार चक्र सक्रिय हो जाता है, तो वे पूर्णरूपेण स्वस्थ दिखते हैं। चूंकि मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्व है एवं सप्त धातु का भी निर्माण इसी चक्र की प्रतिक्रिया है। जिसको तंत्रशास्त्र में सात सूंड़ वाले हाथी के स्वरूप में दिखलाया गया है। **(चित्र संख्या-14 में)**

सप्तधातु के संतुलन से यह भौतिक शरीर स्वस्थ दिखती है। इन्हीं बिन्दुओं से कामवासना का बीज, पुरूष में शुक्राणु अंड ग्रन्थियाँ एवं स्त्रियों में डिंब ग्रंथियों के रूप में गर्भाशय के मूल से, सृष्टि के संचालन गति में है एवं स्वर्ग-नर्क की सारी गतिविधियों का कारण है।

मूलाधार पर पुरूष में पुरूषत्व का प्रतिशत धनात्मक एवं स्त्री में स्त्रीत्व का प्रतिशत ऋणात्मक रूप में सक्रिय है। इस पर चार दल की व्याख्या मनिषियों द्वारा है। इस पर पहला शरीर भौतिक शरीर, का विकास है। इसका शाब्दिक बीज अलंकार **'लं'** है। यह चक्र अपान प्राण के क्षेत्र में है एवं कामक्षेत्र का मूल चक्र है। बड़ी आंतों के 4"&5" ईंच लम्बा निम्न भाग, जो शुण्डाकृति रूप में है, गणेश चक्र के नाम से जाना जाता है। जो मूलाधार का ऊपरी मूल है।

स्वाधिष्ठान (Sex Chakra) - यह चक्र नाभिकुण्ड से चार अंगुल नीचे है एवं मूलाधार से चार अंगुल ऊपर है। पुरूष के प्रोस्टेट ग्रंथि एवं स्त्रियों के गर्भाशय के ऊपरी मूल में अण्डकोष ग्रंथि के रूप में मेरूदण्ड के पोले भाग से गुजरती सुषुम्ना

नाड़ी पर अवस्थित है एवं काम शक्ति का मूल केन्द्र बिन्दु का विस्तार है।

यहां मूलाधार के काम बिन्दु के विस्तार से, स्त्री-पुरूष के रति क्रिया द्वारा सृष्टि संचालन की गति में सक्रिय है। इसका सम्बन्ध स्त्री-पुरूष के काम अंगों (Sex Organs) से है तथा मूत्राशय का एवं एड्रेनल ग्रन्थि का नियंत्रण कक्ष है। योग साधना क्रम में इस पर मूलाधार चक्र, विशुद्धाय चक्र एवं आज्ञा चक्र का विशेष प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह अपान प्राण क्षेत्र में है।

यह पृथ्वी के जल तत्व से सम्बन्धित है एवं काम (Sex) संबंधित रोग और शोक का कारण है। इन्हीं चक्रों पर काम का नियंत्रण ध्यान द्वारा होने पर कुण्डलिनी जागरण की सम्भावनाएं फलित होती है एवं हमारी प्राण शक्ति उर्ध्वगति पकड़ती है।

इसी चक्र के ऊपरी मूल में ताण्डेन बिन्दु की नमनियता बिन्दु की खोज जापानी समुराई द्वारा की गयी है। जिसपर श्वास की मन्द से मन्द गति का आघात कुण्डलिनी जागरण का कारण होता है। जापानी समुराई इसी बिन्दु के ऊपरी मूल पर तलवार की नोंक से छिद्र करके, हारा-किरी (आत्मघात) कर लेते हैं एवं वेदना रहित मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग-नर्क से मुक्ति पा लेते हैं।

इस पर छः कमलदल की व्याख्या मनिषियों ने की है। जो छः लोकों के देवी के छः मंत्राक्षर बीज मंत्र द्वारा कम्पन्न क्षेत्र में है एवं इनका शाब्दिक मध्यस्थ बीज अलंकार "वँ" है। इसका द्वितीय, भाव शरीर से सूक्ष्मतम सम्बन्ध है एवं इस शरीर का विकास चौदह वर्ष तक में है।

मणिपूर चक्र (Naval Chakra) - यह चक्र नाभिकुण्ड से तीन अंगुल ऊपर मेरूदण्ड से गुजरते सुषुम्ना नाड़ी पर अवस्थित है एवं प्राण ऊर्जा के नियंत्रण एवं वितरण के केन्द्र बिन्दु पर है। यह अग्नि तथा सूर्य केन्द्र के रूप में माना जाता है। इस केन्द्र से इस भौतिक शरीर के पाचन संस्थान, तिल्ली, पिताशय, यकृत, रोग-शोक एवं स्वस्थ होने का मूल कारण है।

इसी केन्द्र के द्वारा योगि समाधि की अवस्था में अंतरिक्ष के किसी कोने में भी, आत्म शक्ति धारित सूक्ष्म शरीर से अदृश्य रज्जू-तन्तू द्वारा जुड़े रहते हैं। गर्भस्त शिशु नाभि नाल द्वारा माँ के गर्भ में नाभिकुण्ड से जुड़कर, यहीं से अपनी प्राण ऊर्जा, मणिपूरक चक्र द्वारा प्राप्त करते हैं।

प्राण चिकित्सक इसी केन्द्र पर अपना प्राण ऊर्जा डालकर सूक्ष्म चेतना को जगाकर प्राण शक्ति को नियंत्रित करते हैं। प्राण शक्ति देने में बच्चों, बूढ़ों की प्राणिक

स्थिति देखकर चिकित्सक प्राण ऊर्जा का प्रयोग करते हैं। मुख्यतः इस पर संतुलन बिगड़ने से गुर्दा, पीठ से संबंधित रोग एवं रक्तचाप का विकार आ सकता है। यह संकल्प का मुख्य केन्द्र है एवं भय मुक्त होने पर कुण्डलिनी गति में उर्ध्वगति पकड़ ज्ञानक्षेत्र में प्रवेश का मुख्य शाश्वत चक्र है।

योग साधना में इस केन्द्र का बहुत महत्व है एवं कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में प्रवेश के अन्धबिन्दु के निचले मूल पर यह केन्द्र अवस्थित है। इस पर सूक्ष्म शरीर का पूर्ण विकास 21 वर्ष की अवस्था में है एवं दस कमलदल की व्याख्या मनीषियों ने की है। इसका शाब्दिक बीज अलंकार **'रं'** है।

अनाहत चक्र (Heart Chakra) - **यह चक्र द्वैत से अद्वैत के मूल बिन्दु पर है एवं कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में छलांग लगाकर अर्द्धनारीश्वर की गति पाने की स्थिति में है। कुण्डलिनी का नियंत्रण जो 3,45,000 मील प्रति सेकेण्ड है, यहीं तक है। कुण्डलिनी उठती तो मूलाधार से है, लेकिन तत्वरित विद्युत वेग द्वारा एक पूर्ण परिधिगत सर्किट अनाहत और मूलाधार पर ही बनाती है एवं सर्पिल आकार में अपना गति बनाते हुए कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में साधक को, अपने पूर्ण प्रसाद रूपी उपादानों के उत्कर्ष से भर देती हैं।** (चित्र संख्या 7 में देखें)

महाभारत काल में इन्हीं केन्द्रों पर पहुंचे बहुत सारे मनिषि, योद्धा की भरमार थी। शक्तिपात का मूल केन्द्रबिन्दु अनाहत ही है। यहीं पहुँचकर साधक नर और नारायण की श्रेणी प्राप्त करने लगता है।

यह पुरूष में स्त्रैण बिन्दु है एवं नारी में पुरूषत्व बिन्दु है। इसी बिन्दु पर दोनों के मिलन से ही पूर्णता प्राप्त कर स्त्री एक पूर्ण नारी हो पाती है एवं पुरूष एक पूर्ण पुरूष हो पाता है। पूर्णता प्राप्त करने के बाद भी, स्त्री का समर्पण भाव एवं पुरूष का आक्रमक भाव तो बना ही रहता है एवं दोनों के अपने स्त्रैण एवं पुरूषत्व का प्रतिशत एक दूसरे का पूरक पा मजबूत होता है।

स्त्रैण बिन्दु के संधिकाल में पहुँच जाने से ही - राम, कृष्ण, महावीर, गौतम, क्राइस्ट, मुहम्मद वगैरह - करूणा, मैत्री, मुदिता का सागर हो, प्रकृति पुरूष का श्रेणी ले पायें! इन्हीं स्त्रैण बिन्दुओं के समभाव के प्रतिकात्मक में किसी महापुरूष के दाढ़ी-मूछ, किन्हीं चित्रों या प्रतिमा में नहीं दिखलाई जाती है।

क्योंकि यह करूणा, मैत्री, मुदिता का प्राकृतिक स्वभाव आदिशक्ति रूपा मात्रीअंक स्त्रीत्व का ही है। इन्हीं बिन्दुओं पर समर्पित हो, मीरा और राधा विश्व में प्रेम का प्रतीक हो पायी!

इससे ऊपर तो अद्वैत है एवं आत्मगति 1,86,000 प्रति सेकेण्ड से साधक के सूक्ष्म शरीर की ब्रह्माण्डीय यात्रा शुरू हो जाती है। इसका दल बारह है एवं इसके प्राण क्षेत्र में ही सूर्य चक्र की स्थिति है।

यह वायु प्रधान केन्द्र है एवं वैश्वानर लोक से ऊपर की यात्रा यहीं से शुरू होती है। यहाँ से ऊपर साधक की स्वयं की यात्रा शुरू होती है एवं आत्मदर्शन की स्थिति बनती है।

यह चक्र हृदय के पीछे, उससे थोड़ा ऊपर मेरूदण्ड पर स्थित है। हृदय सम्बन्धी रोग, शोक एवं उपलब्धि का नियंत्रण कक्ष, यही अनाहत चक्र बिन्दु है।

इस चक्र पर अवसाद आने पर श्वांस-प्रश्वांस, फेफड़ा और हृदय के रोग ग्रसित करते हैं। इस चक्र का सीधा सम्बन्ध विशुद्धाय चक्र, आज्ञा चक्र एवं सहस्त्रार चक्रों से रहता है। इसलिए तनाव, चिंता, भावुकता, भय आदि, इस चक्र पर अक्सर आने का मुख्य कारण बनता है। इसका बीज शब्द अलंकार "**यं**" है।

यहाँ तक चौथे शरीर, आत्मशरीर की गति है। जहाँ तक जन्म-मृत्यु की अन्तिम श्रृंखला है। कर्मबंधन काटने के लिए ऋषि, मनिषि साधक को उचित गर्भ पाकर जन्म लेना पड़ता है। कर्मबंधन रहते इस शरीर से ऊपर जाने की सुविधा नहीं है। इसका कमलदल बारह है एवं यह आकाश तत्व के क्षेत्र में है।

विशुद्धाय चक्र (Throt Chakra) - मेरूदण्ड के ऊपर कंठ प्रवेश के पीछे यह सुषुम्ना नाड़ी पर अवस्थित रहती है। इसका संबंध **थाइराइड ग्रंथि** और **लसीका वाहिनी** नाड़ी से रहता है।

इसी पर ज्ञान-विज्ञान के परम उत्कर्ष की व्याख्या मनिषियों ने की है। चारों वेद की व्याख्या इसी केन्द्र पर काक भुषुण्डी द्वारा की गयी है। यह आकाश तत्व सम्बन्धी केन्द्र है एवं स्थितिपज्ञ की अवस्था में, वैश्चिक भावदशा की ओर प्रस्थान का चक्र बिन्दु है।

यहां से जन्म-मरण की श्रृंखला टूट जाती है। साधक को फिर से जन्म लेने के लिए चौथे शरीर अनाहत पर ही कोई लिप्सा का खूंटा गाड़ना पड़ता है।

पीछे के चारों शरीर - भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनोमय शरीर के गिर जाने से सारी सांसारिक लिप्सा समाप्त हो जाती है एवं इनका स्वप्न भी संकल्पवान होने से यथार्थ में प्रतीत होने लगता है। **पूर्ण समाधि की व्यवस्था यहीं से बनती है एवं पूर्व शरीर को, संकल्पित कल्पना शक्ति द्वारा ही सुरक्षित रख, विश्व को ज्ञान-विज्ञान दे सकते हैं।**

यह चक्र गला, फेफड़ा, हृदय तथा रक्त प्रवाह पर भी अपना प्रभाव डालता है, तथा इस पर थाईराइड ग्रंथि के विकार से, मोटापा का कारण बनता है। दमा, जुकाम, खांसी, गले का सूजन इत्यादि बीमारियाँ, थाईराइड पर विकार आ जाने से रोग का कारण बनते हैं। यह शरीर के विकास एवं बढ़वारी का भी ग्रंथि केन्द्र है। इसके दल सोलह हैं एवं बीज शाब्दिक अलंकार "हँ" है।

यहाँ पहुँचे साधक के सारे कर्मफल भस्म हो जाते हैं। यहाँ पाँचवे शरीर, ब्रह्मशरीर की स्थिति बनती है। नाभिचक्र की साधना से उठा अव्यक्त परा वाणी, बैखरी वाणी के रूप में इस विशुद्धाय चक्र द्वारा ही स्फूटित होता है। गंधर्वो की गायन विद्या का सप्त स्वर इसी चक्र के द्वारा स्फुटित होता है।

यहाँ उदानक्षेत्र की समाप्ती है एवं आकाश तत्व का मूल बिन्दु है। यहाँ कण्ठकुप पर साधना करने से भूख प्यास की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्मरंध्र से ललना चक्र द्वारा टपकने वाला अमृत बुन्द यहाँ ही अवस्थित होकर अमर तत्व प्राप्त करता है। खेचरी मुद्रा की साधना इसी केन्द्र पर की जाती है।

आज्ञा चक्र (Anjana Chakra) - योग साधना में आज्ञा चक्र का सर्वाधिक महत्व है। यहाँ शिव के तीसरे नेत्र की चर्चा ब्रह्मऋषियों ने की है। जो प्रत्येक नर-नारी स्वरूपा ब्रह्मकृति में दृष्टिगोचर है एवं ललाट के मध्य में दोनों भौंह के मध्य से कुछ ऊपर आधा ईंच नीचे "जौ" के आकार में अवस्थित है।

यहाँ से ही टंकार की प्रतिध्वनि गूंजती हुई शब्दावली के किसी भी अक्षर पर पड़ जाने से, मंत्र हो जाती है। स्त्री एवं पुरूष में किसी भी चक्रिय दल का विद्युतीय सर्किट (परिधि) पूरा कर शब्दब्रह्म में प्रवेश कर जाती है एवं वहाँ का कम्पन्नगति पकड़ अदृश्य के उन लोकों से सम्बन्ध स्थापित कर पाती है।

यदपि नाभिकुण्ड संकल्पशक्ति का केन्द्र है, लेकिन संकल्प आज्ञा चक्र पर ही लिये जाते हैं। इसी आज्ञा चक्र के पीछे पिट्यूटरी ग्रंथि है, जो अध्यात्मिक प्राण ऊर्जा का मूल स्रोत है एवं साधक इसी केन्द्र को अनुप्राणित कर टेलीपैथी द्वारा हजारों मील

की दूरी, केवल विचार तरंग द्वारा पकड़ पाते हैं एवं संप्रेषण कर पाते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से जो उत्ताप पैदा होता है, उसके प्रभाव से भ्रूमध्य स्थिति मनोवाहा नाड़ी से प्राणवाह नाड़ी का सम्बन्ध भंग हो जाता है और वहां एक नीलवर्ण ''जौ'' के आकार का ज्योति प्रज्वलित हो उठता है। उसी ''जौ'' पर चित्त को एकाग्र करने से तीनों कालों की स्थिति स्पष्ट दिखती है।

योगी लोग इसी को ''जवा सिद्धि'' अथवा ज्योति दर्शन कहते हैं। तिब्बत में इन्हीं मनोवाहा नाड़ी के प्राणवाहा नाड़ी से, सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए, शल्यक्रिया का प्रयोग किया जाता है।

भ्रूमध्य से सिर के पीछे की ओर से मेरूदण्ड के सीध में रेखा खींचने पर मेरूदण्ड के ऊपरी हिस्से में जहां मिलेगी, इसका वास्तविक स्थान उसी केन्द्र पर माना जाता है। यह नेत्र तथा नासिका के उन्नयन एवं रोग पर अपना प्रभाव डालता है। शरीर में जितने नलिका विहीन ग्रंथियां हैं, सब इसके प्रभाव क्षेत्र में है।

प्राण चिकित्सक प्राणोपचार में गले के ऊपरी मूल बिन्दु के पिछले भाग से ही अपनी प्राण शक्ति देते हैं। यह चक्र आकाश तत्व के क्षेत्र में है एवं छठे शरीर ब्रह्म शरीर के रूप में, आज्ञा चक्र का प्रतिनिधित्व करता है।

इसके दो दल हैं एवं बीज मंत्र ''ॐ'' है। यह दल डॉक्टरों के शल्य चिकित्सा में बालू के दो कणों की तरह दिखती है। भौतिकवादी स्वरूप में इसका कोई महत्व नहीं है।

लेकिन अध्यात्मिक समीकरण में यह विश्व ब्रह्माण्ड के सर्वाधिक क्षेत्र को, सूक्ष्म शरीर द्वारा नियंत्रित किये रहता है। विचरण की स्थिति में यह एक दूसरे के परिधि में, सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन की तरह घूमती रहती है एवं ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मतम परमाणुओं को भी प्रभावित कर सकती है।

यहां पहुँचकर साधक शिवरूपा स्थितिपज्ञ की स्थिति प्राप्त कर लेता है। इस केन्द्र पर पहुँचे साधक का ''मैं'' का बोध बिल्कुल गिर जाता है एवं शून्यावस्था की स्थिति बनती है। इस चक्र से टार्चनुमा ज्योति निकलने की व्याख्या है। जो मनःशक्ति को केन्द्रीत कर अनन्त दूरी तक पदार्थ एवं अणु को प्रभावित कर देती है।

इसलिए सम्मोहन में भी इसी आज्ञा चक्र का बहुत महत्व है।

इससे निकले केन्द्रीत मनःशक्ति की अवज्ञा नहीं की जा सकती एवं ध्यान का भी मूल बिन्दु है।

सहस्त्रार (Croaum Chakra) - इस चक्र को शून्य चक्र माना जाता है। छः चक्र की सारी स्थिति इस चक्र में साधक के ब्रह्मस्वरूपा हो जाने पर उपलब्ध हो जाते हैं। सेरेब्रल कैमिटि (कपाल कुहर) के क्षीर सागरनुमा सेरेब्रेटा नामक भरे तरल पदार्थ में मटर के दाने बराबर अण्डाकार सूक्ष्म तन्तुओं का 1008 लपेटा मारे विष्णुरंध्र की व्याख्या है। यह शिर के मध्य में छः माह तक के बच्चे में उधकते भाग पर कपाल कुहर में महसूस की जा सकती है।

पिनियल ग्रंथि द्वारा यह पूरे शरीर के ग्रंथियों एवं नलिका विहीन ग्रंथियों, कोषा और नस नाड़ियों पर अपना अधिकार रखता है। कंठ प्रदेश से दो भागों में विभक्त सुषुम्ना नाड़ी का एक भाग पिछले मेरूदण्ड से कंठ के पास से होते हुए इसी कपाल कुहर के तन्तुओं से आ मिलता है एवं दूसरा आज्ञा चक्र में प्रवेश कर जाता है। इसलिए आज्ञा चक्र पर भी इसका पूर्ण अधिकार है। आकाश तत्व से प्रभावित प्राण शक्ति, इन्हीं शून्य चक्र द्वारा प्राणीमात्र को ग्राह्य है।

सहस्त्रार चक्र के विकारग्रस्त हो जाने पर पिनीयल ग्लैण्ड एवं मस्तिष्क सम्बन्धी रोग होते हैं। यह केन्द्र स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर स्थिति आत्मा तक को ब्रह्माण्ड से जोड़े रखती है। चूंकि यह पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों का नियंत्रण कक्ष है। इसलिए प्राण चिकित्सक यहाँ प्राण ऊर्जा अवश्य देते हैं।

क्योंकि आज्ञा चक्र के सहयोग से शरीर के सभी चक्र इससे प्रभावित होते हैं। इसमें एक हजार आठ कमलदल की सूक्ष्मतम व्याख्या है, जिसके पंखुरियें पर सभी बीजमंत्र की सशक्त उपलब्धियों को तांत्रिकों एवं देव, ऋषियों ने माना है। ग्रंथि तो कपालकुहर में है लेकिन उसके प्रभाव क्षेत्र को शेषनाग की सहस्त्र मुख वाले छतरी की तरह सिर से चार अंगुल ऊपर से अंतरिक्ष के अनन्त व्योम तक का सम्बन्ध दिव्यदृष्टि से देखा गया है।

उच्च आत्माओं के प्राण निकलने का रास्ता इसी कपाल कुहर से है। ब्रह्मज्ञानी इन्हीं विष्णुरंध्र पर अवस्थित हो पूर्ण स्थितिप्रज्ञ होकर निर्वाण की गति प्राप्त करते हैं।

ब्रह्म बिन्दु
स्थितिप्रज्ञ
षट् दल
ॐ चक्र
अर्द्धनारीश्वर
स्त्रैण बिन्दु
पुरुषत्व बि_दु
कुण्डलिनी
सिद्धि

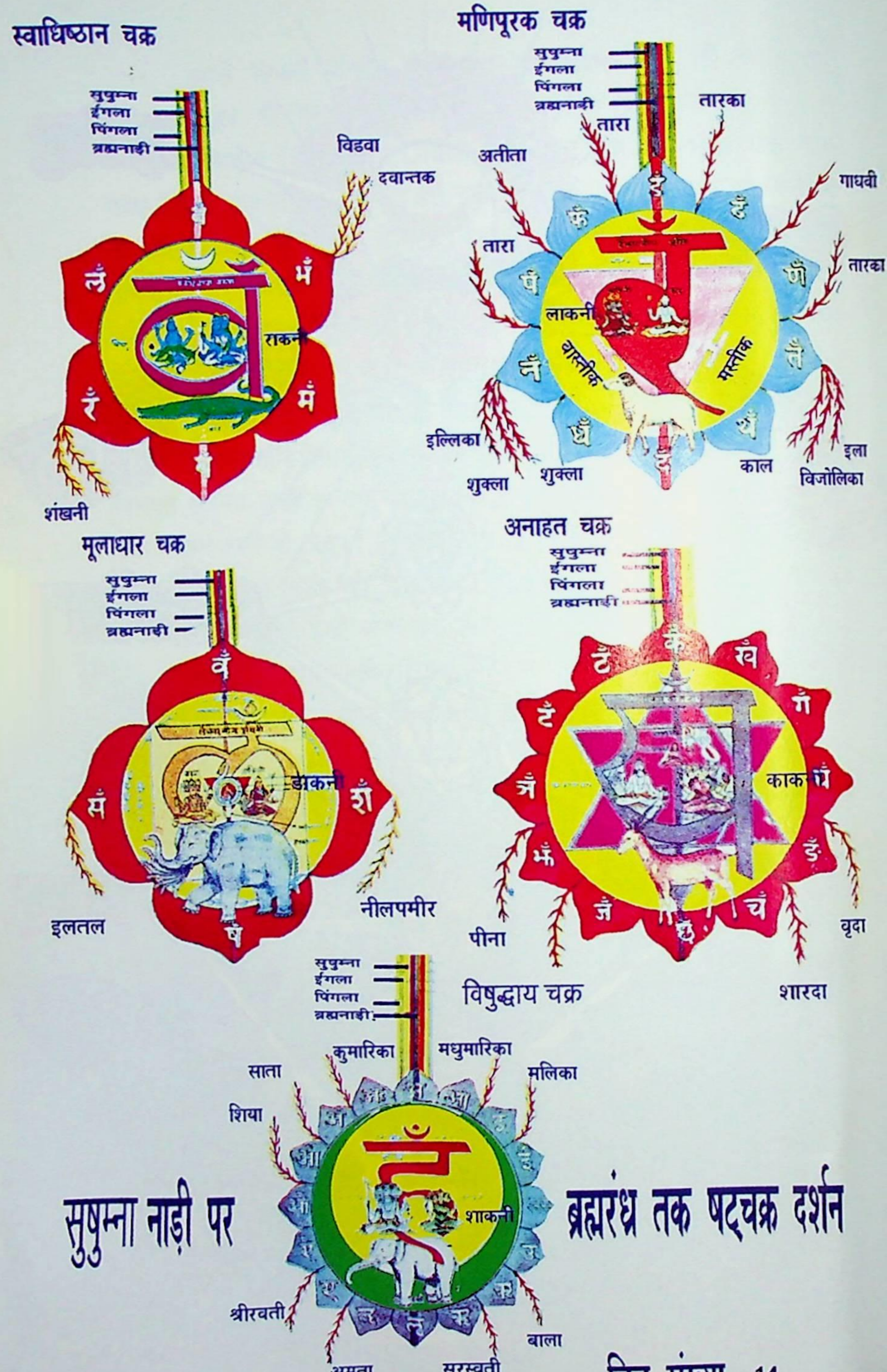

सुषुम्ना नाड़ी पर ब्रह्मरंध्र तक षट्चक्र दर्शन

चित्र संख्या -14

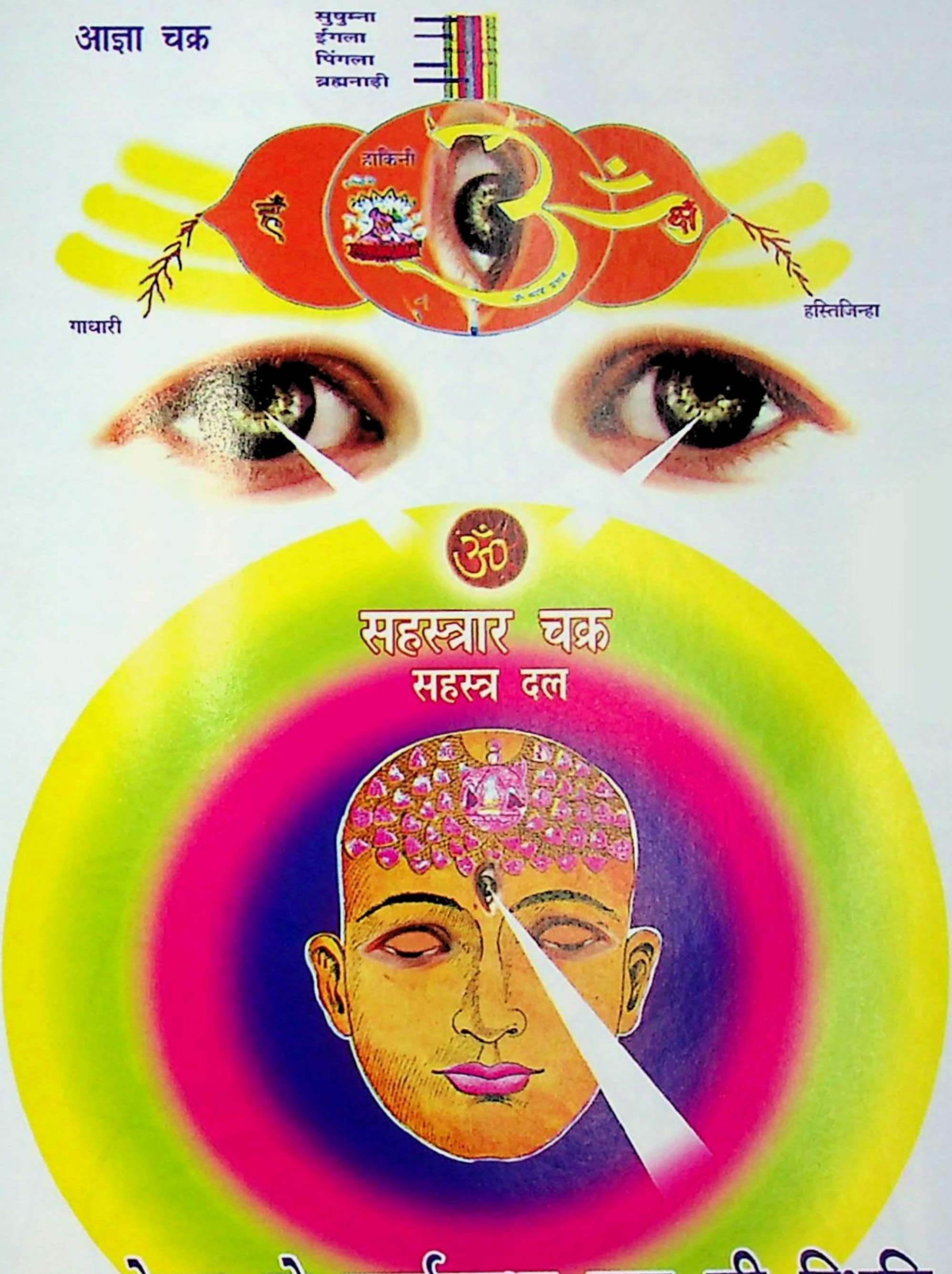

सम्मोहन से तुर्यावस्था तक की स्थिति
एवं सबों में तीसरे नेत्र की स्थिति

चित्र संख्या -15

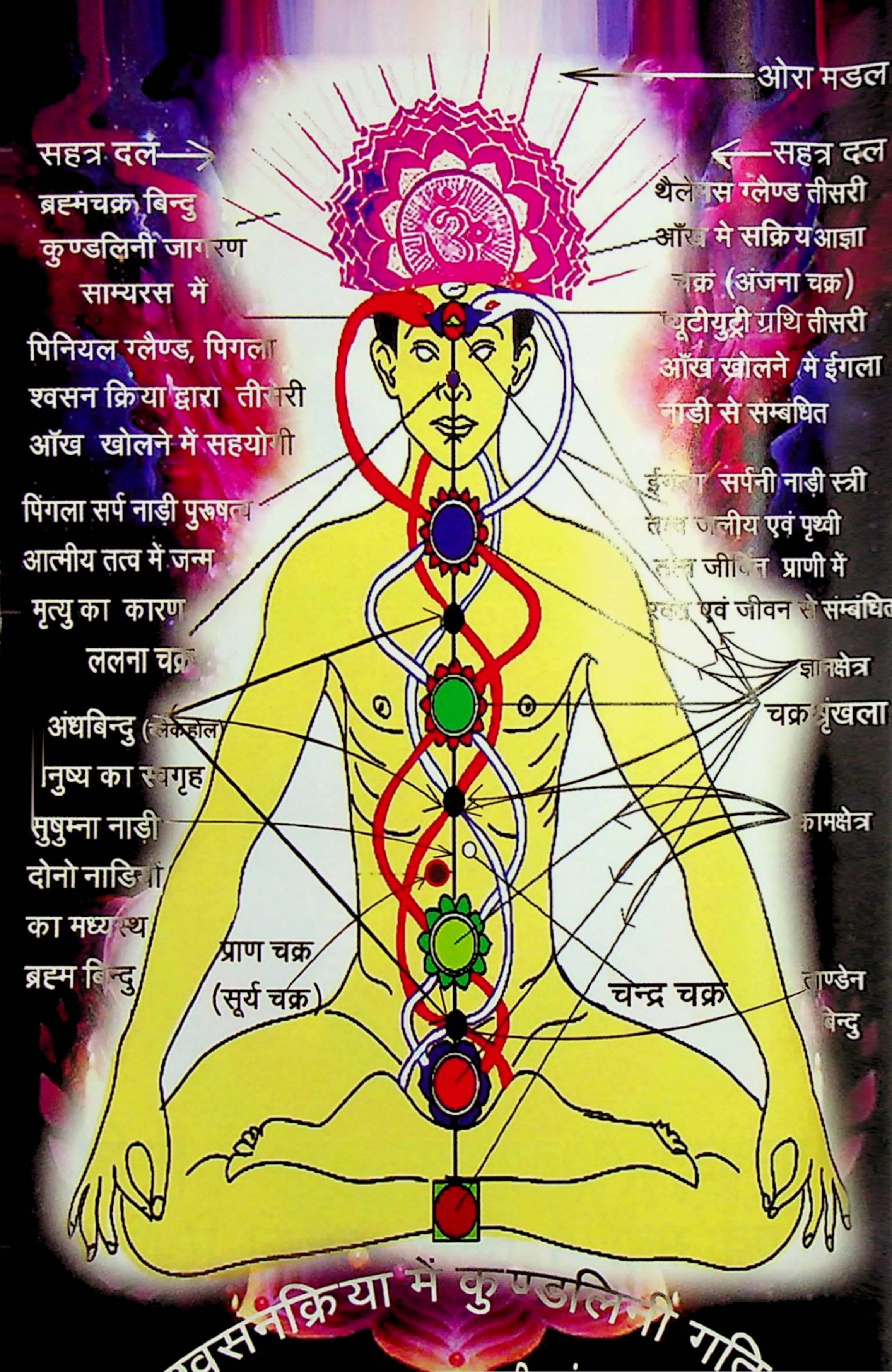
ओरा मडल
सहत्र दल
सहत्र दल
ब्रह्मचक्र बिन्दु
कुण्डलिनी जागरण
साम्यरस में
पिनियल ग्लैण्ड, पिगला
श्वसन क्रिया द्वारा तीसरी
ऑख खोलने में सहयोगी
पिंगला सर्प नाड़ी पुरूषत्व
आत्मीय तत्व में जन्म
मृत्यु का कारण
ललना चक्र
अंधबिन्दु (ब्लैकहोल)
नुष्य का स्वगृह
सुषुम्ना नाड़ी
दोनो नाड़ियों
का मध्यस्थ
ब्रह्म बिन्दु
प्राण चक्र
(सूर्य चक्र)
चन्द्र चक्र
थैलेमस ग्लैण्ड तीसरी
आँख मे सक्रिय आज्ञा
चक्र (अंजना चक्र)
प्यूटीयुट्री ग्रथि तीसरी
आँख खोलने मे ईगला
नाडी से सम्बंधित
ईगला सर्पनी नाड़ी स्त्री
तत्व जलीय एवं पृथ्वी
तत्व जीवित प्राणी में
रक्त एवं जीवन से संम्बंधित
ज्ञानक्षेत्र
चक्र शृंखला
कामक्षेत्र
ताण्डेन
बिन्दु
श्वसनक्रिया में कुण्डलिनी

ब्रह्मरंध्र तक षट्चक्र दर्शन

चित्र संख्या-14 व 15

यह चित्र सूक्ष्म शरीर के सुषुम्ना नाड़ी पर स्थिति षट्चक्रों के चित्रण में है । षट्चक्र की व्याख्या चित्र संख्या 14 व 15 में किया गया है । लेकिन यह चित्रण तांत्रिक गति में विशेषतः की गयी है ।

मूलाधार-इस चक्र पर सात सूड़ वाले एरावत हाथी एवं देवता में ब्रह्मा एवं देवी में डाकनी के रूप में दर्शाया गया है । इसका वर्ण रक्ताभ, तत्व- पृथ्वी एवं चार दलिय चक्र में चित्रीत है । इसको **'भूः'** लोक से सम्बाधित माना गया है । इसका गुण **'गंध'** है एवं यज्ञ का रूप चौकोर में व्यवस्थिति है ।

इसकी ज्ञान इन्द्रियाँ **नासिका** है एवं कर्मइन्द्रियाँ-**'गुदा'** है । इसका ग्रहदशा **सूर्य** है एवं शरीर का द्वार-**दांया कान** है । गुण-**शब्दनाद** है एवं ग्रन्थियां-**जनेन्द्रियां** है । इसका अंगुली पर दवाब बिन्दु **दायी कनिष्टा** एवं शरीर का अंग **बड़ी आंत** एवं **फेफड़ा** है ।

इसके बीज मंत्र **'वं'** है एवं दल **वं, शं, षं, सं** है । इस पर ध्यान का फल-**विद्या, आरोग्य** एवं **कुण्डलिनी जागरण** है ।

स्वाध्ष्ठिान-इस चक्र पर जलिय जन्तू **मगर** है, देवता **बिष्णु** एवं देवी **राकिनी** का चित्रण है । इसका वर्ण **सिंदूरी** तत्व **जल** एवं छः दलिय चक्र में चित्रित है । इसको **'भूवः'** लोक से सम्बन्ध्ति माना गया है । यंत्र का स्वरूप **अर्द्धचन्द्राकार** है । इसकी ज्ञानईन्द्रिय **रसना** है एवं कर्मइन्द्रिय-**शिशन** है ।

इसका ग्रहूदशा-**चन्द्रमा** है एवं शरीर के द्वार **वायाँ कान** है । गुण **'रस'** एवं ग्रन्थियां-**एड्रीनल** है । इसका अंगुली पर दबाव बिन्दु-**दार्यी कनिष्टा अंगुली** है एवं शरीर का अंग-**छोटी आंत** है एवं इसका स्थान **पेडू** में है ।

इसके बीजमंत्र **'बँ'** है एवं दल अक्षर **वँ, भँ, मँ, यँ, रँ लँ** हैं । इसका ध्यान का फल-**काव्ययोग** प्राप्ति है ।

मणिपुरक चक्र-इस चक्र पर वाहन **मेंढा** एवं देवता में **वृद्धरूद्र** एवं देवी में **लाकनी** के रूप में दर्शाया गया है । इसका वर्ण-**नीला** तत्व-**अग्नि** एवं दस दल में चित्रण है । इसको **स्वः** लोको से सम्बन्ध्ति माना गया है । इसका गुण-**'रूप'** एवं यंत्र का स्वरूप **त्रिकोण** में है ।

इसकी ज्ञान इन्द्रिया **नेत्र** एवं **कर्मइन्द्रिय चरण** पर है । इसका स्थान नाभि में है । इसका ग्रहदशा **मंगल** है एवं शरीर का द्वार-**बांयी आंख** है । ग्रन्थियां-**अग्नाशय** है । इसका अंगुली पर दवाब बिन्दु **बांयी तजनी** है एवं शरीर का भाग-**पिताशय, यकृत** है । इसके शरीर के द्वारा बांयी आंख इसके बीज मंत्र **'रं'** है एवं दलिय अक्षर मंत्र-**डँ, हँ, णँ, तँ, चँ, दँ, घँ, नँ, पँ, फँ** है । इस पर ध्यान का फल **विद्या** एवं **सामर्थ्य** है ।

अनाहत-इस चक्र पर देवता में तीन मुखी **ईशान रूद्र** हैं । इस चक्र पर वाहन में **मृग** है एवं देवी में **काकनी** के रूप में दर्शाया गया है । इसका वर्ण-**अरूण,** तत्व-**वायु** एवं दल-**बारह** में चित्रण है । इसको **महःलोक** के लोको से सम्बन्धित माना गया है । इसका गुण-**स्पर्श** एवं यंत्र का रूप षटकोण में है ।

इसकी ज्ञान इन्द्रियां-**त्वचा** एवं कर्मइन्द्रियां-**हाथ** है । इसका स्थान-**हृदय** में है । इसका ग्रहदशा-**बुद्ध** है एवं शरीर का द्वार-**दाँयी आँख** है । ग्रन्थियाँ-**थाइमस** एवं अंगूली पर दबाव बिन्दु **दाँयी तर्जनी** है । शरीर का भाग-**गुदा** और **मुत्राशय** है । शरीर का द्वार-**दाँयी आँख** है । इसके बीज मंत्र **'यँ'** है एवं दलिय अक्षर मंत्र, **कं, सं, गं, पं, डं, चं, छं, जं, झं, त्रं, टं, ढं,** है । इस पर ध्यान का फल-**ईशत्व** एवं **विवेक** प्राप्ती है ।

बिशुद्धाय चक्र-इस चक्र का वाहन-**हाथी** देवता-**पंचवक्त्र-शिव** एवं देवी-**शाकनी** का चित्रण है । इसका वर्ण-धुम्र तत्व-**आकाश** एवं सोलह दल में चित्रण है । इसको-**जनःलोक** से सम्बन्धित माना गया है । इसका गुण-**शब्द** एवं यंत्र का रूप **गोल** है । इसकी ज्ञानईन्द्रियाँ-**कर्ण** है ।

इसका ग्रहदशा-**वृहस्पति** एवं शरीर का द्वार-**दाँया नासिका छिद्र** है । इसका कर्मइन्द्रियाँ-**वाक्** एवं ग्रन्थियाँ-**पेरा थाईराइड** । अंगुली पर दवाब बिन्दु-**दाँयी अनामिका** एवं शरीर का अंग-**प्लीहा, अमाशय** है । इसका स्थान-**कण्ठ** में है । इसका बीज मंत्र-**'हँ'** एवं दलिय मंत्र **ऊँ** से **अः** तक है-इस पर ध्यान का फल-**व्यक्त्वि** एवं **ज्ञान** है ।

आज्ञा चक्र-इस चक्र का वाहन-**नाद (शब्द टंकार)** है, देवता-**लिंग** एवं देवी में **हाकनी** का चित्रण है । इसका बर्ण-**श्वेत** एवं तत्व-**महातत्व** एवं **काल** है । दो दल में चित्रण किया गया है ।

इसको-**तपःलोक** से सम्बन्धित माना गया है । इसका गुण-**स्थितिप्रज्ञ** हो समाधिस्थ होना है । यंत्र का रूप **अण्डाकार** एवं **लिंगाकार** है । इसका ज्ञानईन्द्रियाँ-**परमब्रह्म** का कम्पन्न एवं शरीर का अंग-**मेडुला** एवं **मेरूडण्ड** है ।

इसका दबाव बिन्दु-**बाँयी अनामिका** है एवं शरीर का द्वार-**बाँया नासा छिद्र** है । इसका स्थान-**भ्रूमध्य** एवं देवता-**शुक्र** है । इसका बीजमंत्र-**'ऊँ'** है एवं दलिय अक्षर **हं, क्षं** है । इसका ध्यान का फल-**वाक्यसिद्धि** है ।

सहस्त्रार-इस चक्र का ब्रह्म महारेणु देवता-**परमब्रह्म** हैं एवं देवी-**महाशक्ति** है । इसका सम्बन्ध-**सत्यमूलोक** से है एवं यंत्र-**निराकार पूर्णचन्द्र** है । इसके ग्रहदेवता-**शनि** हैं एवं ज्ञानइन्द्रियाँ-**ब्रह्माण्ड** एवं **परमब्रह्म** है । ण

कर्मइन्द्रिय-**निराकार ब्रह्म** है । इसका गुण-**निवार्ण** लक्ष्य एवं तत्व-**तत्वातित** है । तत्वबीत-**बिसर्ग परमशिव** एवं रंग-**अवर्ण** है । इसके शरीर का द्वार-**मुँख** एवं ग्रन्थि-**पिट्र्युटरी** है । इसका दवाब बिन्दु-**बाँयी मध्यमा** है ।

इसका अक्षर दल-**अं** से लेकर **क्षं** तक है एवं स्थान **मस्तिस्क** में है । दल **सहस्त्र** हैं एवं ध्यान का फल-**मुक्ति** है ।

सम्मोहन से तुर्यावस्था का विशेष वर्णन भाग-द्वितीय में सम्मोहन एवं प्राणशक्ति नामक विषय में कर दिया गया है ।

क्रोध

प्रेम या क्रोध का स्वरूप हमारी आन्तरिक भावदशा है। यह आती तो सूक्ष्म शरीर से है ! लेकिन भाव शरीर होते हुए, स्थूल शरीर पर प्रगट हो जाती है। हमारे रोके भी न प्रेम रूकती है और न क्रोध रूकता है। मनस शरीर में तो अर्द्धनारीश्वर के स्वरूप की तरह क्रोध-प्रेम, धृणा-अहिंसा सब एक सूक्ष्म तरंग में है।

लेकिन हमारी प्रवृतिया अधोगमन में होने से, यह तीन शरीर को पारकर स्थूल शरीर पर अपना पूर्ण स्वरूप नाकारात्क एवं साकारातमक स्वरूप में प्रगट कर लेती है-

अतः हमें अपने अभ्यास में हँसना, अट्टहास करना एवं दया, प्रेम, क्षमा दिखाने का संकल्प ही हमारे भावदशा को सहजता में लाकर, हमारे ओरामंडल वलय को विशुद्ध ईश्वरीय स्वरूप दे सकती है।

स्वशनक्रिया में कुण्डलिनी गति

(चित्र संख्या - 16)

इस चित्र में मस्तक से ऊपर कमलदल स्वरूप में एक गोलाकर चक्र दिखलाया गया है। यह ब्रह्मरंध्र से चार अंगुल ऊपर ब्रह्मचक्र की संवेदनशील स्थिति में दर्शायी गयी है। जो ब्रह्माण्ड से जुड़ी हुई, कुण्डलिनी गति एवं आत्म गति में, ईथरिक एवं न्यूत्रान की कम्पन्न गति में प्राण ऊर्जा ग्रहण कर जीवात्मा के स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के संचालन का कारण है।

प्रकाश तरंग के दोनों ओर वृताकार पंखुरी दल की तरह आकृति है। ऊपर वृत्ताकार स्वरूप में ओरामंडल दिखलाया गया है। जिसकी चर्चा पुस्तक में कई संदर्भ में की गई।

यह बतलाता है, कि ब्रह्माण्डीय कोई भी सम्पर्क परा वाणी तक, बिना ऋण विद्युत एवं धन विद्युत के सम्भव नहीं है। दोनों विद्युत एकाकार हो, एक बिन्दु में समाहित रहकर, जरूर निष्क्रिय हो जाता है!

लेकिन ऋण विद्युत और धन विद्युत ज्यादा से ज्यादा शक्तिशाली होकर, परमाणु के नाभिक पर न्यूरान पर क्रियाशील रहता है। चूंकि वह अपना सारा गतिय भार खोकर नाभिक पर समाहित रहता है एवं ईश्वर के केन्द्रक के बिन्दु गति परिधि में रहता है।

इसलिए इस मानव योनि में वहां पहुंचना असंभव है। क्योंकि नाभिक का कितना भी टुकड़ा करना चाहें, तो प्रत्येक टुकड़ा नाभिकीय स्वरूप ले लेगा एवं प्रत्येक नाभिक टुकड़े पर हजारों स्वरूप विभिन्न रूपो में सृष्टि कर लेगा इन्हीं दोनों ऋण और धन विद्युत के प्राण ऊर्जा को आज्ञा चक्र के पीछे थालमस ग्लैण्ड पर केन्द्रीत दिखलाया गया है।

प्राण ऊर्जा कहीं से भी प्रवेशकर, आज्ञाचक्र पर तो अपना विद्युतीय सर्कीट जरूर पूरा करेगा ही! थालमस ग्लैण्ड जो आज्ञा चक्र के पीछे स्थित है वह पिट्यूटरी ग्रंथि, साधना क्रम में ''जवां सिद्धि'' में तीसरा आंख खोल, दिव्य दृष्टि एवं दिव्य चक्षु, साधक को प्राप्त होने पर ब्रह्माण्ड के अनन्त ज्ञानक्षेत्र से जोड़ देता है।

ईंगला और पिंगला स्वशन क्रिया साम्यरस में आती तो है, नाभिकुण्ड के नीचे ताण्डेन बिन्दु पर ही! लेकिन कुण्डलिनी गति या आत्म गति गमन तो करती है सुषुम्ना से ही !

पिंगला तो सूर्य स्वर है जिसको सिंदूरी सर्प के रंग में एवं ईंगला जो चन्द्रश्वर है, उसको उजले रंग के सर्प में दिखलाया गया है। दोनों स्वर की गति एक सर्पिल परिधि में आज्ञाचक्र पर साम्यरस के मिलन स्थिति में दिखाया गया हैं।

दूसरा सर्पिल जो ताण्डेन बिन्दु पर साम्यरस में आते हुए, कामक्षेत्र एवं ज्ञानक्षेत्र के अन्ध बिन्दु (ब्लैकहोल) और फिर आत्मा के स्वरूप पर स्थितिपज्ञ होकर, कण्ठ चक्र के विशुद्धाय चक्र पर अर्द्धनारीश्वर का पूर्ण एकाकार स्वरूप पकड़ लेता है।

लेकिन रास्ता कुण्डलिनी गति या आत्म गति का केवल सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ही है, जो मेरूदण्ड के पोले भाग से मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक गति पकड़े हुए है। सुषुम्ना मध्य में मूलाधार के ऊपर गुजरते हुए, सभी चक्र एवं साम्यरस बिन्दुओं से मिलते हुए, कंठ चक्र पर दो भागों में विभक्त होकर, आज्ञाचक्र एवं ब्रह्मरंध्र तक पहुंच जाती है।

ब्रह्मरंध्र तक की गति में वह मस्तक से चार अंगुल ऊपर अपना ब्रह्माण्डीय चक्र कायम करती है।

कुण्डलिनी गति द्वैत तक की गति में दृष्टिगोचर होता है। साधक के अनाहत तक पहुंच जाने पर, पुरूष में मूलाधार के पुरूषत्व बिन्दु एवं स्त्री में स्त्रैण बिन्दु पर, क्रमशः धन विद्युत एवं ऋण विद्युत की गति में अनाहत पर, पुरूष में स्त्रैण बिन्दु एवं स्त्री में पुरूषत्व बिन्दु पर एक अण्डाकार विद्युतीय परिधिगत सर्किल बनाता है एवं द्वैत की पूरी उपलब्धि से साधक साधिका को भर देता है।

अगर यह विद्युतीय सर्किट कहीं से भी भूमिगत होती है तो साधक का बहुत बड़ा अनिष्ट हो जाता है।

इसलिए साधना में उचित कुचालक का प्रयोग आसन और बिस्तर के लिए करना चाहिए। इस विद्युतीय सर्कीट को अब "करलियन पद्धति" से फोटोग्राफ लिये जा सके हैं, जो प्राण ऊर्जा के गमना-गमन एवं दिव्यप्रकाश को दर्शाती है। (चित्र संख्या 6 एवं 7 में देखें)

इसलिए यहीं तक काम-कामेश्वरी के लीला द्वारा आत्म गति के अनाहत चक्र से ऊपर पहुंचने का रास्ता है एवं मनुष्य जीवन के उपलब्धि एवं महानता का श्रेष्ठतम अध्याय कुण्डलिनी जागरण ही है!

जागृत कुण्डलिनी वाले मानव ही, आत्म गति पकड़ ऊपर के व्यालिस लाख योनिय चक्रवात से निकल निर्वाण की गति पा सकते हैं।

इसलिए सृष्टि की संचालन गति में मैथुनी चक्र तो है! लेकिन इससे उर्ध्वगति पकड़ने के लिए कुण्डलिनी गति ही साध्य है।

चार चक्र-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत के द्वैत तक में ही हमारा कर्मबंधन है एवं कर्मप्रधान योनियां हैं। स्थूल शरीर तो गिरते-मरते रहेंगे। लेकिन सूक्ष्म एवं कारण शरीर का प्रलयकाल तक मृत्यु नहीं है।

सात शरीर की व्याख्या में, प्रत्येक शरीर-भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनोमय शरीर तो कर्मबंधन तक की गति में, कुण्डलिनी गति के सक्रिय होने पर टूट जायेंगे।

लेकिन ऊपर के तीन शरीर -आत्मशरीर, ब्रह्मशरीर एवं निर्वाण शरीर तो आत्मा के टूटकर रूपान्तरित होने पर ही नष्ट हो सकते हैं। लेकिन आत्मा तो टूट नहीं सकती, उसका रूपान्तरण हो दिव्यराज्य के अमर उद्गित का आभाभय स्वरूप पकड़ सकता है।

षट्चक्र की चर्चा चित्र संख्या 14 में व्याख्या कर दी गयी है। लेकिन इसके अलावे भी छोटे-छोटे चार चक्र की व्याख्या मनीषियों एवं तंत्रशास्त्री द्वारा आते हैं। जिसका चित्रण चित्र में किया गया है।

मनश चक्र - मेरूदण्ड के भूमध्य से गुजरते आज्ञा चक्र से अगले चक्र में सहस्त्रार की ओर ललाटपट्टी पर षट्दलिय चक्र हैं। इसे शब्द, रूप, रस, गन्ध का ग्राहक एवं स्वप्निय अनुभूति एवं नैसर्गिक ज्ञान प्राप्ती का केन्द्र बिन्दु माना गया है।

ललना चक्र (सोम चक्र) - यह चक्र मनस चक्र से कुछ ऊपर की ओर है। इसमें - श्रद्धा, संतोष, शुद्धता, शक्ति, स्नेह, वैराग्य, अपराध, दुःख, मान, मनोद्वैग, क्षुधा, तृष्णा के केन्द्रगत वृतियों का कारण माना गया है। इसके बारह दल की व्याख्या मनिषियों ने की है।

यहां पहुँच जाने वाले साधक तुर्यावस्था की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। अमृत का बुन्द जो पिनीयल ग्रंथि से टपकता है उसका स्थिरीकरण ललना चक्र पर कर लेने से साधक अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

सूर्य चक्र (प्राण चक्र) - नाभि से चार अंगुल ऊपर दाहिने भाग के

जिगर के (किडनी) के पास सूर्यचक्र की स्थिति बतायी गयी है। इसको प्राण चक्र भी कहा गया है।

चूंकि यहां प्रकृति प्रदत्त प्राण ऊर्जा सम्पूर्ण स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर के नस नाड़ियों एवं पूर्ण शरीरीय प्रारूप को प्राण ऊर्जा दे, जीवन्त रखती है। यह सूर्यबिम्ब के समान छोटे आकार का है। लेकिन जल तत्व प्रधान समान प्राण के क्षेत्र में है।

चन्द्र चक्र - यह चक्र भी नाभि से ऊपर शरीर के बांये तिल्ली के पास सूर्यचक्र से दो अंगुल हटकर एवं उससे कुछ ऊपर सूक्ष्म शरीर में अवस्थित है। यह चक्र भी समान प्राण के जलिय क्षेत्र में है एवं रस विभाजन तथा रस प्रेरक रूप में हृदयगति एवं पूर्ण शरीर को रस प्रदान कर जीवन्त रखती है। इसका स्वरूप चन्द्रबिम्ब की तरह है।

प्रेंक्रियाज नामक रसायन इसी चक्र के नियंत्रण में है एवं अमाशय रस, जठर रस तथा पित्तरस के रूप में भोजन का परिपाक करता है।

1008 (एक हजार आठ) फेरा डाले मटर के दाने बराबर अण्डाकार केश से पतला नाड़ी गुच्छक अपना स्पंदन क्षेत्र, मस्तक से चार अंगुल ऊपर, विश्व ब्रह्माण्ड के ज्ञानक्षेत्र एवं प्राण ऊर्जा के कम्पन्न क्षेत्र से बनाए रखता है।

लेकिन नीचे का सिरा गुहानी नाड़ी जो सुषुम्ना नाड़ी से लिपटते हुए आत्मा रूपी लक्ष्मी एवं विष्णु रूपी, ब्रह्मरंध्र से एकाकार हो, शिव रूपी अर्द्धनारीश्वर का रूप लेकर, आज्ञाचक्र पर तीसरे आंख के रूप में निकलते हुए,

ईंगला, पिंगला, स्वशन नाड़ी से रस्से के लपेटे की तरह लिपटी हुई, दो भागों में दोनों आंख की कौरनियां में फैल जाती है एवं दृष्टिगत चित्रों को भी मस्तिष्क के तीसरे भाग में स्थिति दृष्टिपटल, पर अपना प्रतिबिम्ब फेंकती रहती है।

अनाहत से नीचे काम क्षेत्र को अंध बिन्दु से नीचे से नीचे एवं ज्ञानक्षेत्र को इसी अंध बिन्दु से ऊपर दर्शाया गया है। चक्रों, ओरामंडल एवं कामक्षेत्र एवं ज्ञानक्षेत्र की व्याख्या सम्पूर्ण पुस्तक में की गयी है।

डरपोक

डरपोक, कायर व्यक्ति हमेशा मृत्युवत् है। उसकी छाप हमेशा चेहरे पर दृष्टिगोचर होती है। सफल व्यक्तिव प्राप्त करने हेतु निडरता से जीयें !

सूक्ष्मलोक

इसमें पृथ्वी के जीवन-मरण के व्यापार से गये सूक्ष्म शरीर में स्थिति कारण शरीर में आत्मा का निवास है। तीनों सतह (लेयर) के लोकों में निम्नस्तर के आत्मा से लेकर साधु संतो के स्तर की भी आत्माओं का निवास है।

लेकिन इन लोकों में इच्छाशक्ति से निर्माण की कोई व्यवस्था नहीं है । ये सूक्ष्म शरीर वाले, स्थूल शरीर वाले मनुष्य पर आवेशित होकर ही अपनी इच्छा की पूर्ति करते हैं। कामी-कामी पर, लोभी-लोभी पर, साधु-साधु पर केन्द्रीत होकर अपनी लिप्सा को शान्त करते हैं।

प्रेत योनी लिप्सा की योनि है। हमारे बचे, काम क्रोध, लोभ, मोह के कई जन्मों के कर्मबंधन से आगे की योनि का व्यापार चलता है।

मनुष्य की भाषा बैखरी होती है एवं उसका कम्पन्न 32 के लगभग होता है। **प्रेत की भाषा मध्यमा हो जाती है** जो हमारे शरीर के ओरामंडल के कम्पन्न से प्रेत पढ़ पाता है। जिस तरह हम जीवन को जीते होते हैं। प्रेत योनि उसी का प्रतिफल है। उसका कम्पन्न 28 होता है।

मरते वक्त कुछ क्षणों में ही अपने पिछले जन्मों का एवं वर्तमान का लेखा-जोखा हमारे मस्तिष्क में आ जाता है एवं अन्तिम कामना मेरी उसी तरह की हो जाती है।

अगर मनुष्य होशपूर्वक मरना सीख लें, तो उसका दूसरा जन्म भी होश पूर्वक होगा। मनुष्य जन्म से ही, न्यूरानसेल के प्रतिदिन टूटने से प्रतिदिन मरता ही रहता है।

मनुष्य को दो समय में जरूर विरक्ति आती है। मृत्यु और जीवन के बारे में सोचने का मौका मिलता है । एक बार शमशान घाट पर एवं दूसरी वार मैथुन के बाद।

लेकिन फिर दैनिक क्रिया में लगने के बाद हम अपनी विरक्ति को भूल जाते हैं। मौत तो एक ऐसी क्रिया है जो हमें नवीन कर जाती है। अगर साधुता, दयावान एवं क्षमावान होकर हमने मुदिता से जीया है, तो मौत हमें नवीकरण कर जाती है।

तीन सूक्ष्मलोक के बाद हाकनी-राकनी-शाकनी-लाकनी लोक है। जिसमें घृणा, द्वेश, हिंसा से जीये लोगों का स्तर है।

इसके अलावे तांत्रिक, मांत्रिक एवं सिद्ध पूरूषों का स्वर्ग-नर्क की तरह के अलग-अलग लोक हैं।

प्रकृति का नियम है कि जो पाप-पुण्य, धर्म, दया, क्षमा हम कर जाते हैं, उसका प्रतिफल हमें निश्चित ही भोगना पड़ता है। वो किसी के काटे नहीं कटता। केवल काटने का एक ही उपाय है कुण्डलिनी जागरण।

कुण्डलिनी जागरण में जब कुण्डलिनी की सर्पिनी जागती है, तो शक्ति उर्ध्वगति पकड़ लेती है। हम मनुष्य जो भौतिक जगत में जी रहे हैं, वह ऊर्जा हमारी अधोगति की ओर बह रही है।

भूं, भूवः स्वहः अधोगति की स्थिति नीचे की ओर है। इससे नीचे पैर तक और सात अधोगति की स्थिति है। जो नाभिचक्र यानि मणिपूरक चक्र में दर्शायी गयी है। आत्मा की गति प्रकाश वेग में है। यानि एक लाख छियासी हजार कि०मील प्रति सेकेण्ड (186000)।

सूर्य तक आत्मगति से जाने में लगभग साढ़े नौ मिनट लगते हैं। यह ईथर की थ्रिलिंग गति में है। लेकिन कुण्डलिनी की गति (345000) तीन लाख पैतालिस हजार मील प्रति सेकेण्ड है जो आत्मगति से दोगुना से कुछ कम है।

लेकिन यह कुण्डलिनी शक्ति केवल मनोमय शरीर तक की गति है। कुण्डलिनी द्वारा ऋषि, मुनि, साधु या गृहस्थ अगर चौथी स्थिति मनोमय शरीर तक जा सकते हैं, तो तांत्रिक-मांत्रिक, डायन ओझा भी मनोमय शरीर तक जा सकते हैं।

लेकिन तांत्रिक, मांत्रिक के योग का मार्ग पिपालिका मार्ग के दूसरे छोड़ से है। ये षट्चक्र के सभी दलों के फ्रिक्वेंशी को मंत्र के अलग-अलग विधि से जगाते हैं। जैसे लं,बं,रं,यं बीज मंत्र से संबंधित मंत्रों का सहारा लेकर आगे बढ़ते हैं।

लेकिन मांत्रिक लोगों का मृत्यु बरदान नहीं है। उन्हें कुण्डलिनी जागरण से जो शक्ति प्राप्त है, उसके कारण हाकनि, शाकनी, डाकनी, लाकनी लोक मिलता है जो बहुत विध्वंशकारी योनि है।

कुण्डलिनी जागरण के कारण नीचे के लोकों में प्रवेश की सुविधा नहीं है। यानि जब कुण्डलिनी मूलाधार से नाभिकुण्ड तक प्रकाशवान होती है तो हम पृथ्वी तत्व से निर्मित चार कोशिका जीव में जन्म नहीं ले सकते ।

जब कुण्डलिनी स्वाधिष्ठान क्षेत्र तक जागती है जो स्वाधिष्ठान जलीय तत्व का प्रतीक है। इस पर अर्द्ध चन्द्रमा और ''मगर'' इसका प्रतीक है। तो हम जलचर जीव में कभी जन्म नहीं ले सकते।

जब नाभि क्षेत्र के आधे क्षेत्र तक कुण्डलिनी जागती है, तो नभचर तक की योनी में जन्म लेने की सारी सुविधा समाप्त हो जाती है।

मनुष्य योनि अंतरिक्ष के ब्लैक होल की तरह नाभि केन्द्र पर 42 लाख योनि पर खड़ी है। जैसे अतंरिक्ष में ब्लैक होल के द्वारा दूसरे सौरमंडल में जाने का रास्ता है। वैसे ही आधी-नाभि केन्द्र के बाद कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में जाने का रास्ता है।

शरीर दो भागों में बँटा है -

(१) कामक्षेत्र (आधे नाभि चक्र तक)

(२) ज्ञानक्षेत्र (आधे नाभि से सहस्त्रार तक)

इसलिए हाकिनी, शाकनी, डाकिनी, लाकनी के लोकों का कर्मबंधन भोगने के बाद ऐसी आत्मा, हिटलर, स्टालिन, चंगेज खाँ, तैमुर लंग जैस विध्बंशकारी मनुष्य योनि में पैदा लेती है। यह आत्मा जब पृथ्वी पर किसी कारण से आती है, तो पृथ्वी के ऊपर प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित करती है।

भयानक युद्ध, महामारी, तूफान में ये आत्माऐं बहुत सहायक होती है।

तांत्रिक भी ध्यान लगाते है। इनको भी मूलाधार चक्र नाभिचक्र एवं आज्ञाचक्र के अन्तर्गत साधना की जरूरत होती है। लेकिन इनकी साधना बहिर्मुखी होती है। योगी **शरीर के भीतर** और तांत्रिक **शरीर के बाहर** ध्यान लगाता है। शरीर के तल पर धोर अंधकार है। शरीर की भोजन रोटी है। मन के तल पर घोर आवाज है, बहुत सारी ध्वनियाँ हैं।

मन के विस्तार पर सैकड़ों जन्मों का इतिहास है। मन का भोजन और आवश्यकता **सुख** है। आत्मा के तल पर शान्ति और **आनंद** है।

आत्मा की आवश्यकता परमात्मा है !

आत्मशरीर का केन्द्र विषुद्धाय चक्र से है। इसी शरीर के द्वारा मनःशक्ति, सूक्ष्म शरीर, वासना शरीर और अन्त में स्थूल शरीर से जुड़ती है। स्थूल शरीर कर्मशरीर के साथ भोग शरीर भी है।

समाधि तो चौथे शरीर मनोमय शरीर के बाद की स्थिति में आती है। मांत्रिक, कापालिक, चौथे शरीर से ऊपर जा नहीं सकते। चौथे शरीर के प्राप्त मांत्रिक बहुत खतरनाक हो जाते हैं। वे मंत्र के संकल्प शक्ति से कुछ भी आश्चर्य का कौतुक दिखला सकते हैं।

लेकिन इनकी मनुष्य योनि के बाद की योनि बहुत दुखदायी होती है, चूंकि वे शुरू से ही विध्वंशकारी प्रेतो के वातावरण में रहते हैं।

इनकी मुक्ति नहीं है। चूंकि इनकी कुण्डलिनी जागरण तामसिक साधना से होती है। ऋषि मुनि, साधु, संत और गृहस्थ जो कुण्डलिनी जगाते हैं, वे राजसी और सात्विक तरह के लोग होते हैं।

पहले तो बिना गुरू के सानिध्य वगैर यह तप संभव नहीं है। **थोड़ी सी भूल होने से मनुष्य का जीवन ही संकट में आ जाता है।**

कुण्डलिनी जागरण के कई मार्ग हैं -

(१) विहंगम, (२) पिपालिका (३) कच्छप

(१) **विहंगम मार्ग** - हम गृहस्थों के लिए काफी उपयुक्त है। इस साधना में भी स्त्री के सहयोग की जरूरत पड़ती है।

विहंगम मार्ग की मूल भित्ति कामकेन्द्र में जो अतिरिक्त ऊर्जा जमा होती है। उसको वासना में न प्रयुक्त कर उर्ध्वगति को उपलब्ध होकर तीसरी आँख के सहयोग से सक्रिय एवं क्रियाशील करना है।

विहंगम मार्ग में तीन चरण है-

प्रथम चरण में ऊर्जा को नियंत्रित एवं संकलित किया जाता है।

दूसरे चरण में ऊर्जा को जाग्रत करना और उथ्तित करना ।

तीसरे चरण में उसे मस्तिष्क केन्द्र में स्थापित करना।

इस मार्ग में केवल दो चक्रों, मूलाधार और आज्ञाचक्र की प्रधानता है। तंत्र की भाषा में ऊर्जा और उसका उपयोग, संकलित नियंत्रित, चैतन्य होकर गतिशील होता है। दूसरे चक्र आज्ञाचक्र में जाकर क्रियाशील और संकलित होती है। बीच में नाभि चक्र को छूकर जाना एवं सक्रिय करना तो पड़ता ही है !

नाभि चक्र यानि मणीपूरक चक्र का आधा भाग स्थूल शरीर में है। स्थूल शरीर में जो आधा भाग है वह नाभि प्रदेश के निकट है।

वास्तव में मणिपूरक चक्र स्थूल और सूक्ष्म शरीर, दोनो शरीर का विभु है। दोनो शरीर पर उसका प्रभूत्व है। इसलिए नाभि प्रदेश को अति महत्वपूर्ण बतलाया गया है और इसे बतलाया गया है अत्यन्त रहस्यमय भी।

मृत्यु के समय नाभि प्रदेश से ही स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग होता है एवं अलग होकर अपनी अनंत यात्रा पर निकल पड़ता है। इसके प्रतीति में ब्रह्मा को दिखलया गया।

मूलतः मनुष्य में दो केन्द्र शरीर के दो भागों में बँटा है। कामकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्र। कामकेन्द्र के सीमा के अन्तर्गत तीन केन्द्र है या चक्र कहें जो सक्रिय हैं।

(क) स्थूल जगत (मूलाधार)
(ख) वासना जगत (स्वाधिष्ठान)
(ग) आधा नाभि केन्द्र (मणिपूरकचक्र)

कामकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र में प्रवेश संधिकाल योगतंत्र की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें प्रवेश यानी दूसरे शरीर जो सूक्ष्म शरीर है, उसमें प्रवेश है। कामकेन्द्र का संबंध तो वैश्वानर जगत तक है। लेकिन ज्ञानकेन्द्र का संबंध जिसमें तीन चक्र की प्रधानता है उसमे है।

(१) अनाहत चक्र (२) विशुद्धाय चक्र
(३) आज्ञा चक्र इन तीनों चक्रों का संबंध क्रमशः
(१) देव मंडल (२) सिद्ध मंडल
(३) ऋषि मंडल से समझना चाहिए।

इन मंडलों तक "मैं" का बोध बना रहता है। ये मंडल सूर्य की परिधि में है। जो चतुर्थ आयामी हैं। वैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सात मंडल है-

(१) ऋषि मंडल (४) सौर मंडल
(२) देव मंडल (५) नक्षत्र मंडल
(३) पितृ मंडल (६) चन्द्र मंडल

(७) सूर्य मंडल एवं इन सातों मंडलों के अधिष्ठाता हैं, सप्तऋषि एवं सप्तऋषियों के अधिष्ठाता हैं "ध्रुव" ।

रामा, विहंगम मार्ग एवं मातंगी मार्ग

ये विशुद्ध करूणा, मैत्री और मुदिता पर आधारित है।

करूणा		मैत्री		मुदिता	
प्रेम	दया	द्वेश	घृणा	प्रसन्नता	अत्यधिक आनंद

करूणा – अगर हम किसी को प्रेम और दया करते हैं, तो इसके लिए माध्यम तो चाहिए। समाज चाहिए, प्रेमी चाहिए ।

लेकिन करूणा की स्थिति प्रेम और दया की साम्यावस्था माने। साम्यावस्था किसी भी हालत में बहुत शक्तिशाली होती है।

जब कोई जहाज समुद्र में डूबता है, तो उसको ऊपर तल की ओर उठने का स्वभाव होता है। लेकिन मीलों गहराई में जाने पर एक ऐसा बिन्दु आता है कि जब अपने भार से वह अन्दर चला जाता है। तो फिर ऊपर आने की कोई संभावना नही होती। अंतरिक्ष में भी जब चन्द्रमा और पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र एक बिन्दु पर मिलता है, तो उस क्षेत्र पर कुछ भी स्थिर रखा जा सकता है। उसी मध्यविन्दु पर वैज्ञानिकों ने सेटेलाईट स्टेशन बनाया है।

मध्य बिन्दु की स्थिति

	मध्य	
इलेक्ट्रॉन	न्यूट्रॉन	प्रोटॉन
पृथ्वी / पाताल	मध्य	चन्द्रमा आकाश
स्वर्ग	समाधि	नर्क
ईंगला	सुषुम्ना	पिंगला
ब्रह्मा	विष्णु	महेश
प्रेम	सबुरी, संतोष, करूणा	घृणा, द्वेष
श्रद्धा	प्रेम	विश्वास
जन्म	आत्मा	मृत्यु
करूणा	मैत्री	मुदिता

वास्तव में मणिपूरक चक्र स्थूल और सूक्ष्म शरीर, दोनो शरीर का विभु है। दोनो शरीर पर उसका प्रभूत्व है। इसलिए नाभि प्रदेश को अति महत्वपूर्ण बतलाया गया है और इसे बतलाया गया है अत्यन्त रहस्यमय भी।

मृत्यु के समय नाभि प्रदेश से ही स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग होता है एवं अलग होकर अपनी अनंत यात्रा पर निकल पड़ता है। इसके प्रतीति में ब्रह्मा को दिखलया गया।

मूलतः मनुष्य में दो केन्द्र शरीर के दो भागों में बँटा है। कामकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्र। कामकेन्द्र के सीमा के अन्तर्गत तीन केन्द्र है या चक्र कहें जो सक्रिय हैं।

(क) स्थूल जगत (मूलाधार)

(ख) वासना जगत (स्वाधिष्ठान)

(ग) आधा नाभि केन्द्र (मणिपूरकचक्र)

कामकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र में प्रवेश संधिकाल योगतंत्र की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें प्रवेश यानी दूसरे शरीर जो सूक्ष्म शरीर है, उसमें प्रवेश है। कामकेन्द्र का संबंध तो वैश्वानर जगत तक है। लेकिन ज्ञानकेन्द्र का संबंध जिसमें तीन चक्र की प्रधानता है उसमे है।

(१) अनाहत चक्र (२) विशुद्धाय चक्र

(३) आज्ञा चक्र इन तीनों चक्रों का संबंध क्रमशः

(१) देव मंडल (२) सिद्ध मंडल

(३) ऋषि मंडल से समझना चाहिए।

इन मंडलों तक "मैं" का बोध बना रहता है। ये मंडल सूर्य की परिधि में है। जो चतुर्थ आयामी हैं। वैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सात मंडल है-

(१) ऋषि मंडल (४) सौर मंडल

(२) देव मंडल (५) नक्षत्र मंडल

(३) पितृ मंडल (६) चन्द्र मंडल

(७) सूर्य मंडल एवं इन सातों मंडलों के अधिष्ठाता हैं, सप्तऋषि एवं सप्तऋषियों के अधिष्ठाता हैं "**ध्रुव**" ।

ये विशुद्ध करूणा, मैत्री और मुदिता पर आधारित है।

करूणा	मैत्री	मुदिता
प्रेम, दया	द्वेश, घृणा	प्रसन्नता, अत्यधिक आनंद

करूणा – अगर हम किसी को प्रेम और दया करते हैं, तो इसके लिए माध्यम तो चाहिए। समाज चाहिए, प्रेमी चाहिए ।

लेकिन करूणा की स्थिति प्रेम और दया की साम्यावस्था माने। साम्यावस्था किसी भी हालत में बहुत शक्तिशाली होती है।

जब कोई जहाज समुद्र में डूबता है, तो उसको ऊपर तल की ओर उठने का स्वभाव होता है। लेकिन मीलों गहराई में जाने पर एक ऐसा बिन्दु आता है कि जब अपने भार से वह अन्दर चला जाता है। तो फिर ऊपर आने की कोई संभावना नही होती। अंतरिक्ष में भी जब चन्द्रमा और पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र एक बिन्दु पर मिलता है, तो उस क्षेत्र पर कुछ भी स्थिर रखा जा सकता है। उसी मध्यविन्दु पर वैज्ञानिकों ने सेटेलाईट स्टेशन बनाया है।

मध्य बिन्दु की स्थिति

इलेक्ट्रॉन	न्यूट्रॉन	प्रोटॉन
पृथ्वी / पाताल	मध्य	चन्द्रमा आकाश
स्वर्ग	समाधि	नर्क
ईंगला	सुषुप्ना	पिंगला
ब्रह्मा	विष्णु	महेश
प्रेम	सबुरी, संतोष, करूणा	घृणा, द्वेष
श्रद्धा	प्रेम	विश्वास
जन्म	आत्मा	मृत्यु
करूणा	मैत्री	मुदिता

उस मध्य बिन्दु को फोर्स और ताकत लगाकर पार कर जाने के बाद फिर चन्द्रमा का गुरूत्वाकर्षण ही रॉकेट को अपनी ओर खींचने लगता है।

पानी या धातु किसी भी वस्तु में द्रवनांक (मेंलटिंग प्वाईंट) तक गर्म करने से वह अपना रूप बदल, वाष्प एवं ऊर्जा के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

इस साधना में शुरू से मूलाधार पर कुण्डलिनी जागरण में तो, स्त्री तत्व साधिका की जरूरत पड़ती है ! लेकिन मूलाधार से ऊपर की साधना में "ऊँ" साधना को, अपने साधना के बलपर साधक को आगे बढने में कठनाई नहीं होती है।

चूंकि "ऊँ" का फ्रिक्वेंशी शरीर के फ्रिक्वेंशी से सातों केन्द्र पर मिलाया जा सकता है। ऊँ में स्वयं मैथुनी चक्र का नाद उठता है, जो आगे वर्णन किया गया है। इसलिए साधक को नाभि केन्द्र तक पहुँचने में कोई कठनाई नहीं है।

लेकिन आगे मनोमय शरीर तक के यात्रा में गुरु के सहयोग की निहायत जरूरत पड़ती है। जब मूलाधार चक्र एवं कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में जाने का रास्ता साफ हो जाता है। तो समाधि की स्थिति कभी भी बन सकती है।

लेकिन समाधि में जाने वाले साधक को एक बड़ा खतरा मोल लेना पड़ता है। चूंकि साधक अपने एक पोजिटिव पोल से समाधि में जाता है। इसलिए उसमें स्वयं अपने शरीर में लौटने की क्षमता नहीं होती ।

समाधि में जाने पर स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर रज्जू तन्तु जो अदृश्य धागा है, ब्रह्माण्ड में किसी कोने में चले जाय जुड़ा रहता है।

लेकिन समाधि में गये सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर में लौटने की सुविधा नहीं होती है तो उसका सूक्ष्म शरीर भटकाव में पड़ जाता है।

चूंकि मनुष्य के उम्र से प्रेत की उम्र चार गुणा ज्यादा होती है, इसलिए प्रेत योनि में, बचे जीवन का भाग बिताना पड़ता है, जो बहुत लम्बा हो जाता है। समाधि में जाने के बाद शरीर के (सेल) कोषा में देरी हो जाय तो शरीर मृत्यु की ओर बढ़ने लगता है।

इससे बचने के लिए ही पद्मिनी और चित्रणी नारी के सहयोग की चर्चा की गयी है। कुवाँरी कन्या भी काफी ऊर्जावान एवं पूज्या होती है।

साधक के निगेटिव पोल को वह बगल में रह कर पूरा करती है। जितनी देर समाधि में साधक रहता है, उतनी देर साधिका उसके शरीर की रक्षा शुद्धभाव से करती रहती है, तो शरीर का क्षरण नहीं होता है।

जब साधक को लौटना होता है। तो जिस केन्द्र से साधक समाधि में गया है, उस केन्द्र को वह श्रद्धा पूर्वक अपने अंगूठे से स्पर्श करती है, साधक के स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच निगेटिव पोल का सर्किट भी पूरा शक्तिशाली होकर, साधक का अंतरिक्ष के जिस छोड़ में उसकी आत्मा हो, लौटकर पुनः अपने स्थूल शरीर में आ जाता है।

इसलिए बार-बार योग्य साधिका की चर्चा की गयी है।

शादी के समय 32 गुण मिलाने की प्रथा विवाह सूत्र में बंधने के लिए नर और नारी के लिए हमारे ऋषियों ने बनाई है।

अगर स्त्री-पुरूष का 16 से 20 गुण भी मिल जाता है, तो पुरूष अपने पत्नी के साथ स्वस्थ जीवन बिताता है। चूंकि औरत बराबर के अणुओं से बने होने के कारण पूर्ण होती है और पुरूष के पोजिटिव पोल के सहयोग में उसका निगेटिव पोल हमेशा सक्रिय रहता है। जो उसके शारीरिक एवं मानसिक संतुलन को बनाये रखता है।

विवाह में सात फेरा लेने में सात कसम खिलाने की प्रथा है। इसके मूल में जाने पर ऐसा महसूस होता है कि मानव जीवन तो केवल सात जन्म तक मिलना है। इसके बाद योनि परिवर्तन तो होना ही है। वह कर्मबंधन के हिसाब से ऊपर की योनि में जाय या नीचे की योनि में जाय।

स्त्री पुरूष का गुण ज्यादा से ज्यादा मिले, तो कई जन्मों तक साथ रह सकते हैं। लेकिन आज के आपा-धापी में स्त्रियाँ पुरूष की कालर फाड़ने में लगी होती है। एक जन्म भी साथ चलना मुश्किल होता है।

अगर साधक-साधिका उच्च किस्म् के हों, तो गौलोक तक भी साथ जाने की कसम बराबर सत्य होगी।

हम आज भी राधा-कृष्ण की चर्चा, गोलोक वासी होने में करते हैं। क्योंकि कुण्डलिनी के जागे साधक सातों आयाम तक जाने के अधिकारी हो जाते हैं। अर्द्धनारीश्वर का आत्मखण्ड ही खण्डित होकर, स्त्री और पुरूष में जन्म लेकर अवतार लेते हैं।

बगैर जागे तो पृथ्वी के तीन सूक्ष्म लोक से ऊपर जाने की कोइ सुविधा नहीं है। चाहे अच्छे साधु-संत या अच्छे दयावान गृहस्थ ही क्यों न हो।

मॉंतगी – मॉंतगी साधना तो बिलकुल काम कामेश्वरी के विराट रूप की साधना है। रामकृष्ण परमहंस अपने पत्नी को नंगा कर खड़ा कर देते थे और ''हा माँ'' कहकर साधना में लीन हो जाते थे।

वहाँ तो पत्नी का भाव नहीं रह जाता था। यह विशुद्ध मातंगी योग का रूप है। काली या दुर्गा को भी हम माँ का सम्बोघन कर साधना करते हैं।

(२) पिपालिका मार्ग के कई भाग हैं –

(क) श्यामा – गणिका प्रधान

(ख) रामा – पद्मिनि संस्कार की पत्नी या प्रेयशी

(ग) मॉंतगी – पत्नी भी हो तो कामवासना का रूप नहीं ।

समाधि

समाधि हमारे भावदशा के स्वरूप में सात शरीर की स्थिति में मनस शरीर और आत्म शरीर, आत्म शरीर और ब्रह्म शरीर, ब्रह्म शरीर और निर्वाण शरीर के मध्य की संध्या की स्थिति है। जहाँ रात और दिन के समागम का समता बिन्दु हैं। इनकी उपलब्धियाँ क्रमशः- आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान एवं निर्वाण के रूप में होता है।

समाधि हमेशा दो शरीरो के मध्य घटती है। जहाँ बिचार शून्यता की स्थिति पैदा होकर, हमें निर्विचार समाधि दे देती है। मनस शरीर के अंध बिन्दु से नीचे भी समाधि घटती है। वह केवल एक शरीर के मध्य की भ्रमित करने की स्थिति है। जहाँ विचारणा आक्रमक होती है एवं मन का द्वैत बना रहता है।

लेकिन जब हम पूर्ण समाधि की स्थिति में होते हैं, तो विचारणा एवं स्वप्न हमारे अधिन होता है एवं हमारे मनोदशा के अनुरूप ही नियंत्रित रहता है। जहाँ अद्वैत की भावदशा है एवं योगी के पूर्ण जाग्रतावस्था की स्थिति है। ग्रन्थि भेदन समाधि की स्थिति में ही हो पाती है !

श्यामा मार्ग

इस मार्ग में तांत्रिक की साधना निम्नस्तर की हो जाती है। इसमें गणिका के सहयोग से भी ऊपर उठते हैं। सातवीं शताब्दी से इस साधना में काफी बढ़ोतरी हुई। इस साधना में नैतिकता का कोई स्तर नहीं होता है।

गाँव के बाहर इनका मठ होता है। रात्रि के अंधेरे में इनका सामूहिक व्यापार चलता है। इनके कापालिक गुरु कौलाचार्य होते हैं। पंचमकार विधि से इनकी साधना चलती है।

पंचमकार में –

(क) चना (ख) शराब (ग) चांदी पात्र या नरमुण्ड (घ) माँस (ङ.) मैथून

चना, शराब, माँस ये लोग नरमुण्ड या चाँदी के पात्र में लेकर पान करते रहते हैं। ड्रम का धुन बजता रहता है। स्त्री और पुरूष की संख्या बराबर होती है। कौलाचार्य की भैरवी को कोई नहीं छूता।

लेकिन ये मदमस्त स्त्री-पुरूष माँस और मदिरा के दौड़ में मदमस्त होकर ड्रम के ताल पर नाचते रहते हैं। मशाल जलता रहता है। नाचने के क्रम में कोई जोड़ी साथ नहीं होते सब अलग-अलग मदमस्त होते हैं।

इस साधना में किसी की बहन, भगिनि, भावज भी हो सकती है। लेकिन साधना में किसी के साथ कोई बंधन नहीं है।

जब शराब की उतेजना की आन्तरिक दौड़ तक मदमस्त हो जाते हैं, तो मशाल बुझा दिये जाते हैं। ड्रम का आवाज बंद कर दिया जाता है। फिर जिसके हाथ जो जोड़ी लग जाता है। उसके साथ अपने को शिव और स्त्री को शक्ति मानकर समागम करते हैं।

कामवेग के कारण कुण्डलिनी ऊपर की ओर उठ जाती है। साधक में एक नई चेतना आ जाती है। साधना में हवन कुण्ड में सुगंधित कामुकता बढाने वाली जड़ी-बुटी का प्रयोग किया जाता है एवं शिवलिंग की पूजा विधिवत करते हैं। दक्षिण में देवदासी की प्रथा इसी श्यामा मार्ग को अधार मान कर है ।

डायन, योगिनी, मांत्रिक प्रायः बस्तियों में इसी साधना से सिध्दि की ओर बढ़ते हैं। जगन्नाथपुरी, खजुराहों, कोनार्क वगैरह में इसी तंत्र विधा को आधार मानकर मंदिरो एवं गुफाओं में मूर्तियाँ बनायी गई।

आज भी तंत्र में 64 योगनि की चर्चा है, जो देश के विभिन्न स्थानों पर इस विद्या के खासकर बंगाल, छत्तीसगढ़, कामरूकामख्या वगैरह में आज भी इस तंत्र विद्या का बोलबाला है।

कहा जाता है कि शिव जब सती की लाश को कंधा पर लेकर कई वर्षों तक व्याकुल भागते रहे, तो विष्णु अपने चक्र से उस सती के अंग को काट-काट कर गिराते रहे।

जहाँ-जहाँ शरीर का वह अंग और उसका जैसा भाग गिरा, वहाँ वैसी सिद्ध पीठ हो गयी। इस कहानी के चित्रण को भी खंधालने की जरूरत है ! अफ्रिका में भी जंगली बस्तियों में काला जादू का साधना स्थल है। वहाँ मनुष्य को जिबाम्बो बना लेने का जादू काफी प्रसिद्ध है।

जो स्त्री और पुरूष पन्द्रह साल पहले मृत देखे गये। उनको नंग-धरंग स्थित में जंगलो एवं वस्तियों में घूमते एवं करतब दिखाते देखा गया।

वैज्ञानिकों ने एक अंग्रेज स्त्री (जिबाम्बो) को पकड़कर परीक्षण किया तो पाया की उनके शरीर में मेढ़क का बिष एवं संखिया की मात्रा थी।

मेढ़क छः महिना बील में पड़ा रहता है, फिर भी जिन्दा रहता है। ये मांत्रिक किसी व्यक्ति में भोजन द्वारा ऐसा बिष डालते हैं, कि वह मृत घोषित हो जाता है।

फिर बाद में वे उसकी लाश को प्राप्त कर साधना करते हैं। अपने आदेशानुसार उनसे मनचाहा काम लेते हैं। प्रायः यहाँ के देहातों में भी लाश के पास, डायनो, मांत्रिको को सिद्ध करते देखा गया है।

शान्ति

शान्ति तो सबको चाहिए, लेकिन शान्ति तो अपने मन की स्थिति है। ध्यान और समाधिस्थ होने पर तुम भी ब्रह्मलिन हो पाओगे ! गंगा एक, घाट अनेक चाहे जहाँ से पानी पियो गंगाजल ही पियोगे !

मूर्ति का सिद्धान्त

ईश्वर को तो प्रेम और करूणा चाहिए। हम उनसे प्रार्थना पर प्रार्थना किये जा रहे हैं - **"मैं दासा"**। भला दास से भी किसी ने प्रेम किया है। प्रेम तो समानवालों से की जाती है। मित्रता तो मैत्रीभाव से की जाती है।

शत्रु को हम कभी नहीं जीत सकते। चूंकि कितना भी शत्रु को हम जीत ले, उनके अन्दर की शत्रुता को नहीं मिटा सकते !

लेकिन मित्र जीते जा सकते हैं। मूर्ति के आगे घंटी झुला रहे हैं। फूल, अच्छत फेंके जा रहे हैं। लेकिन हमने कभी सोचा है, कि वह बेचारा स्वयं भूखा हमको क्या दे सकता है?

क्या कभी मूर्ति के सिद्धान्तों को हमने समझा है? संगमरमर में यह गुण है कि वह कुछ अपने पास नहीं रखती। संगमरमर पर चले तो सारी गंदगी हमारे पैर में लग जाती है। सर्दी-गर्मी तुरन्त ग्रहण कर लेती है। जितना शुद्ध संगमरमर होगा उतना ज्यादा उसका रिफलेक्शन होगा।

अच्छी मूर्तियाँ चकमक पत्थर एवं शुद्ध काले पत्थर में बनायी जाती है। एक ही पत्थर के टुकड़े में बनायी जाती है। ताकी उसका चुम्बकत्व एवं रिफलेक्शन केन्द्रित होकर निकले, खंडित न हो।

जब हम मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होते हैं, तो भावावेश में आँख भी बन्द हो जाती है। आपके भाव का वेग आज्ञाचक्र द्वारा केन्द्रीत होकर मुर्ति की ओर प्रवाहित हो जाती है एवं उसके चुम्बकीय केन्द्र से टकराकर वापस हमारे ऊपर ही बरस जाती है।

जब हम हाथ जोड़ते हैं, तो मेरे अन्दर से प्रवाहित ऊर्जा हाथ पर बन्द (इन्टर लौक) हो जाती है। आँख जब बिना तनाव के अधखुली पलक पर रखते हैं, तो आँख की ऊर्जा भी इन्टरलोक हो जाती हैं। फिर हमारी सारी ऊर्जा आज्ञा केन्द्र से निकलने लगती है। जो मूर्ति से टकराकर वापस हम पर बरसने लगती है।

मूर्ति तो एक यंत्र है। जो हमारे मन और शरीर के क्षमता के अनुसार हमारी प्रार्थना ही हमपर बरसा देती है।

हमारी आस्था में जैसा वेग होता है। वैसे ही हमारी भौतिक मांगों को वह पूरा कर देती है। अपनी ही सम्पदा मूर्ति से भीख मांगे जा रहे हैं।

याद रखो, दास्ता मत कबुल करो! किसी से कुछ मांगने की प्रवृत छोड़ो! चाहे ईश्वर ही सामने क्यों नहीं खड़ा हो ! इस मांगने की प्रवृत ने हमारे देश को बारह सौ साल गुलाम रखा है। हम समझ रहे हैं कि गांधी के द्वारा आन्दोलन से आजादी मिली।

लेकिन विश्वयुद्ध में अंग्रेज इतने टूट रहे थे कि आजादी देना उनकी विवशता थी। आजादी बहुत सहजता से मिल गयी। इसलिए हम आज भी गुलामी की जंजीर से मुक्त नही हो पाये हैं।

लीडर नेता के पीछे हम स्वार्थ और तृष्णा में भागे जा रहे हैं और दास्ता की मजबूत जंजीर में बंधे चले जा रहे हैं।

मूर्तियों को अगर कुण्डलिनी योग के सिद्ध पुरूषों से स्थापित नहीं किया जाय तो उसपर अक्षत, फूल, प्रार्थना, फेंकना भी बेकार है।

क्योंकि सिद्ध पुरूष के द्वारा मूर्ति स्थापित होती है, तो मुर्ति में एक अलग ऊर्जा का वर्तुल बनता है। जिससे मूर्ति में चुम्बकत्व पैदा हो जाती है। जिस आस्था और विश्वास से हम प्रार्थना करते हैं, वह उसी आस्था और विश्वास को हम पर वापस कर देती है।

जितने ऊँचे सिद्ध पुरूष द्वारा मूर्तियाँ स्थापित की जाती है, उसके ऊर्जा का स्थाई बर्तूल उतना ही बड़ा होता है।

हमारे तीर्थो का भी यही राज है। गुम्बजनुमा मंदिर में तुम ऊँ ध्वनि करो! तो वह गुम्बज के सारे अणुओं से टकरा कर तुम्ही पर बरस जाती है।

यज्ञ में भी प्रायः लोग गोलाकर में यज्ञ वेदी के चारो ओर बैठते हैं एवं ऊँ की फ्रिक्वेंशी अगर सभी साधक की एक जैसी होती है, तो उस ऊँ ध्वनि को देवलोक तक पहुँचने में कोई बाधा नहीं होती। किसी भी मंत्र की फ्रिक्वेन्शी खंडित होते हुए चलती है।

गलत प्रयोग

मस्तिष्क के तीन भागो को विभक्त करने के लिए अलग-अलग शलेष्मा है, जो अतिसंवदेनशील होती है। दो मस्तिष्क तो हमारे दैनिक, अध्यात्मिक, व्यावहारिक एंव सांसरिक ज्ञान विज्ञान को क्रियान्वित करने के लिए हमारे षट्चक्रों द्वारा अनन्त से प्राण ऊर्जा लेती रहती है।

लेकिन तीसरा लघु मस्तिष्क जो मेरूडण्ड के ऊपरी मूल पर है एवं रहस्ममय गुह्मायानि नाड़ी द्वारा सुषुम्ना नाड़ी प्रवाह पर है; बिलकुल अछुता एवं ज्ञान-विज्ञान के अछुण्ण भंडार से जुड़े हुए, ब्रह्मरंध्र से चार अंगुल ऊपर से विश्व-ब्रह्माण्ड से जुड़ा रहता है। कुण्डलिनी का तत्वरित विद्युत वेग उसी में प्रवेश कर, अपना आकाश बदलना चाहता है।

जब कुण्डलिनी जागरण की साधना गति में ऋण एवं धन विद्युत के तत्वरित विद्युत का प्रवाह साम्यावस्था में आना चाहती है, तो कुण्डलिनी जागरण के गलत ढंग से किये गये साधना प्रयोग की स्थिति में यह लघु मस्तिष्क की बाहरी शलेष्मा में उलझकर हमें पागल कर सकती है। पतले शलेष्मा को गाढ़ा कर देती है।

कुण्डलिनी की सर्पिल गति नीचे के अपान वायु में घुसकर हमारे इस शक्तिशाली कुण्डलिनी विद्युत प्रवाह की सुषुम्ना नाड़ी गति के पथ पर विकृति पैदाकर, हमारे साधना को निष्फल करते हुए, मृत्यु तक दे सकती है।

अतः इस कुण्डलिनी साधना में उच्च संस्कार की पत्नी या प्रेयसी एवं प्रेम पूर्ण भावदशा के साथ, ध्यान बिन्दु, काम बिन्दु एवं प्राणायाम द्वारा प्राणशक्ति का संकलन आवश्यक है। जिसके लिए पुस्तक के तीनों भाग में प्रयोग विधि वर्णित की गयी है।

बीज

हर फल में असंख्य बीज होते हैं। जिनमें पेड़ के अंकुरन से लेकर पत्ते, फल उनका विकासक्रम एवं बुढ़ापा, जवानी, सब सांकेतिक अदृष्यऊर्जा के रूप में विद्यमान रहते हैं। जिस तरह आज कम्प्यूटर में लाखों पन्ने की किताब एवं नेट पर दुनिया में उपलब्ध प्रत्येक विषय एवं हर तरह का ज्ञान संकलित रहता है।

उसी तरह मानव के संस्कार में अनन्त आकाश की हर सम्भावनाएँ छुपी होती है। हमारे षटचक्र की सारी उपलब्धियों से लेकर, ज्ञान-विज्ञान की अन्नत श्रृंखला का सागर, मनुष्य के प्रत्येक न्यूरान सेल में संकलित रहता है।

हमारे कर्मबंधित संस्कार में दया, क्षमा, प्रेम, सद्भावना, सत्य, अहिंसा, करूणा, मैत्री, मुदिता सबों के बीज तो होते ही हैं ! जरूरत है माँ-बाप, गुरु, परिजन, समाज के द्वारा उचित वातावरण तैयार कर उन्हें सिंचित कर, संस्कार का उचित वातावरण एवं उर्वरक ज्ञान-विज्ञान की परिपाटी देने की !

हमारे संस्कार का बीज, 60% माँ-बाप, नाना-नानी, दादा-दादी, समाज एवं राज्य का होता है। 40% हमारे पूर्वजन्म एवं कर्मबंधन की श्रृंखला का होता है। सबों के सम्मिलित ऊर्जा से हम मानव का संस्कार लक्षित होता है।

ब्राहम्ण, ऋषियों का उत्कृष्ट आविष्कार

कृष्ण ने गीता के छठे अध्याय के श्लोक में अर्जुन के प्रश्नोत्तर का उत्तर किस तरह दिया है इसको समझो!

अर्जुन के प्रश्न थे, कि "जब योगी योग करते-करते किसी भी परिस्थिति में आकर, योग से भ्रष्ट हो जाता है, तो क्या उसका वह जीवन का तप नष्ट हो जाता है। जिसको उसने अपने सम्पूर्ण जीवन को होम कर जीआ है।"

कृष्ण के उत्तर थे, "नहीं ! जोग से पथ भ्रष्ट जोगी का भी जोग नष्ट नहीं होता हैं"!

"वह दूसरे जन्म में फिर श्रीमन्त धनियों के घर पैदा लेकर अपने पूर्व इच्छाओं को पूरा कर, फिर योग कर हमारे प्रभुतत्व में सम्मिलत हो जाता है।"

"उँचे पहुँचे हुए जोगी भी जो जोग के बहुत उँचाई तक पहुँचकर योग भ्रष्ट होते हैं। उनका जन्म किसी उँच ब्राह्मन कुल के गृहस्थ योगी के घर पैदा लेकर, जनकल्याण करते हुए प्रभुपद को प्राप्त करते हैं।"

ब्राह्मन तो ऋषि मुनियों के वैज्ञानिक शोध का प्रतिफल हैं।

उन्होंने वर्णशंकर की प्रधानता को समझा !

द्रौपदी - अग्नि से पैदा हुई वर्णशंकर थी

भीष्म - गंगा और सान्तनु से पैदा हुए - वर्णशंकर थे।

व्यासदेव - मछोदरी और परासर ऋषि से पैदा लिए, वर्ण शंकर थे।

राम - ऋषि के खीर से पैदा लिए, वर्णशंकर थे।

पाण्डव - व्यासदेव के चक्षु मथन से पैदा लिए-विदूर, धृतराष्ट, पांडव वर्णशंकर थें।

यूधिष्ठिर भीम और अर्जुन - देवताओं के संयोग से पैदा लिए, वर्णशंकर थे।

कृष्ण - कृष्ण और बलराम की कहानी भी कुछ इसीतरह बनती है।- कृष्ण देवकी और वासुदेव से पैदा लिए, देवकी कंस की बहन छत्राणी थी, लेकिन कृष्ण यशोदा के यहाँ पले एवं वासुदेव के यादव होने से यदूवंशी कहलाये ।

कबीर - कबीर सन्त रामानुज से प्राप्त आर्शीवाद द्वारा विधवा से जन्म लेकर, जुलाहे के यहाँ पले और कबीरदास कहलाये।

ऋषियों ने ब्राह्मण जाति को भी कुछ इसी तरह के वर्णशंकर प्रयोग से पैदा किया। सात कुल तक उनके, गोत्र और मूल का विचार कर, फिर ब्राह्मनो में शादी की प्रथा तय की जाती है।

सात पुस्त तक जाते-जाते उनका ब्लड अलग शुद्धतम रूप ले लेता है। फिर उनके मिलन से जो ब्राह्मण पैदा लेते है, वे अति तेजस्वी होते हैं। संसार में अच्छे आत्माओ के निमंत्रण में उनका गृहस्थ जीवन बहुत उपयोगी होता है।

हम हजारो वर्ष का इतिहास उलटा कर देखें तो, हमारे ज्यादा से ज्यादा अवतार राज घराने या उच्च्य ऋषि परिवार में पैदा हुए हैं। राजा हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, विश्वामित्र, गौतम, महावीर, भक्त प्रह्लाद, भक्त ध्रुव आदि उच्च्य आत्माएँ जो संसार को नया रास्ता दिखा गई।

चूंकि राजा भी उच्च्तम योग से चूके योगी हैं। जो अपनी बची इच्छाओं की पूर्ति के लिए राजकोख में पैदा लिए है। ईश्वर का यह प्राकृतिक नियम है, कि जबतक तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो जाती तबतक जन्म-मरण से तुम्हे मुक्ति नहीं है !

हमारी बची इच्छाऐं हमारे आवागमन के रास्ते को बनाए हुए है। हमारी मृत्यू कुण्डलिनी के जागरण के बावजूद जिस केन्द्र के द्वारा हमारा प्राण निकलता है, वही केन्द्र और वही नक्षत्र, ग्रह की दशा में, हम पुनः जन्म लेने के भागीदार होते हैं।

अगर तुम अपने अन्दर के देवालय को इतने श्रद्धा और प्रेम से भर कर पवित्रता और उँचाई दे पाओ! तो इन उच्च्य आत्माओं को प्रतिक्षा है, तुम्हारे काम-कामेश्वरी के मिलन की! प्रतीक्षा है शिवलिंग के परमेश्वरी और परमेश्वर के प्रतिफलन की !

आओं सुधिजन संकल्प लो! कुण्डलिनी जागरण से प्रेम, और श्रद्धा की गंगा बहाने के लिए, की तुम्हारा पूरा भारतवर्ष तीर्थ हो जाय!

तुम्हारे देवालय का घंटघोष इतनी उच्च्य आत्माओं को आमंत्रण दे सकें, कि तुम्हारे अन्दर से बहने वाली गंगा की धार उच्च्य आत्माओं के तीरथ से भर जाय ! तुम भी परमपद प्राप्त कर उच्च्य आत्माओं पर पुष्प वर्षा कर सको !

मस्तिष्क का विकाश क्रम

हम फिर जन्म की प्रक्रिया को ओर वापस लौटते हैं। जब स्पर्म फर्टिलाइज कर दोनों बाँहों का निर्माण कर ब्रह्मा की तरह पुरनी के पात पर नाभि केन्द्र से जुड़े नर्भ द्वारा माँ से जुड़ा होता है। तो उसके चारों ओर नमकीन तरल पदार्थ होता है। यह तरल पदार्थ क्षीरसागर का प्रतीक है।

बच्चे के अंग निर्माण में सोलह नाड़ी के गुच्छक पर 97 (सतानवे) कर्मबंधन की गांठ लगभग 'मरूआ' दाने के बराबर विकासित होती है।

नमक कर्मबंधन के गांठ को मजबूत और पक्का करता है। जो बच्चे को गर्भ में ही कई पूर्व जन्मों के संस्कार एवं उनके पूर्वजों के संस्कार को मिलाकर कर्मबंधन की श्रृंखला को वहीं से तैयार कर पक्का करती है। यह कर्मबंधन की गांठ मृत्यु के समय हर नाड़ी से खुलकर सिमटकर मस्तिष्क के अन्दर काली पट्टी पर अंकित हो जाती है। मस्तिष्क में दो काली पट्टी एक सेन्टीमीटर लगभग (1/10) के मोटाई में कनपट्टी से चार अंगुल अन्दर से मस्तिष्क के चारो ओर लिपटी है।

(क) पहली ऊपरी पट्टी में 2 अरब 8 लाख न्यूरान सेल (कोष्टक) हैं, जो बाहर की स्मृति को याद रखती है।

(ख) अन्दर की पट्टी में 3 अरब 65 लाख न्यूरान सेल हैं। यह अन्तरजगत जो विश्व ब्रह्मान्ड के चेतना में रहती है। उनका लेखा जोखा अंकित रखती है।

मृत्यु के समय इस काली पट्टी की स्मृति, सूक्ष्म शरीर में उपस्थित कारण शरीर में अंकित हो जाती है। जो हमें अगले और पिछले जन्मों के संस्कार के अनुरूप जन्म मरण को नियंत्रण में रखें रहती है।

जब शिशु गर्भ में होता है, तो समाधि की अवस्था में होता है। लेकिन बिलकुल अकर्मन्य नाभि द्वारा माता से पोषण प्राप्त करता हुआ, प्रकृति की तामसिक अवस्था में होता है। मनुष्य की मृत्यु भी समाधि की अवस्था में होती है।

जब एमफिबीयाँ की स्थिति ब्लडसुगर (रक्तसर्करा) कम हो जाने की स्थिति में आती है, तो एक तरह से समाधि की स्थिति ही बनती है। अंग्रेजी फिल्म टिटानिक में तीन टिटैनिक फिल्में बनी हैं। उसमें एक फिल्म में एक डाक्टर द्वारा एक मास्क रहते हुए, कैसे वह अपने प्रेमिका को एमफिबिया की स्थिति में लाकर तीन दिन के बाद भी, उसके प्राण को लौटा लेता है। यह दृश्य बहुत सुन्दर ढ़ंग से दर्शाया गया है।

मनुष्य शिशु से लेकर जीवन पर्यन्त प्राकृतिक ढ़ंग से अलग-अलग तरंग की स्थिति में गर्भ में रहता है। अत्यधिक नीद्रा या समाधि में भी 4 कम्पन प्रति सेकेन्ड उत्सर्जित होता है। इसको डेल्टा स्तर के तरंग के नाम से पुकारते है।

(क) गर्भ के चार वर्ष के अन्दर -डेल्टा आवृत का कम्पन्न

(ख) 4 से 6 वर्ष तक का कम्पन - थीटा आवृत का कम्पन्न, 4 से 7 कम्पन्न

(ग) सात से चौदह वर्ष में - अल्फा स्तर का कम्पन्न। अद्वितीय रूप से मस्तिष्क कार्य करता है।

जब हम नीद्रा की स्थिति में होते हैं तो 4 से 7 तरंग प्रतिसेकेन्ड में थीटा स्तर में होते है। जाग्रत अवस्था में एक स्वस्थ मनुष्य का मस्तिष्क कम से कम 14 कम्पन और अधिक से अधिक 19 कम्पन प्रतिसेकेन्ड उत्सर्जित करता हैं। इस अवस्था को वैज्ञानिक "बीटा स्तर" का कम्पन्न मानते हैं।

क्रोध, ईर्ष्या, परेशानी में यह कम्पन्न 21 से 22 प्रतिसेकेन्ड हो जाता है। 40 तक पहुँचने पर सारी एकाग्रता समाप्त हो जाती है। ऊपर जाने पर पागलपन की स्थिति पैदा हो जाती है। विश्राम की स्थिति में 7 से 14 तरंग उत्सर्जित होती है। ध्यान की अवस्था में और कम होने लगती है। इस स्थिति में भी अल्फा तरंग उत्सर्गित होने लगती है। तिब्बत में साधक मरने वाले को छः महिना पहले ही उनमें ओरामंडल पर आये चिन्ह्र से पहचाँन लेते हैं। मृत्यु की घटना किसी के साथ भी आकास्कि नहीं होती। उसका चिन्ह्र हर मनुष्य में ओरामंडल पर छः महिना पहले ही आ जाता है।

तिब्बत के साधक मरने वाले को योगनिद्रा में लाकर अगले जन्म के लिए निर्देश देने लगते हैं, ताकि मृत्यु होशपूर्वक हो सके। इसको "बोरडो" पद्धति बोलते हैं। हर शिशु को छः महिना से दो साल तक अपने पिछले जन्म की स्मृति रहती है। बोरडो संस्कार से गुजरे व्यक्ति को जन्म लेने के बाद, पिछले जन्म की यादास्त कई सालो तक बनी रहती है। ताकि वह अपना जीवन होशपूर्वक बीता सके। महावीर ने अपने सुषुम्ना के स्थान के धड़कन को, जो मस्तिष्क के ऊपर बीच में हर बच्चे में धड़कता रहता है, वैसे ही पोला कर लिया था। वे बच्चे की तरह सहज हो गये थे।

हर बच्चा जब जन्म लेता है तो उसमें 360 हड्डी के निर्माण से शरीर बनता है। लेकिन उसके परिपक्व हो जाने तक 202 हड्डी ही रह जाती है।

विष्णुरंध्र

चित्र संख्या - 17

चित्र संख्या 17 में जो मानवीय मस्तिष्क का चित्रण है, वह स्थूल शरीर के यंत्रवत मस्तिष्क के भाग के रूप में दिखलाया गया है। मस्तिष्क तो पौधे से निकलकर फूल की तरह है। जिसकी क्रिया-कलाप एवं ज्ञान-विज्ञान हम पुष्प के सुगन्ध एवं सौन्दर्य की तरह देख पाते हैं।

जिस तरह पौधे का सारा जड़ पृथ्वी के अन्दर से जुड़ा होता है एवं बीज के प्रकृति के ग्राहकता के अनुरूप फल-फूल की सुगन्ध-दुर्गंध, मिठास- खटास, कांटे-चिकनाहट इत्यादि हम अनुभव करते हैं एवं देख पाते हैं।

मस्तिष्क जिसका जड़ नाभिकुण्ड से जुड़ा होता है एवं मन की काम, क्रोध, लोभ, मोह के क्रिया-कलापों द्वारा मस्तिष्क अपना सम्प्रेषण तरंग छोड़ता रहता है। मस्तिष्क के सेरेब्रल कैमिस्ट्री में, मटर के दाने बराबर एक हजार आठ फेरा डाले (नर्भ) नाड़ी गुच्छक में, अण्डाकार स्वरूप में हमारी ब्रह्माण्ड तक की सारी चेतना समायी हुई है।

विष्णु के शेषनाग रूपी सर्प का शरीर मस्तिष्क के दोनो काली पट्टी के रूप में, सरसैया पर सोये विष्णु के प्रतीक में है एवं विष्णुरंध्र के रूप में दिखलाई गयी है।

सृष्टि में कुछ भी नष्ट करने के उपाय नहीं हैं। चाहे परमाणु का न्यूक्लियर (महारेणु) ही क्यों न हो! सूर्य से चलने वाली किरणें जो नौ मिनट में पृथ्वी पर पहुंचती हैं, वह भी अनन्त में जाकर अपनी प्राण ऊर्जा बदलकर सृष्टि का दूसरा रूप पकड़ लेती है।

तारे भी सैकड़ों प्रकाश वर्ष की दूरी तय करके आती हैं, जो खरबों मील की दूरी पर होती है। उसके एक किरण को भी पृथ्वी पर यंत्र द्वारा पहचान लिया जाता है एवं वह भी हजारों साल की यात्रा करने के बाद भी नष्ट नहीं हो पाती है।

उसी तरह हमारे मानवीय मस्तिष्क में उठते-काम, क्रोध लोभ, मोह का तरंग भी समाप्त नहीं हो पाता है। उसी के तमस् स्वरूप के दमन से, उसका रूपान्तरण रोग-शोक के रूप में मानव समाज को ग्रसित किये हुए हैं।

उसी का रजस् एवं सतज् स्वरूप हमें एक अलग-थलग व्यक्तित्व का प्रकृति पुरूष बनाकर हमें ईश्वरीय रूप दे, चिदानन्द स्वरूपा आनन्दमूर्ति बना रहा है। भगवान महावीर ने इसी को कर्मफल कहा है।

वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क के अलग-अलग भाग का परिक्षण करके भी देखा है, कि अन्तरमन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मस्तिष्क के अलग-अलग क्षेत्रों के विभाजन से वह अपनी चेतना स्वरूप प्राण ऊर्जा में गमन करता ही रहता है।

इसलिए हमें अपनी चेतना के गढ़ को सुदृढ़ करने के लिए, अपने मन के तरंग को नियंत्रित करने के लिए, मन से मित्रवत् व्यवहार करना है ! मन से निसर्गित प्राण ऊर्जा तरंग ही, हमारे कर्मबंधन एवं योनिगत चक्रवात का कारण है।

मन का इन्द्रधनुषी रंग (स्पैक्ट्रम) अपने रंग के प्रकाश बिम्ब की तरह न्यूरान सेल (विष्णुरंध्र ग्रंथिका) में संग्रहित होती रहती है।

समुद्र में विशाल लहरें एवं गंगा नदी में प्रवाह ऊपर से बहुत तेज रहता है। लेकिन गहराई में बिल्कुल शान्त-प्रशान्त एवं शीतल रहती है।

उसी तरह ऊपर के मन के तरंग को अगर मित्रवत् बनाकर निर्मल करने की कोशिश किया जाय, तो तरंग का आकाश बदल जाने से, हम विष्णुरंध्र में संग्रहित हो, ब्रह्मव्यापी हो सकते हैं। बगैर सूक्ष्म तरंग के तो सृष्टि में ब्रह्माण्ड के अनन्त कोने तक कुछ है ही नहीं !

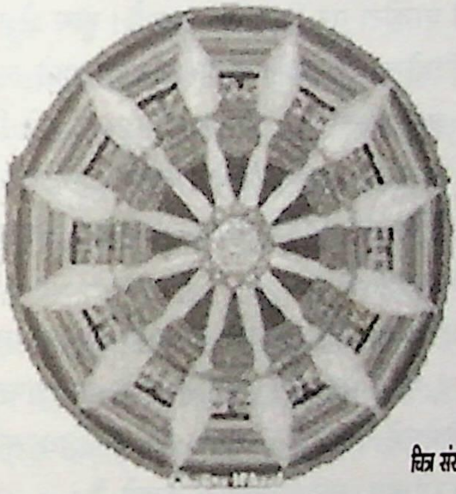

चित्र संख्या- 29

नृत्यावस्था मुदितावस्था
कुण्डलिनी साधना, ब्रह्म साधना !

संख्या- 18

चिन्हित चित्र का चित्रण कुण्डलिनी साधना के स्वरूप में मूलाधार कुण्ड से ईंगल-पिंगला नाड़ी स्वरूप में सर्प-सर्पनी के, सूर्यस्वर एवं चन्द्र स्वर के स्वरूप में दिखलाया गया है।

मुदितावस्था में जब हम नृत्य की शैली में होते हैं, तो हमारी मानसिक गति तरंगायित स्वर लहरी में सूक्ष्म शरीर द्वारा नियंत्रित होने लगता है। हम स्थूल शरीर में नृत्य कर रहे होते हैं, लेकिन हमारा सूक्ष्म शरीर आनन्दातिरेक में आकाश के शून्य में नृत्य कर रहा होता है।

योग साधना में त्वरित कुण्डलिनी विद्युत को थामने के लिए अंग-प्रत्यंग के स्नायू संस्थान एवं मांस, मज्जा को व्यवस्थित करने की जरूरत है।

इसलिए चित्र में एक तरफ तो नृत्यशैली को दिखलाया गया है एवं दूसरी ओर आयाम-प्राणायाम एवं आसन मुद्रा को ईंगित किया गया है। मुदितावस्था में नृत्यावस्था की शैली, ह्दय को आन्दोलित कर देती है। निर्झर प्रेम की भावदशा बनती है; जो चित्र को हृदय के आकार का बनाकर दिखलाया गया है।

हमारे षट्दल चक्र के पंखुरियों, को सभी चक्रो के दलिय स्वरूप में चित्र के बाहरी एवं भीतरी परकोटा पर दिखलया गया है। नृत्य शैली में भाव विभोर होने पर हम भावना की विभोरता में ब्रह्मबिन्दु में एकाकार हाने लगते है। उसके संगीत स्वर में हाथ उठाये, ब्रह्म साधन में ँ नमस्कार साधना को दिखलया गया है।

नृत्यावस्था में गायन शब्द तरंग एवं वाध्य तरंग पर हमारे शरीर के सारे चक्र झंकृत हो उठते हैं। उसके स्वरूप में अक्षरों के मंत्र स्वरूप ओंकार स्वरूप को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

वैदिक काल से ही सामवेद के स्वरूप में गायन एवं नृत्य की शैली को ब्रह्मसाधना का स्वरूप माना गया है। हम शिव को भी ताण्डव नृत्य की मुद्रा में, नटराज की भाव भंगिमा में देखते हैं। रावण को भी शिव स्त्रोत का ताण्डव स्त्रोत झुमकर और नृत्य करते हुए, मुदितावस्था में देखते हैं।

उच्चलोक की श्रेणी में गंधर्व लोक की ब्याख्या शास्त्रों में आती है। जहाँ गन्धर्वसेन एवं चित्रसेन जैसे नर्तक एवं वाद्यय गायक देवता स्वरूप में देखे जा रहे हैं।

इन्द्र के दरबार में जहाँ गुरू के रूप में बृहस्पति बैठे है; वहाॅ सारे देवताओं के समक्ष मुदितावस्था के आनन्ददायक भावदशा में अप्सराओं को नृत्य करते दिखलाया जा रहा है।

कहा गया है, कि सौ अश्वमेद्य यज्ञ करने के बाद इन्द्र का पद मिलता है एंव सहत्र (हजार) अश्वमेध यज्ञ करने पर ब्रह्मा का पद मिलता है। लेकिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण में मनरूपी घोड़ा पर नियंत्रण ही, अश्वमेध यज्ञ है!

अश्व, मतलब धोड़ा! मेध मतलब काटना! अश्वमेध मलतब, घोड़ा काटना! जो अश्वमेध का स्वरूप मनःशक्ति का चित्‌शक्ति में रूपान्तरण कर आत्मशक्ति में स्थितिप्रज्ञ हो जाने का स्वरूप ही है!

लेकिन इसके बावजुद हम देखते हैं, कि इन्द्र, लालसाओं कामनाओं, वासनाओं के भंवर में ज्यादा फंसे है एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश के प्रिये पात्र बने देवताओं के राजा होकर, राज सिंहासन पर विराज रहे हैं। राजाओं के विलासिता स्वरूप में नृत्यांगनाओं के नृत्य शैली पर देवताओं, ऋषियों के बीच मुदितावस्था में बैठे हैं।

लेकिन यह सारी भावनाओं का स्वरूप हम मानव जाति के भाव-भंगिमा का है। हम किसी भी भाव-भंगिमा को अपने मन में उठते तरंग में ढ़ाल लेते हैं। चाहे कहने-सुनने एवं नाचने, गाने वाले का उद्देश्य एंव भाव भंगिमा कुछ भी हो!

अगर हममें वासना है, या मद है, या भक्ति या प्रेम है! हम अपने मनोवृत के अनुकुल उसके नृत्य या गायन से अपना भावनात्मक स्वरूप बना लेते हैं।

अर्जुन भी गायन एवं नृत्य विद्या में पारंगत थे। कृष्ण भी रासलीला एवं प्रेम हिडोले पर बैठने में पारंगत थे। लेकिन महाभारत जैसे युद्ध को अंजाम देने में, वे नर और नारायण के स्वरूप में देखे गये। जो महाभारत लाखो वर्ष की उच्च्य अध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के विनाश का कारण बना था।

अठारह दिन की लड़ाई में, अठारह अच्छौनी सेना की आहुती पड़ गयी थी। मानव इतिहास में ऐसी लड़ाई और विनाश लीला कभी नहीं देखी गयी। जहाॅ परमउत्कर्ष पर पहुँची, हमारी मानव सभ्यता ही डूब गयी।

हमारा आज का विज्ञान तीन सौ वर्ष की उपलब्ध्यिाँ है। जिसमें सौ वर्ष में मानव इतिहास का विज्ञान परमउत्कर्ष पर है। जिसमें दो विश्वयुद्ध लड़े गये हैं।

लेकिन सभ्यता की डोर टूटी नही है। तीसरे महायुद्ध की विभिषिका की कल्पना में आणविक अस्त्र-शस्त्रों की होड़ लगी है।

महाभारत काल में तो लाखो वर्ष की सभ्यता नष्ट हो गयी! आज हमारे इलेक्ट्रोनिक युग के विज्ञान को उच्च्य माना जा रहा है।

लेकिन हमारे मनिषियों ने अपने अध्यात्मिक शोध प्रकरण में चौसठ योगनि और चौसठ विज्ञान स्वरूप में, पूरे ब्रह्मामण्ड की रहस्यमयी - गति, आकर्षण, विकर्षण, रश्मि, किरण, रंग, गुरूत्वाकर्षण, ताप, नक्षत्र, ग्रह, आकाश गंगा एवं तंत्र-मंत्र के स्वरूप में अनन्त ब्रह्माण्ड के कम्पन्न तरंग पर, दिव्यआत्मा देवी-देवताओं से सम्पर्क का विधान भी ढूढ़ लिया। जिस ज्ञान-विज्ञान पर हमारे अध्यामिक विज्ञान की नींव टिकी है।

अब तो कुछ अवशेष बचे विज्ञान हैं! लेकिन उच्चतम् विज्ञान की पराकाष्टा तो महाभारत के युद्ध में आहुती चढ़ गयी।

युद्ध हमेशा से हमारे विनाश का कारण बना है। हमारी शान्ति, हमारी मुदितावस्था की मानसिक गति खोती आयी है। लेकिन मन के युद्ध को साम्यावस्था में लाकर ही, इस महायुद्ध की विभिषिका से बचा जा सकता है।

जिसके लिए हमारे साम्यावस्था की मुदितावस्था परम आवश्यक है। जो हमारी हृदयगति को भावनात्मक प्रेम और आस्था में ले जाय। इसके लिए नृत्य और गायन भी, ऋषिसम्मत अध्यात्मिक विधान है। जहाँ भावनात्मक दावानल का रूपान्तरण प्रेम विह्वलता में कर, भक्ति और प्रेम के सागर में डूबा जा सकता है।

पुस्तक में भी कुण्डलिनी साधना के क्रियास्वरूप में नृत्यावस्था में ऊँ का ध्यान कर अपने मनोविकार को निकालने का स्वरूप दर्शाया गया है।

तीर्थ

हिमालय से गंगा निकली, लेकिन हरिद्वार तीर्थ हुआ गंगा प्रवाह के कारण। मूलाधार के रेगिस्तान से भी जब कुण्डलिनी की गंगा प्रवाह फुटेगी तो अपना कल्याण करते हुए, जनकल्याण कर पाओगे !

आज्ञाचक्र तपलोक

चित्र संख्या-19

हमारे मनस शरीर के दो रूप हैं, जो कल्पना और स्वप्न से भ्रमित हो सकता है । 'ऊँ' सातवें शरीर की स्थिति है । लेकिन पकड़ी जा सकती है मनस शरीर के हृदयचक्र (अनाहत चक्र) से ही । इस मनस शरीर का दूसरा स्वरूप, संकल्प और दिव्यदृष्टि एवं विजन (दृष्टि) का है । जो नाभि चक्र और आज्ञा चक्र के कम्पन्न में संचरित कर सकती है ।

अगर हम 'ऊँ' ध्वनि करते हैं एवं उसका साक्षीभाव होकर उसमें लीन नहीं होकर द्रष्टा और श्रोता हो जाय एवं हमारी अन्तर चेतना जाग जाय, तो चौथे शरीर की दूसरी सम्भावना शुरू हो जाती है । जहाँ तन्द्रा नहीं होगी, योग जागृति की अवस्था आयगी । 'ऊँ' का ध्वनि तरंग एक गूँज में होती है एवं तन्द्रा पैदा करती है ।

जब ही 'ऊँ' ध्वनि का हम पुनरूक्ति करते रहते हैं, तो एक ध्वनि थपकी (थेरापी) पैदा होती है एवं हमें तन्द्रा में ले जाती है । लेकिन साक्षीभाव में आने पर हम तन्द्रिल नहीं रह जाते । हम द्रष्टा बनकर रह जाते हैं एवं हमारी स्वप्न और कल्पना साकार होकर सामने आ जाती है ।

इन्हीं कारणों से विश्वामित्र के सामने मेनका पैदा हो गयी । कोई इन्द्र उन्हें भ्रष्ट नहीं करने आये थे । चूँकि इस मैथुनी जगत में, काम की ही अभिव्यक्ति में क्रोध, लोभ, मोह है ।

ईश्वर को सृष्टि चलानी है! इसलिए हमारा काम ही प्राण ऊर्जा के मूलरूप में हमारे केन्द्रों से संचरित होते हुए, काम केन्द्र पर जमा होती रहती है । चूँकि साधना-बल सधने पर हमारी अपने अन्दर का कामुकता का प्रोजेकशन (प्रतिबिम्बित स्वरूप) बाहर आकर, एक वास्तविक रूप में हमारे सामने खड़ा हो जाता है ।

हमने अपने काम को दबाकर ज्वालामुखी बना दिया है । किसी भी स्त्री को हम बहिर्मन में याद करें, तो कुछ ही क्षण में चेहरा टेढ़ा-मेढ़ा होकर आता है । लेकिन स्वप्न में हम सुन्दर से सुन्दर स्त्री या दृश्य को स्पष्ट एवं लावण्यमय रूप में व्यवस्थित ढंग से देख पाते हैं ।

प्रकृति का अटल विधान है, कि जो काम, या जो मंत्रसिद्धि तमस्, रजस् या सतज् स्वरूप में हम कर लेगें, उसके प्रतिफल में हमें अनुगृहित करने हेतु, उनके

स्वरूप का देवी या देवता को आना पड़ेगा । ब्रह्मा से प्रायः राक्षसों ने भी मुँहमागा वरदान पाया ।

लेकिन वे भी उनको उनके प्राण ऊर्जा के उपलब्धि स्वरूप वरदान देने से बिमुख नहीं हो पाये । मंत्रों की उच्चारण शैली बिन्दुवार टूटते हुए तीर की गति की तरह उच्चारित देवी-देवता के स्वरूप में जमा होती चली जाती है एवं हमारी मंत्रसिद्धि की तरह उनका वरदान देना भोग और मोक्ष में अवश्यमभावी है ।

उनके वरदान स्वरूप हम उन देवी या देवता से बंध जाते है एवं सिद्धियों का भार लिए मेरी उच्चगति परलोक जाने की रुक जाती है । इसलिए इन सिद्धियों का भार, उपयुक्त साधक स्वरूपा शिष्य पर उतारे बगैर सिद्धलोक से ऊपर की यात्रा सम्भव नहीं है ।

'ऊँ' में कम्पन्न गोल में घुमती हुई अनन्त की ओर जाती है । लेकिन चौथे शरीर तक द्वैत है एवं वहाँ तक उच्चारण में नाद की गति है और वहाँ कल्पना एवं स्वप्न में भ्रमित होने की सम्भावना है ।

लेकिन हम एक जन्म में ब्रह्म तक पहुँचने की बात ही नहीं सोच सकते । जैनों के तीर्थकर चौबिस जन्म लेने के बाद निर्वाण की गति पा कर ब्रह्मबिन्दु में समा पाये । कोई भी ऋषि कम से कम चार जन्म में ब्रह्म तक जाने की साधनारत व्यवस्था में आ सकते हैं ।

उन्हें चौथे शरीर के कल्पना एवं स्वप्न को साकार करने के लिए इस मनुष्य के योगमाया रूपी काया में जन्म लेना पड़ेगा ! काम, क्रोध, लोभ, मोह के सभी कर्मबंधन से मुक्त होकर ही अद्वैत की यात्रा सम्भव है ।

हम दामपत्य जीवन में बन्धे स्त्री-पुरुष तो इन्हीं योगमाया के स्वप्नील एवं कल्पना के साकार द्रष्टा हैं । हमारी काम-कामेश्वरी की लीला जो सभी मंत्रों में शिव और शति के अभिव्यक्ति में अनुस्वार के टंकार में हमारे दाम्पत्य जीवन का टंकार है । ब्रह्म का कोई भी अणु धन-विद्धुत एवं ऋण विद्धुत के मिश्रण का स्वरूप है । मंत्र का कोई भी रूप हमारे काम-कामेश्वरी के शिव-शक्ति का रूप है ।

इसलिए हमारा मंत्र अगर **'ऊँ'** है एवं वासना रहित काम ऊर्जा का संबल पकड़ हमारी प्राण ऊर्जा उर्ध्वगति की ओर जाती है, तो हमारा प्रेम और आस्था ही स्वर्ग-नर्क की परिधि पर, केन्द्रक की ओर बढ़ सकती है ।

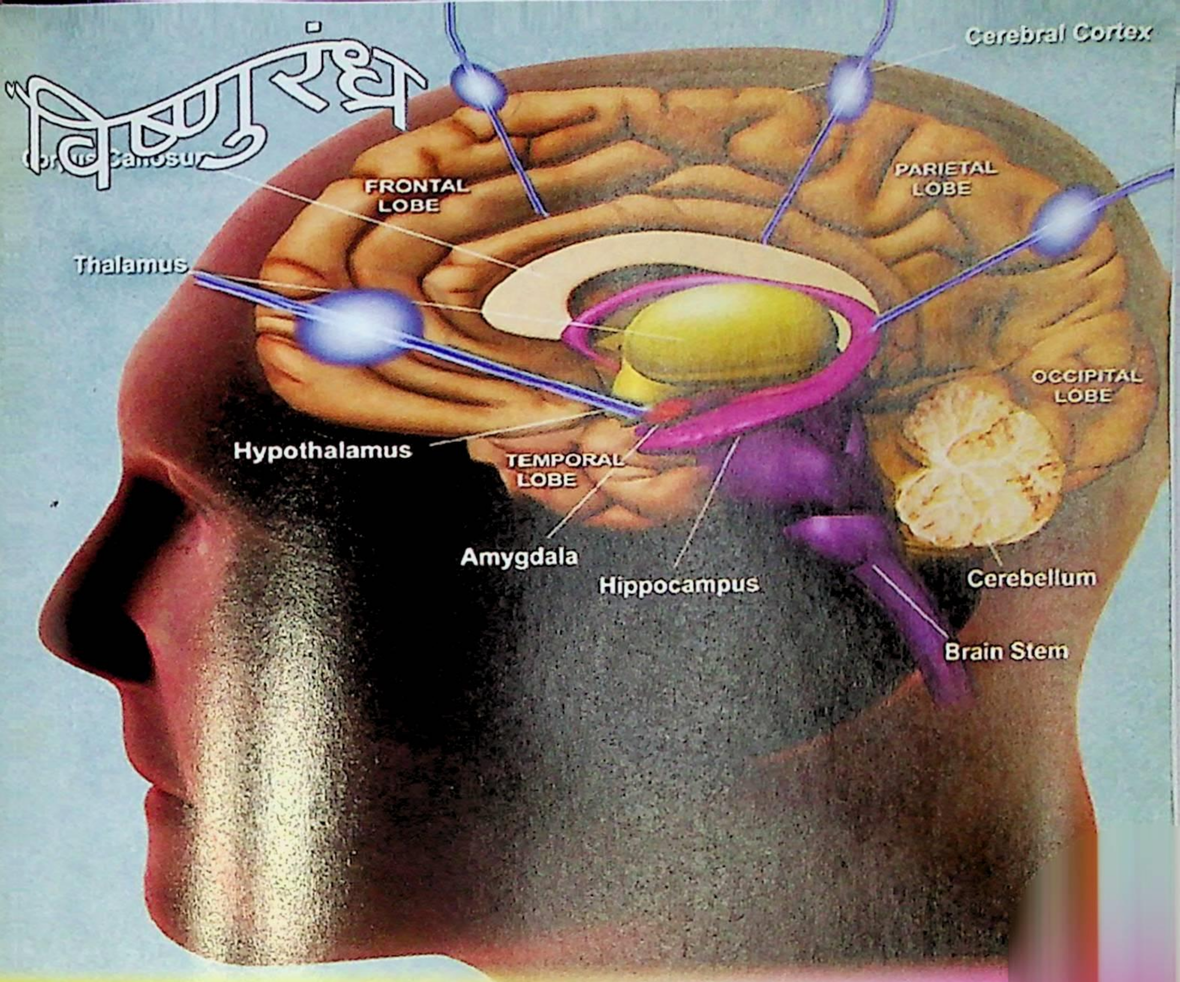

Neuron Cell
(न्यूरॉन सेल)

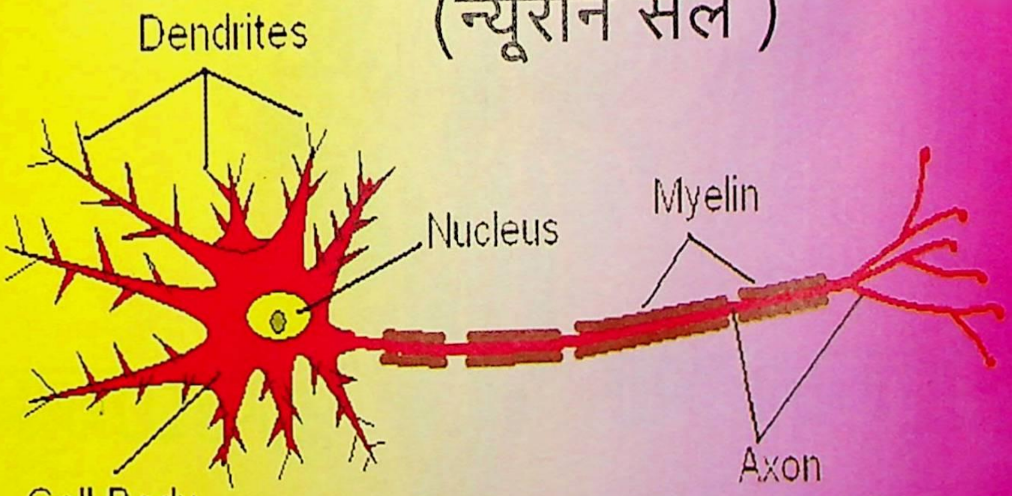

चित्र संख्या- 17

चित्र संख्या-18

चित्र सख्या -19

मनुष्य जन्म चक्र
नारी कि प्रधानता
चित्र संख्या-

मंत्र हमेशा तीव्रता में एवं नुकीला होता है एवं बैखरी वाणी के शब्द टंकार में होता है । मंत्र उच्चारण में हमेशा अन्तराल है और बार-बार ठोकर देकर इसका संकलन हम प्राण ऊर्जा के निर्धारित बिन्दु पर करते हैं ।

मंत्र में हमेशा जागरण है एवं "मैं" का बोध बना रहता है । शब्द गूँज-तमस् भाव से गुजर कर ही रजस् एवं सतज् की ओर बढ़कर, निश्चित बिन्दु पर तीर की तरह समाती रहती है ।

इसलिए मंत्र में तमस् भाव से -रजस्, सतज्, सिद्धियों में जाने की ज्यादा सम्भावना रहती है । सिद्धियाँ सांसारिक, व्यतिरेक, मान-अपमान एवं सुख-सुविधा को ज्यादा पकड़ती है ।

मंत्र में भी कल्पना साकार दिखती है । जो देवी-देवता का स्वरूप पकड़ हमें अनुगृहित करती रहती है । मंत्र चौथे शरीर अनाहत तक के शब्दभेद का गूँज है एवं चौथा शरीर स्वभावगत रूप से कल्पना और स्वप्न को पकड़ता है ।

लेकिन **'ॐ'** तो एक ध्वनि तरंग की गुंज है, जो पृथ्वीतत्व के मूलाधार के कम्पन्न क्षेत्र को छोड़ती हुई ब्रह्मरंध्र के कम्पन्नक्षेत्र को पार कर उसके केन्द्र की ऊर्जा में समा जाना चाहती है ।

मंत्र में हम साक्षीभाव में नहीं रह सकते । हमेशा चेतना की जागृत अवस्था में रहना पड़ेगा । जैसे अगर हम "मैं कौन हूँ" का ही उच्चारण अपने साधना स्तर में रहकर ब्रह्म से, पूछते रह जायेगें; तो प्रत्युतर पाने की जागृत चेतना में हमें सजग रहना पड़ेगा ।

लेकिन **'ॐ'** तो प्रकृति रूपा माँ की थपकी की तरह एक लयवद्ध, संगीतमय स्वर लहरी में प्राण ऊर्जा का संकलन है । इसमें नीचे के कम्पन्न से ऊपर के कम्पन्न में जाने के लिए कोई अवरोध नहीं है ।

हम साक्षीभाव से **'ॐ'** ध्वनि के टूटते अहंकार लय के -तमस्, रजस् एवं सतज् के कम्पन्न में तरंगित होते हुए शून्य की ओर बढ़ सकते है ।

हमारा प्राण ऊर्जा का बिखरा स्रोत, सूर्य-किरण के लेन्सीकृत ताप बिन्दु की तरह ब्रह्म के केन्द्र बिन्दु पर हमको एकाग्र कर सकती है । **'ॐ'** में कोई प्रश्न नहीं है । सिर्फ प्राकृतिक तरंगायित थपकी है, जो स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर में अवस्थित आत्मा के सारे अहंकार स्वरूप को, जो मानव योनि की

वास्तविक स्थिति है, उसको छोड़ते हुए सातवें शरीर (ब्रह्म शरीर) में अवस्थित हो जाने की गति है ।

मन का प्राकृतिक स्वभाव है, कि तीन मिनट से ज्यादा एक बिन्दु पर नहीं टिक पाती है । लेकिन कोई भी प्रश्न हमेशा हमें एक बिन्दु पर खड़ा कर देती हैं! उत्तर की अभिलाषा में !

अगर प्रश्न का झंझावात हमारे मनस पटल पर चलता रहता है, तो हम सो भी नहीं पाते । हमेशा अनिद्रा की स्थिति बनी रहती है । क्योंकि हमारी प्राण ऊर्जा प्रश्नों में केन्द्रीभूत होकर उसके खूटे से हमें बाँध देती है ।

उसका मानसिक ताप हमारे बहिर्मन की अन्तर चेतना में भी घुस कर हमें आन्दोलित किये रहती है एवं हमारे मस्तिष्क के बहुत सारे कोषा तनाव में आकर हमें सोने नहीं देता है ।

मंत्र हमेशा प्राणवायु के कम्पन्न में लिए जाते हैं । लेकिन प्राणवायु का क्षेत्र तो बहुत सीमित है । हमारी ज्यादा से ज्यादा प्राण ऊर्जा प्राणवायु में केन्द्रीत होने लगती है । उपलब्धियाँ हमें देवी-देवताओं, हाकनी, डाकनी से जोड़ती जरूर है,

लेकिन प्राण ऊर्जा का क्षेत्र प्राणवायु में सीमित होकर रह जाता है । कर्मबंधन के चक्रवात से निकलना हमारे लिए मुश्किल हो जाता है । स्वर्ग-नर्क की चाहत बराबर हमें जन्म-मरण के चक्रवात में बनाएँ रखती है । स्वभावगत रूप से हम तन्द्रा के चौथे शरीर की अभिव्यक्ति के अभ्यासी होते हैं ।

मंत्र में चोट होती है, जो हमें तन्द्रील होने से सावधान भी करती रहती है । 'ऊँ' तो एक गोल ध्वनि तरंग में गूँजती है, जो स्वभावगत तन्द्रिल होने के स्वभाव को पकड़ती रहती है ।

"मैं कौन हूँ" या मंत्र में कोई लयवद्ध संगीत नहीं होता है । लेकिन 'ऊँ' में एक नाद उठता रहता है । जो सारे कम्पन्न को बिखेरती हुई एक ईश्वरीय संगीत पैदा करती रहती है । 'ऊँ' जो बिल्कुल प्रकृति के स्त्रीतत्व की तरह सुडौल एंव सुखद अनुभूति है ।

हमें सुखद स्मृति में सुला देती है एवं हम आत्म विष्मृत होकर अपने केन्द्र को भी भूल सकते हैं । सभी शब्दों में एक आकार है और मंत्र किसी-न-किसी आकार में समाहित हो प्रकट होती है ।

लेकिन 'ॐ' में आकार तो है। लेकिन निशब्द में जाकर निराकार होने की गति में है एवं उसके तरंग में विजातीय तरंग को तोड़कर समरूपता लाने की प्राणशक्ति है ।

इन्हीं सिद्धान्तों के स्वरूप में शिव मंदिर में टंगे घड़ी घंटा बजाना एवं गुम्बदनुमा मंदिर में 'ॐ' ध्वनि करना; 'ॐ' के गुंजित प्रतिध्वनि को शिवलिंग एवं स्वंय के ब्रह्मरंध्र पर केन्द्रीत बिन्दु पर समाहित कर लेने की क्रियारूप विधि में है

मंत्र का संघात हम पर बराबर होता रहे, तो विजातीय ध्वनी तरंग एवं चुम्बक तरंग के तत्वों को तोड़ती हुई हमें आन्दोलित करती रहेगी ।

लेकिन 'ॐ' का संगीतमय स्वर गूँज हमें प्रकृति के शान्तिदायक, आनन्ददायक थपकी में ले जाकर अपने प्राण शक्ति में हमारा भी संचरण करने लगती है । 'ॐ' का उच्चरित कम्पन्न चौथे शरीर की शुरू की आत्मगति है, जो सातवें शरीर ब्रह्म शरीर तक की गति में निशब्द हो जाती है । चूँकि बैखरी वाणी की गति तो चौथे शरीर तक ही है ।

तंत्र-मंत्र एवं मांत्रिक, कापालिक साधक की गति तो चौथे शरीर से ऊपर है ही नहीं ! हमारे चक्रों की दोनों गति है । या तंत्र-मंत्र की साधना तमस्, रजस् एवं सतज् भाव में कर मनुष्य योनि से उपलब्ध होने वाली सारी सिद्धियों, सारी परिकल्पनाओं को, अपने मंत्रशक्ति की 'ॐ' के प्राणवायु में संकलित प्राण ऊर्जा के सीमित घड़े में उतार लें !

या उस जिस ऊर्जा का केन्द्रीभूत संकलन शरीर के नाभिकुण्ड (मणिपूरक चक्र) एवं आज्ञा चक्र (अंजना चक्र) द्वारा कुन्डलिनी गति में कर लें ! जो कुण्डलिनी जागरण का तमस् स्वरूप में गति है ।

मूलाधार के उलटी दिशा मेरूदण्ड (स्पाइनल कौर्ड) स्थित सुषुम्ना में, शरीर के नाभिकुण्ड से तीन अंगूल ऊपर मणिपुर चक्र पृष्ठ भाग से प्रवाहित अनन्त प्राण ऊर्जा क्षेत्र-में करूणा, मैत्री, मुदिता की साम्यरस अवस्था में, ब्रह्मरंध्र में अवस्थित होकर केन्द्र की ब्रह्ममय अवस्था की ओर बढ़ जाने की शक्ति प्रवाह दशा है ।

मंत्र में तीर की गति है, जो निश्चित केन्द्रीत बिन्दु पर लगकर निष्क्रिय हो जाता है । लेकिन 'ॐ' में ब्रह्म थपकी (थेरापी) की गति है; जो तालाब में फेंके गये छोटे कंकड़ से, उठकर फैलते ध्वनि तरंग को, सूक्ष्म से सूक्ष्म अनन्त ध्वनि तरंग

की ओर ले जाय एवं केन्द्र से तरंग उठकर परिधि छोड़ते हुए प्रत्येक बिन्दु में समा जाय ।

'ऊँ' तो सारी शाब्दिक प्रणाली छोड़ चौथे मनस शरीर पर शून्य की ओर बढ़ने का संकेत है । लेकिन इस स्थूल शरीर को मानसिक अवस्था की तन्द्रा की थपकी का अभ्यास होने से, कल्पना एवं स्वप्न में खो जाने की ज्यादा सम्भावना है

इसलिए मनीषियों ने इस तन्द्रा से बचने के लिए बावन अक्षर पर, जिस पर शून्य का नाद का अनुस्वार पड़ जाय, तो 'ऊँ' के प्रतीति में ही सारे बीज मंत्र हो जाते हैं एवं 'ऊँ' का ध्वनि तरंग हमें समाहित कर अपने कम्पन्न के सूक्ष्मतम जगत से जोड़ लेता हैं ।

इन्हीं मंत्रों में कुछ मंत्रों की प्रणाली को उच्चतम कम्पन्न में जाना गया है । एटम की न्यूक्लियर की तरह स्त्री शक्ति समतुल्य अवस्था में होती है । इसलिए बहुत सारे मंत्रों को स्त्री तत्व से जोड़ते हुए देवी शक्ति के रूप में देखा गया ।

जिनमें कुछ मंत्र उच्चतम कम्पन्न गति में, आकर सृष्टि के प्राकृतिक गति में भोग दायनी एवं मोक्ष दायनी रूप में देखा गया । ये मंत्र कई उच्चतम कम्पन्न के समिश्रण के उच्चारण में होते हैं । जिसको षोडशी विद्या, श्री विद्या, त्रिपुर-सुन्दरी विद्या के रूप में मनीषियों ने प्राण ऊर्जा के संघात में संचारित करते देखा गया है।

अपने ध्वनि तरंग में मंत्रों के रूप में अवतरीत कर, देवियों का आवाहन एवं सम्वाहन मंत्र के रूप में मनुष्यरूपी प्राणी को उपहार स्वरूप दिया ।

(चित्र संख्या-10, भाग-1 में) जैसे; भूः-भूर्व-स्वः ऐं-ह्रिम्, किंल्म्, श्रीम्-कृम्, क्रोम्, ऋम् - जैसे सूक्ष्मतम प्राण ऊर्जा के जगत से इस मानवीय काया के स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के तमस्, रजस् एवं सतज् कम्पन्न गति में, देवियों के लोकों से प्राण शक्ति द्वारा जुड़ने का गरिमामय माँ स्वरूपा, शक्तिरूपा देवियों से प्राप्त, भोग और मोक्ष के रूप में इस मानव संस्कृति में कायम किया ।

लेकिन सभी देवियों में धनिभूत ऊर्जा के प्राण शक्ति को अवतार के रूप में मानव जगत में अवतरीत होने के लिए प्राण ऊर्जा का सिद्धान्त, हम मानव क्या, पूरे चेतन अचेतन ब्रह्माण्डीय तत्व में है । जिसमें जैसी प्राण ऊर्जा संचरण की क्षमता है, प्राण ऊर्जा संचरित कर जाती है ।

स्थूल शरीर में बिना नींद्रा का जीना मुश्किल है । अगर प्रन्द्रह दिन भी नीद्रा को हमसे छीन लिया जाय, तो हम मानसिक व्यक्तिरेक में पागल हो सकते हैं एवं अन्ततोगत्वा मृत्यु भी प्राप्त कर सकते हैं ।

लेकिन यहीं काम, क्रोध की गति जब कुण्डलिनी की गति में, उल्टे प्रवाह में सुषुम्ना द्वारा उर्ध्वगति पकड़ती हैं, तो करूणा, मैत्री, मुदिता का स्वरूप पकड़ लेती है । चिंता भी उसके लिए, चिंता का विषय नहीं होता है ।

चिंतन-मनन के जागृत अवस्था में उसका प्राण संचरण करने लगता है । उनके मिथक की सारी सम्भावनाएँ समाप्त होकर कल्पना एवं स्वप्न भी साकार होने लगता है ।

योगी बाहर से सोया दिखता है, फिर भी उनकी अन्तर चेतना पूर्ण जागरण की अवस्था में होती है । वहीं जागरण बुद्धत्व प्राप्त करने की श्रृंखला है । गौतम और महावीर ने इसी जागरण को ईश्वर तत्व में विलीन होकर द्रष्टाभाव से सृष्टाभाव में जाने का प्राणिक उद्गम बिन्दु माना है ।

लेकिन इस उद्भव बिन्दु को प्राप्त करने के लिए स्थूल शरीर के प्राणवायु को ही माध्यम माना गया है । जिनमें मन्द से मन्द श्वाँस की गति में प्राणाकर्षण प्राणायाम एवं लोम विलोम के नैसर्गिक श्वसन क्रिया से साधना सम्भव है, जबतक काम-क्रोध, घृणा, द्वेष का उद्वेग श्वाँसो की गति पर नहीं आकर- प्रेम, क्षमा, दया का हमारे प्राणायाम की मुद्रा नही बन जाती है !

नाभिकुण्ड तक पहुँचा श्वाँस, नाभि से तीन अंगुल नीचे तान्डेन बिन्दु पर अपना केन्द्र बिन्दु बनती है । जिसमें काम केन्द्र पर सुखद कम्पन्न महसूस होता है एवं वही काम हमारी सुषुम्ना प्रवाह में शक्ति संचरण का कारण बन जाती है ।

चूँकि शिशु के विकासक्रम में इस श्वाँस की गति नैसर्गिक अवस्था में होती है । बच्चा हमेशा पेट से श्वाँस लेता है ।

लेकिन ज्यों-ज्यों उसके भौतिक शरीर का विकासक्रम भाव शरीर तक पहुँचता है, तो छाती के फेफड़े से श्वाँस लेने लगता है । नाभिकुण्ड का यह तान्डेन बिन्दु, उसके सांसारिक परिधि के काम-क्रोध, द्वेष-हिंसा में आ जाने से बिल्कुल अलग-थलग एवं अछूता होकर रह जाता है ।

हमारे पेट के सारे अवयव के अन्दरूनी अवयव के ऊपर दो सतह में

''लोहार की भाँती'' की तरह (डाईपफॉम) झिल्ली होती है ।

जिसमें श्वाँस धौकनी की तरह चल कर नाभिकुण्ड से तीन अंगुल नीचे तान्डेन पर अपना सुखद स्पर्श छोड़ती है । इसी सुखद अनुभूति में बच्चा अपने इन्द्रीय को छूकर अति आन्दित होता है ।

लेकिन भाव शरीर के चौदहवें वर्ष तक के विकास में श्वाँस पूर्णरूपेन हृदयगति में छाती से लेने पर वह नैसर्गिक केन्द्र ही पीछे छूट जाता है । जिसको व्यवस्थित करने के लिए एक मात्र उपाय है! ध्यान एवं समाधि ।

ध्यान, शरीर और मन की निश्चल गति है । ध्यान में हमारा मन या शरीर का कोई भी अंग जिधर को गति करता है, प्राण ऊर्जा उधर को प्रवाहित हो जाती है । हमारा हाथ या क्रोध में मुष्टिका भी ऊपर उठती है, तो हमारे प्राण ऊर्जा का प्रवाह उधर को ही गति पकड़, ऊर्जा प्रवाह की दिशा उसी केन्द्र बिन्दु की ओर बहने लगती है ।

हम फिल्म देखते हैं, तो एक्सन के फिल्म में मेरी साँसे अटक सी जाती है । अर्धनग्न कामुकता का सीन देखते हैं, तो कामुकता का बिन्दु उत्तेजित हो जाता है । उसी तरह ध्यान की अवस्था में हमारा कोई भी अंग हरकत करता है, तो एकाग्रता का केन्द्र बदल जाता है । जब हम भोजन करते हैं, तो मेरी प्राण ऊर्जा ज्यादा से ज्यादा आँतो की ओर बहने लगती है ।

इसलिए भोजन के तीन घंटा तक ध्यान सधना मुश्किल हो जाता है, चूँकि ध्यान की अवस्था में हमारे प्राण ऊर्जा का केन्द्र अनन्त से जूड़ने के क्रम में प्राण प्रवाह का ज्यादा स्रोत खपा लेती है । इसलिए ध्यान के लिए श्वसन का प्रयोग भी बहुत उत्तम प्राणायाम की मुद्रा है एवं इसी मुद्रा में भग समाधि एवं स्पर्स समाधि लगायी जा सकती है ।

चूँकि सांसारिक गति में हमारा स्त्रैण केन्द्र का संतुलन पत्नी या प्रेमिका रूपी भैरवी के द्वारा ही सम्भव है । हिमालय के योगी अपने इसी स्त्रैण केन्द्रों की योग साधना, यम-नियम के द्वारा समतुल्य कर, अर्द्धनारीश्वर के रूप में प्रत्येक केन्द्रों को ला कर, ब्रह्मतत्व की ओर बढ़ पाते हैं ।

ध्यान सधने पर समाधि की अवस्था में योगी अपने चक्रों के प्रवाह पर अनन्त से जुड़, सूक्ष्म गति में अन्तरिक्ष गामी हो जाते है । लेकिन अदृश्य प्राण

शक्ति का रज्जूतंत्र नाभिकुण्ड से जुड़ा होता है । तो फिर से परलोक से इहलोक में वापस लाने के लिए इसी नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु की आवश्यकता पड़ती है। जिसको ऊर्जावान पूर्णता प्राप्त संस्कारयुक्त कन्या द्वारा आस्था एवं विश्वास में छूने पर योगी अपने स्थूल शरीर में वापस आ जाता है ।

इसलिए सभी ऋषियों को गृहस्थ आश्रम में देखा गया है । समाधि में जाने वाले प्रायोगिक योगी 'पट शिष्या या भैरवी स्वरूपा नारी शक्ति के किसी न किसी स्वरूप में स्त्री को साथ रखते आये हैं । अगर उनके संकल्पित समाधि अवस्था के अंतरिक्ष भ्रमण पर गये सूक्ष्म शरीर को, नारी के अंगूठा स्पर्श द्वारा, वापस स्थूल शरीर में नहीं लाया जाय, तो शरीर सड़ कर वास्तविक मृत्यु प्राप्त कर लेता है एवं योगी का सूक्ष्म शरीर स्थित आत्मा भटकन में पड़ जाता है ।

शेष आयु को भोगने के लिए प्रेतत्व प्राप्त आत्मा का समय रूपी काल चार गुणा ज्यादा हो जाता है । अपने कर्मानुसार योगी सूक्ष्म शरीर की उच्चगति में तो रहते हैं, लेकिन इस मानवतन के लिए लालसा उनकी मिट नहीं पाती है ।

इसी नाभिकुण्ड की साधना, प्राचीन काल में स्त्रियाँ करके कोई भी इत्र या सुगन्धित पुष्प नाभिकुण्ड पर रखकर अपने पूर्ण शरीर के प्राण संचरण में सुगन्ध ले आती थी एवं प्रियतमा के रूप में आकर्षण का कारण बनती थी ।

इस ताण्डेन बिन्दु के कुण्डलिनी क्षेत्र द्वारा ऊपर के चक्रों पर रहने के कारण देवी-देवता एवं भगवान के आगमन पर चेतन-अचेतन सारा वातावरण सुगन्धमय हो जाता है ।

प्राचीन चित्रों में प्राय चीन के संत लाओत्से एवं गौतम को, शरीर के भाग पर पेट का बड़ा आकार लिए संतभाव में दिखलाया गया है । चूँकि जब हम उच्च साधना के क्षेत्र में जायेगें, तो जो श्वाँस हम सीना (बक्ष) से ले रहे हैं, फिर पेट के नाभिकुण्ड से लेने लग जायेंगे ।

महावीर शिशु के भाँति अपने मस्तक पर धड़कते सूषुम्ना केन्द्र को, इसी ताण्डेन बिन्दु पर आकर साम्यावस्था में ले आये थे एवं यही अवस्था आशीर्वाद, प्रेम, क्षमा, करूणा, मैत्री, मुदिता सधने की है ।

हम स्थूल शरीर के राक्षसी गति से ऊपर आने के लिए अपने श्वसन क्रिया के नाभिकुण्ड पर सधे ताण्डेन बिन्दु पर ही देवत्व गति में आ सकते हैं ।

हठयोग में इसलिए कपालभाँती का महत्व दिया गया है । चूँकि कपाल भाँति में हम निश्चित नियमित गति में प्रति सेकेन्ड में एक ठोकर के हिसाब से, श्वाँस का ठोकर नाभिकुण्ड पर मारने का प्रयास करते हैं । जो श्वाँस की गति को काफी नियंत्रित करती है । कम से कम बीस मिनट कपालभाँती करने के बाद हम महसूस करते हैं कि साँस की गति नियंत्रित एवं मंद हो गयी है ।

लोम-विलोम की अवस्था में ध्यानस्थ होने पर, हम समाधि की गति में आकर ताण्डेन बिन्दु पर एकाग्र होकर समाधिस्थ हो पाते है एवं द्रष्टाभाव में आकर अपने स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर को अलग-अलग एवं दैनन्दिनी स्वरूप में भी देख पाते हैं ।

इस ताण्डेन बिन्दु पर जो नाभि से तीन अंगूल नीचे हैं, जापान के वीर योद्धा समूराई तलवार चलाने वाले समूराई जाति ने काफी अन्वेषन किया है ।

इस ताण्डेन बिन्दु पर समूराई की नोक से केवल हल्का प्रहार कर, इस बिन्दु पर आक्रमण करने से मनुष्य बहुत शान्ति के मुद्रा में मृत्यु प्राप्त कर लेता है । उसके मृतवत् शरीर पर वेदना के कोई लक्षण नहीं होते हैं ।

बच्चे के विकासक्रम में बच्चा, इसी ताण्डेन बिन्दु पर शिशु अवस्था में श्वाँस लेकर प्राणिक ऊर्जा प्राप्त कर शारीरिक एवं मानसिक विकास पाता है । बच्चे के ताण्डेन बिन्दु तक श्वाँस लेने में एसप्लीन से रक्त कण बनता रहता है एवं मानव शरीर का विकाश चौदह वर्ष तक होते-होते बोनमैरो से रक्तकण बनने लगता है एवं एस्पलीन से रक्तकण बनना बन्द हो जाता है ।

इन्हीं भौतिक शरीर एवं भाव शरीर के विकासक्रम में प्राण चक्र के बगल की ग्रन्थि में श्राव होने से बच्चे में चंचलता एवं फुदककर चलने एवं खेलने की प्रवृति होती है । जो चौदह वर्ष के पूरा होते-होते तक इस ग्रन्थि का स्राव बन्द हो जाता है । बच्चे में किशोरावस्था की परिपक्वता आने लगती है ।

लेकिन कभी-कभी देखा गया है कि पचहत्तर वर्ष के बाद भी, बुढ़ापे में यह ग्रन्थि अपना स्राव पैदा करने लगती है । तो बूढ़ा भी बच्चे की तरह हरकत करने लगता है ।

जन्मचक्र में नारी की प्रधानता

चित्र संख्या - 20

ऊपर के चित्र का चित्रण मानव जाति के मृत्यु एंव जीवन चक्र के रूप में दिख्लाया गया है। इस मैथुनी जगत का आधार है, प्रकृतरूपा स्त्री तत्व! जो चेतना स्वरूपा हमारे-माँ, प्रेमिका, पत्नी के रूप में हमारे जीवन का प्रभाग है। पुरूष तो जड़ तत्व है! जो चेतना शक्ति के प्रवाह के बिना मृतवत् है।

इस मैथुनी जगत के संचालन के लिए इस चौरासी लाख योनि में केवल मनुष्य जाति में नर-नारी को कुण्डलिनी शक्ति दी गयी है! जो स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के संयोग से ब्रह्माण्डव्यापी है। जहाँ इस योनिगत चक्रवात को तोड़ कर, ऊपर की व्यालिस लाख योनि की यात्रा की जा सकती है।

यह कुण्डलिनी शक्ति मेरूडण्ड के मूल और गुदामार्ग के बीच में, अदृश्य शक्ति के रूप में बैठी है। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का जूड़ाव बिन्दु सातो चक्रों के अदृश्य शक्ति केन्द्र से है एवं सांसारीक एवं अध्यात्मिक सारे क्रिया-कलापो में शक्ति स्वरूपा ऊर्जा प्रवाह में है।

सभी स्त्री में शक्तिस्वरूप में रजो बिन्दु का स्वरूप लिये स्फुर्ति (ऊर्जा) स्वरूपा होकर, मूलाधार पर गतिमान है।

लेकिन सभी नर-नारी में शिवतत्व, शुक्र बिन्दु के रूप में श्वेत बिन्दु अथवा प्रकाश स्वरूप में, सहस्त्रार चक्र में अवस्थित है। स्त्री में कुण्डलिनी के मूलाधार का प्रतिनिधित्व गर्भाशय करती है। जो ऋणात्मक स्वरूप में ऊर्जा संचालन का केन्द्र है।

लेकिन पुरूष में मूलाधार चक्र पर शिव और शक्ति दोनों मिश्रित स्वरूप में कामकला के रूप में अर्द्धनारीश्वर स्वरूपा, आकषर्ण-विकषर्ण के धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के साम्यरस में कुण्डलिनी शक्ति का ऊर्जा प्रवाह केन्द्र है।

सहस्त्रार चक्र जो चक्रो के श्रृखंला में सबसे ऊपर है; उस चक्र पर शिवतत्व रूप में ऋणात्मक शुक्र बिन्दु की स्थिति है। इस बिन्दु का ऊर्जा प्रवाह ब्रह्माण्ड से प्राण ऊर्जा ग्रहण कर, प्रतिदिन ब्रह्ममुहुर्त प्रायः तीन से चार बजे (उसे 4 बजे) के समय में, अढ़ाई बुन्द अमृत का निर्माण कर लेती है।

जो पाँच हजार न्यूरान सेल के प्रतिदिन के बलिदान स्वरूपा टूटकर नष्ट हो जाने से प्राप्त होता है। यह न्युरान सेल कपाल कुहर के सरेब्रेटा नामक तरल पदार्थ में होता है।

जागृति सुषुप्ति एवं स्वप्नावस्था के क्रिया-कलापों से, जब हमारी स्नायु संस्थान नीद्रा में कुछ भार मुक्त होती है, तो दस मिनट के लिए हमारे नाड़ी संस्थान पर कोई भार नही होता है। वह प्रकृति के अनन्त ऊर्जा स्रोत से ऊर्जा प्राप्त करने लगती है।

उसी समय साम्यरस की स्थिति में यह अमृत बुंद बनकर, उसका क्षरण होता है। इसमें ब्रह्मरंध्र से निकलने वाली गुह्यानि नाड़ी पर कष्ठ चक्र से ऊपर विष्णु ग्रन्थि, हृदय पर रूद्र ग्रन्थि, नाभि पर ब्रह्म ग्रन्थि की अह्म भूमिका नजर आती है।

यही अमृत जीवनी शक्ति भी है और क्षरण के बिन्दुवार गति में हमारे बचपन, जवानी, बुढापा से लेकर, हमारे मृत्यु का कारण भी है।

चूँकि जो न्यूरान सेल, प्रतिदिन पाँच हजार सेल टूटकर मृतवत् होकर अमृत बनती है, वह मस्तिष्क में कभी भी नया सेल (कोषा) के रूप में जीवन्त नहीं हो पाती है। उसका अनुपात कपालकुहर में घटता ही चला जाता है और अन्त में मृत्यु का कारण होता है।

लेकिन दस मिनट के स्नायु संस्थान के साम्यावस्था को योगीजन समाधि की अवस्था में आधा घंटा या एक घंटा कर लेते हैं, तो चिरस्थाई यौवन प्राप्त करते हुए, अपने आयु के विघटन पर भी नियंत्रण पा लेते हैं।

आज भी तिब्बत् में लामा साधक खेचरी मुद्रा के साधना द्वारा इस अमृत क्षरण को कंठ के मूल में ही ललना चक्र पर पान करके, अपने शरीर के पृथ्वी तत्व, वायु तत्व एंव अग्नि तत्व का भार कम करके, किसी तारा को लक्ष्य में रख, आकाश में सशरीर उड़ते रहते हैं।

इस जीवनदायनी अमृत का पहला बुन्द ललना चक्र पर गिरते हुए मुँह में गिरती है। जिससे लार बनने की प्रतिक्रिया कायम रहती है। मृत्यु के चौबिस घंटा पहले यह अमृत क्षरण का सिलसिला बन्द हो जाता है।

जिसके कारण मृत्यु के समय कण्ठ सुखने लगता है। दूसरा बुन्द

हृदय पर पहुँचकर उसे ऊर्जावान एवं शक्ति संचालन में रखता है। शेष आधी बुन्द नाभिकुण्ड पर जलकर हममें भूख पैदा कर अन्न, जल द्वारा रस पैदा करता है एवं हमें प्रतिपल बुढ़ापे की ओर भी ले जाता है।

इसी प्रकार स्त्री में शक्ति तत्व रूप में, मूलाधार पर धनात्मक रजो बिन्दु की स्थिति है। जिसका ऊर्जा प्रवाह उर्ध्वगति लिए रहता है; जो विष्णु ग्रन्थि द्वारा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा प्रवाह में साढ़े तीन बुन्द अमृत का निर्माण करती है। इसमें भी अढ़ाई बुन्द अमृत का प्रयोग तो पुरूषतत्व की तरह ही होता है।

लेकिन एक बुन्द से उसके गंधतत्व का निर्माण हो, उसे रजस्वला स्थिति से अवर्चनिय अदृश्य सुगन्ध एवं यौवनवस्था में प्रवेश कर, शरीर सौरभ के रूप में आकर्षण का कारण बनता है।

इस अदृश्य गंधतत्व को तांत्रिक "पुष्पली गंध" बोलते हैं। और यही गंध अज्ञात आकर्षण के स्वरूप में स्त्री पुरूष के आकर्षण का कारण है।

स्त्री के मौलिक निर्माण में भी एक मौलिकूल का फर्क है। जब ओभम फर्टीलाइज (सींचन) करता है, तो उसमें क्रोमोटिक डिभिजन (खिचाव) पैदा होकर, चौबीस-चौबीस मौलिकुल से दोनों हाथ की तलहट्टी का निर्माण होना शुरू होता है।

लेकिन पुरूष में एक हाथ पर चौबीस (24) एंव दूसरे हाथ की तल्हट्टी तेइस (23) मौलिकुल के निर्माण से शरीर रचना की प्रतिक्रिया शुरू होती है। यहाँ भी एक मौलिकूल की कमी, उसे जीवनभर संतुलित नहीं होने देता है।

लेकिन स्त्रियों में दानों भाग के मौलिकूल के संतुलन से उनका आणविक बनावट समतुल्य रहता है एवं वे तुरंत साम्यावस्था में आ सकती है।

अमृत क्षरण का एक बुन्द अधिक एवं शरीर के आणविक संरचना में एक मौलिकूल अधिक के कारण ही स्त्रियाँ शक्तिदायनी एवं शक्ति स्वरूपा प्रकृति के रूप में हमेशा ऊर्जावान रहती है।

जिस स्त्री को हम भोग्या समझते हैं, वह अनन्त से जुड़ी शक्ति ऊर्जा का भी स्रोत है । प्राकृतिक रूप से उसी ऊर्जा स्रोत के अनन्तगामी स्रोत से प्राण ऊर्जा लेकर बच्चे को जन्म देकर सृष्टि श्रृंखला को चला रही है ।

प्राकृतिक रूप से स्त्री का आज्ञा चक्र और नाभिकुण्ड बच्चा जनने के कारण कमजोर हो जाता है ।

लेकिन चित् की स्थिति, हृदय चक्र एवं यह ताण्डेन बिन्दु जहाँ गर्भाशय के अण्डकोष का ग्रीवा बिन्दु है, बहुत ताकतवर होता है । जब यही तीनों बिन्दु प्रेम और प्रार्थना का संवल पकड़ नाभिकुण्ड के बिन्दु पर प्राणवायु के प्राण ऊर्जा के संकलन में चली जाती है, तो वही भोग्या स्त्री दिव्या हो जाती है एवं राधा और मीरा पैदा ले लेती है, एवं अनन्त के दिव्य स्रोत से जुड़कर शक्तिरूपा हो जाती है ।

स्त्री का यही गर्भाशय का ग्रीवा बिन्दु कुण्डलिनी का प्रतिनिधित्व कर सुषुम्ना द्वारा सभी चक्रों के कम्पन्न बिन्दु को नियंत्रित कर, चित की स्थिति में पहुँचती है । इसी चित्त, हृदय, एवं ताण्डेन बिन्दु के सबल होने की सम्भावना पर हमारे आस्थावान धर्म समुदाय की बुनियादी नींव टिकी है । महावीर के अनुयायियों में सैंतिस हजार स्त्री शिष्या थी, तो केवल तेरह हजार पुरुष शिष्य थे । कोई भी धर्म की बीज श्रृंखला, स्त्री में बच्चे के गर्भधारण की तरह है ।

जैसे स्त्री पुरूष के समागम में पुरुष का क्षणिक सहयोग है । लेकिन गर्भस्थ शिशु का पोषण एवं प्राण ऊर्जा के संचरण का माध्यम माँ स्वरूपा स्त्री ही होती है । उसी तरह कोई भी धर्म सृजित तो पुरुष ही करता है । लेकिन उसको जिन्दा रख हजारों वर्ष तक प्राणवान, स्त्री की आस्थारूपी संस्कृति में, प्रेम और प्रार्थना ही कर पाती है ।

षट्चक्र एवं सहस्त्रार के एक हजार आठ दल पर देवियों का आवाहन मंत्र ही होता है । लेकिन शिव के रूप में अनुस्वार बिन्दु ही शिव-शक्ति का रूप पकड़ अर्द्धनारीश्वर रूपी न्यूट्रॉन बिन्दु से होकर केन्द्रक में शक्ति रूपा होती है एवं यही नमनीयता बिन्दु, हृदय बिन्दु एवं चित् बिन्दु उसे प्रकृति के अनन्त स्रोत से जोड़े रखती है ।

इसलिए स्त्रियाँ विवेक और बुद्धि के संक्रमण से पहले ही निष्पतियाँ पर उतर आती है, एवं हम अन्दर ही अन्दर उसकी निष्पतियाँ पर भौचक रह जाते हैं । स्त्री का काम-क्रोध, जो नाभिकुण्ड के ग्रीवा का अण्डकोष बिन्दु है, प्राकृतिक रूप से प्रतिमाह ओभम (डिम्भकोष) के फुटने से स्त्री को रजस्वला कराती है ।

जो कामुकता का आमंत्रण बिन्दु भी है । वही जब प्राणवायु के श्वसन गति नियंत्रित हो जाने से, नमनीयता बिन्दु में संचरण करने लगती है ।

एवं चौथे शरीर से ऊपर की आत्मगति में पहुँचे ऋषि, महात्मा, मनिषि, वैज्ञानिक, कवि, साहित्यकार को पृथ्वी पर माँ का गर्भ प्राप्त कर, अमृत बुन्द की तरह एक स्वर्णिम आभा में पैदा लेने का अवसर प्रदान करती है ।

नमनीयता बिन्दु पर पहुँचे ऋषि महात्मा, संत, वैज्ञानिक के वीर्य का शिवरूपा अनुस्वार बिन्दु की तरह समागम ही, अमृत बून्द बनकर एक संस्कारयुक्त समाज का निर्माण कर सकता है । चित, हृदय एवं नमनीयता बिन्दु पर पहुँची कामना रहित स्त्रीतत्व ही पुरुष के कुण्डलिनी जागरण में सहयोग कर, उसे ब्रह्म बिन्दु पर पहुँचा देती है ।

इसलिए महावीर की मूर्ति में प्रायः पैर के पास चौसठ योगिनी का चित्रण है एवं तंत्र शास्त्र में भी चौसठ योगिनी की व्याख्या है। जो तमस्, रजस् एवं सतज् स्वभाव के साधना क्रम में साधक को अपने आशिर्वाद से अनुगृहीत कर अपने साधना लोक का अधिकृत भागीदार बना लेती है ।

लैपटॉप ऊर्जा से तो हम केवल विश्व से जुड़ पाते हैं । लेकिन स्त्रैण शक्ति का सहयोग हमें ब्रह्माण्ड के ज्ञान विज्ञान से जोड़, परमानन्द की प्राप्ति करा देता है । वहाँ कोई सांसारिक तंत्र-मंत्र, या शब्दभार की बैखरी वाणी का संसार नहीं है । हम 'ऊँ' ध्वनि के निःशब्द बिन्दु पर सवार होकर अनन्तगामी हो जाते हैं ।

इसलिए इस जगत में आने का रास्ता अगर गर्भद्वार द्वारा है, तो हमारे दामपत्य जीवन के नैसर्गिक काम-कामेश्वरी की लीला में 'काम' ही; शक्तिरूपा स्त्री तत्व के सहयोग से इस जगत से उर्ध्वगमन कर, ब्रह्मबिन्दु तक गमन करने का नैसर्गिक प्राकृतिक सहज एवं सुलभ रास्ता है ।

विजेता

जीवन का प्रत्येक क्षण श्वाँसों की गति की तरह हार-जीत से भरी है। विजेता हमेशा मुस्कानो से भरा होता हैं। विजेता बनें ! ईश्वर की कील की परिधि में पहुँचें !

क्रियारूप

क्रियात्मक एवं भावनात्मक योग लगभग अढ़ाई घंटे का है। सुबह में ब्रह्ममुहुर्त इसका समय उपयुक्त है।

1. बिस्तर पर ही पवन मुक्त आसन
   एवं सूक्ष्म व्यायाम - 30 मिनट।

नित्यक्रिया एवं स्नान के बाद का दैनिक कार्यक्रम

1. भ्रस्त्रिका - छः आयाम में -
   प्रतिआयाम 1/2 मिनट। 3 मिनट।
2. अग्निसार प्राणायाम - 3 बार 5 मिनट।
3. उपनौली - 3 बार
4. कपालभाँति - (अ) कुण्डलिनी के - नागिन
   के मस्तक पर ऊँ का आभामंडल लिए
   ऊँ स्वरूप - (ब) कपाल भाँति- मेरूडण्ड के - 5 मिनट
   नाभि केन्द्र तक साँस जाने की गति महसूस करना।
   एवं ऊँ का आभामंडल लिए - 10 मिनट
5. गुरू वंदना एवं ऊँ वंदना - 12 मिनट।
6. कर्णायी प्राणयाम - 3 बार - 2 मिनट
7. उज्जायी प्राणायाम - 3 बार - 3 मिनट
8. किसी क्लासिक गाने पर हृदय में ऊँ का - 10 मिनट
   ध्यान करते हुए नृत्य करना।
9. गाने के बाद विपष्ना करना - 10 मिनट
10. योग निद्रा या शबाआसान 20 मिनट
11. (अ) नाड़ी शोधन अनु लोम-विलोम हृदय पर 10 मिनट
    ऊँ का आभामंडल लिए हुए।

(ब) प्राणाकर्षण प्राणायाम, सातों केन्द्रों पर ३बार 12 मिनट माला जपते हुए।

12. प्राणायाम उदगित 3 माला - 15 मिनट
    मूलाधार से शुरू कर के नाभिकुण्ड से सहस्त्रार तक पाँच आयामों में प्रतिमाला पर साँस रोककर माला फेरना ऊँ का आभामंडल लिए।

13. क) अपने शरीर एवं चेहरा पर तीन बार 3 मिनट

ॐ का उच्चरण करते हुए हाथ फेरना।

ख) शशांक आसन के बाद मंगल कामना करते हुए उन्मुक्त कंठ से अठ्हास 5 मिनट

14. शशांक आसन के बाद मंगल कामना करते हुए उनमुक्त कंठ से अट्टहास करते हुए पूर्ण मानव जाति की मंगल कामना करना

<u>पुरा क्रिया अढ़ाई घंटे के लगभग है</u> 152 मिनट

कपाल भाँती में गहरा साँसो का धक्का देना है। 30 मिनट का पवनमुक्त आसन और सूक्ष्म व्यायाम, बिस्तर पर ही कर लेना है। दो घंटे का आसन प्राणायाम साधनाक्रम में रखना है। सुबह में उठते ही चार ग्लास पानी पीना है एवं मेथी दाना फाँक कर पानी पी लेना है। दिशा-मैदान से निवृत होकर सारी क्रिया करें तो ज्यादा उपयुक्त है।

क्रियारूप और अध्यात्मिक साधना क्रम की कुछ व्याख्यायें

30 मिनट का पवन मूक्त आसन और सूक्ष्म व्यायाम क्रियारूप में करना है, ताकि शरीर के प्रत्येक अंग के जोड़ पर जमा ऊर्जा एवं मल का स्पंदन हो जाय।

1. भस्त्रिका - छः आयामों में तीन मिनट करने का संकेत का मतलब है कि भस्त्रिका से फेफड़े पर प्राणवायु के आवागमन का पूरा प्रभाव पड़ता है। दस बार गहरी सांस लेकर भस्त्रिका शुरू करें।

फेंफड़ा करोड़ों सेल से निर्मित 6000 (छः हजार) स्पौंजी सेल के रूप में जीवन्त रहता है। यह हमारे दैनिक क्रियाकलापों में तीन हिस्सा में दो हिस्सा कार्बनडायऑक्साइड पीकर निष्क्रिय सोया रहता है। जब तक इन कार्बनडायऑक्साइड को प्राणवायु के धक्कों से निकाला नहीं जाय, तबतक योग में कर्मबंधन का कटना भी मुश्किल है।

योगी कितने भी तप एवं साधना कर लेते हैं, फिर भी कुछ न कुछ स्पौन्जी सेल कार्बनडायऑक्साइड पकड़कर उन्हें पूर्ण शुद्ध नहीं होने देता है।

2. अग्निसार - क्रम में तीन बार करने का संकेत से मतलब की, अपने पूरे साँस को निकालकर अपने गुदा, इन्द्री को ऊपर खिंचते हुए, ॐ का नाभि केन्द्र पर ध्यान करना।

3 . **उपनौली** – क्रम में तीन बार करना, अपना पूरा साँस निकालते हुए पेट के आँतों पर धक्का, प्रहार या बल देना, उसे धकेलना।

4. **कपाल भाँति** – यह क्रिया कुण्डलिनी जागरण के लिए काफी महत्वपूर्ण है। यह आपके प्राणवायु को सीधा मूलाधार एवं नाभि केन्द्र पर धक्का देकर सक्रिय करती है। इसमें भी हर केन्द्र पर ऊँ का माला फेरना चाहिए। एक सेकेण्ड में एक स्ट्रौक यानी एक मिनट में 60 बार करना चाहिए। तोंद की चर्बी एवं ब्लड सुगर (रक्तसर्करा) कम करने में यह प्राणायाम अत्यंत प्रभावकारी होता है । रक्तचाप की स्थिति में एक मिनट में 30 बार धक्का देना चाहिए।

5. क) **गुरु वंदना** – गुरु वंदना गुरु के ओरामंडल में अपना ओरामंडल मिलाकर एवं गुरू के दृश्य का ऊँ मंडल अपने हृदय के ऊँ मंडल पर महसूस करते हुए।

ख) **ऊँ वंदना** – अन्तर्मुखी हो या भावनात्मक हो, चूंकि मूलाधार के जागरण में भाव की बहुत प्रधानता है। मूलाधार से ही भावलोक की यात्रा शुरू होती है। भावलोक की यात्रा अनन्त तक है। मूलाधार पर ही सप्तधातु के रसायन तैयार होते हैं एवं शरीरिक और मानसिक सभी तत्वों को रसायन प्राप्त होता है।

6. **कर्णायी** – प्राणायाम में हम नाक द्वारा पूरा सांस फेफड़े एवं छाती में भर लेते हैं एवं उसका धक्का दोनों कानों पर डालते हैं। जिससे यह हमारे कानों के नर्भ पर प्राणवायु को ऊर्जा प्रदानकर उसके सारे प्रणाली को सौभ्य करता है, इस प्राणायाम में हृदय के नसों के ब्लोकेज (अबरूद्धता) पर भी दवाब पड़ता है।

7. **उज्जायी प्राणायाम** – इसमें कबूतर की तरह गुटकते हुए सांस को भीतर लेकर मणीबंध लगाना है। इससे सांस द्वारा प्राणवायु का कम्पन्न थाइराइड ग्लैन्ड पर होता है जो विशुद्धाय केन्द्र पर है।

जीभ भी जो पन्द्रह सौ स्पौन्जी सेल से बना है, उस पर कम्पन्न होता है। जीभ भी स्वाद के हिसाब से चार भागों में बँटा है। खट्टा, मीठा, नमकीन, तीता चारो के स्वाद का अनुभव जीभ के चार तरफ के भाग से अलग-अलग होता है। दाँत भी नर्भ से जुड़ा हमेशा कम्पन्न करता रहता है। हमारे आवाज में दाँत के कम्पन्न का भी बहुत बड़ा महत्व हैं। दाँत के मसूड़े से झरना जैसा लगभग डेढ लीटर से दो लीटर तक लार का निष्कासन होता है।

8 . संगीतमय भाव में ''ॐ'' का ध्यान

किसी क्लासिकल गाना पर ॐ का ध्यान करना एक सफलतम प्रयोग है। नृत्य में भाव राज्य पर अवस्थित होने में भावना का प्रवाह हमें बहुत गहराई तक ले जाता है।

(क) जब हम नृत्य करते हुए हँसते हैं, तो हमारे अन्दर जमा अतिरिक्त ऊर्जा का दवाब कम होता है। जो हमारे प्रफुल्लि होने में सहायक है।

(ख) जब हमारे आँख से आँसू निकलते हैं तो हमारे शरीर का घुला बिष हमारे आँख और नाक से निकलने लगता है।

(ग) वैसे तो छत्तीस प्रकार के साल्ट हैं। लेकिन यूनानी चिकित्सा में 14 प्रकार के साल्ट से चिकित्सा की जाती है। जब हमारे आँख से आँसू निकलते है, तो किस भाग से कैसा साल्ट निकलता है वह भावना के आँसू पर निर्भर करता है।

परम प्रेम में तो आँसू बिलकूल मानसरोवर के जल जैसा निर्मल बिलकूल ठंढा और कोई साल्ट नहीं, आँख से लुढकने पर बिलकूल शांति प्रदान करता है। निर्मल आँसू गाल पर चिन्ह भी नहीं बना पाता। साल्ट हमारे कर्मबन्धन को मजबूत करता है।

जब हम ताल-मात्रा मिलाकर नृत्य करते हैं, तो हमारा ध्यान ताल-मात्रा मिलाने पर लगा होता है। लेकिन जब ताल-मात्रा भूलाकर ''ॐ'' पर ध्यान कर नृत्य करते हैं, तो बेसुध अवस्था में साम्यावस्था आ सकती है एवं कोई ऊँची घटना घटित हो सकती है।

अतः प्रेम, करुणा में बहे आँसू हमारे कर्मबंधन के गाँठ को ढ़ीला करता है। दुःख और संताप में बहे आँसू गर्म होते हैं एवं हमारे कर्मबंधन के गाँठ को मजबूत करते हैं।

जब हम नृत्य करते होते हैं, तो सभी जोड़ों पर दबाव से ऊर्जा के कम्पन्न से मल या ऊर्जा का प्रवाह संचालित हो जाता है।

9. <u>बिपष्ना –</u> नृत्य के बाद शरीर के सारे नसों में रक्त की गति तेज हो जाती है।

जब हम अपने साँसों पर ध्यान कर आसन पर बैठते हैं, तो साँस पर ध्यान देने से साँस नियंत्रित एवं मंद होने लगती है। इसके बाद शांत भाव से हमें ॐ

का ध्यान करते हुए सभी चक्रों पर ''ऊँ'' के आभामंडल के साथ भ्रमण करना और बिल्कुल शांत हो कर ध्यान में जाना है।

''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' धर्म निरपेक्षता के आधार पर लिखी गई पुस्तक है।

हम किसी भी धर्म समुदाय से जुड़े हैं। सभी धर्म में आस्था रखेगें, तो कभी सफल नहीं हो सकते। जब तक एक आकार या शब्द का ध्यान पूजा अर्चना नहीं करेगें, तो किसी एक बिन्दु पर केन्द्रीत नहीं हो पायेगें।

घर में अगर दस नल को खोलेगें तो बहुत कम पानी आयगा। लेकिन एक नल को खोले तो पानी पूरे फोर्स से निकलने लगेगा। चाहें किसी भी मंदिर या मस्जिद में जाय। उनमें विराजे देवता के हृदय में अपने इष्ट का ही आकार देखें।

गुरूदेव ने ''ऊँ'' का जाप हर चक्र के ऊपर के चक्रों पर हर केन्द्र पर जपने की दीक्षा दी। ''ऊँ'' का जाप उल्टा एवं सीधा दोनों रूप में। लेकिन जब हम किसी भी मंदिर में जाते हैं, तो वहाँ के मैगनेटिक फिल्ड में उच्च आत्माएँ अपने तमस्, रजस् एवं सतज् के फ्रिक्वेन्शी (कम्पन) पर अपनी कर्मबंधन के इच्छाओं के अनुरूप उपस्थित रहते हैं

साधक के मनोवृत के अनुकूल उनके कम्पन्न में आकर उन्हें शुद्धतम रूप देने में सहायक होते हैं।

अतः अगर हम ''ऊँ'' का ही ध्यान करते हों, तो पहले आज्ञाचक्र पर ''ऊँ'' का प्रकाशवान ओरामंडल को स्थापित करें। फिर जो भी मूर्ति आकार या निराकार रूप मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरूद्वारा में आस्थापूर्वक स्थापित, हो उनके हृदय पर ''ऊँ'' का ओरामंडल की कल्पना करें।

उसी ''ऊँ'' के ओरामंडल को मैरूडण्ड के नाभिकुण्ड पर दस दल पर स्थापित करें फिर हृदय चक्र के बारह दल पर ऊँ का प्रकाशवान तेजोमय रूप के स्थापना की कल्पना करें। अगला चक्र विशुद्धाय, कन्ठचक्र सोलह दल का है उसके सिंहासन पर ऊँ का तेजोमय वलय का ध्यान करें।

आज्ञाचक्र, मूर्ति का हृदयचक्र, नाभिचक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धायचक्र कुल पाँचों चक्र पर अपने ऊँ के माला को घुमाते हुए मनशा, बाचा कर्मना से जाप करें। अगर शरीर के मेरूडण्ड पर निश्चित बिन्दु पर ''ऊँ'' की स्थापना कर पायेंगे तो

पाँच माला फेरते ही एक अलग ऊर्जा का स्रोत माला के घुमावदान सर्किल में महसूस होने लगेगा। जो प्राणऊर्जा को काफी ऊर्जावान कर देता है। ''ऊँ'' केवल सुषुम्ना नाड़ी से यात्रा करेगीं ।

अगर अपने साधनारत ध्यानस्त पत्नी के हृदय पर भी ''ऊँ'' की स्थापना कर माला फेरें, तो प्राणऊर्जा को ऊर्जावान होना सुनिश्चित है।

राजा जनक अपने पत्नी के स्तन पर हाथ रखकर बारह वर्ष तक तपस्या की और ऋषि-मुनि के उच्चतर शिखर पर पहुँचकर, राजा होते हुए भी विदेह कहलाये।

10. **योगनिद्रा या शबासन -** योगनिद्रा में जाने के लिए मन और शरीर के तनावों को बिल्कुल ढीला करना पड़ता है। जो नृत्य एवं बिपष्ना से काफी सहयोगी सिद्ध होता है।

हम अपने आसन पर शव की तरह बिल्कुल ढीला तनाव रहित मुद्रा में पीठ के बल सोते हैं। क्रिया शुरू करने से पहले हाथ की दोनों मुट्ठी एवं पैर में तीन बार तनाव ताकत लगाकर डालते हैं। हाथ पैर का तनाव का केन्द्र गुदामार्ग के ऊपर स्वाधिष्ठान पर महसूस होता है। ताराआसन में मूलाधार पर दबाव महसूस होता है।

बिल्कुल शांत एवं तनावरहित मूर्दों की तरह अपने शरीर को ढीला छोडते हैं। एक-एक अंग, अंगूठा, पूरा पैर का पंजा, टखना, पिंडली, घुटना, जाँघ, कमर, इन्द्रीय एवं उपइन्द्रीय, कमर ,पीठ, छाती, हथेली सहित दोनों हाथ एवं पूरा शरीर और मन पर बारी बारी से भावना करते हैं,

'बिल्कुल चैतन्य' मगर शांत प्राकृतिक ऊर्जा से जुड़ा हुआ, ''मैं एवं मेरे शरीर का हर अवयव' शांत हो रहा है।'' इसी को न्यास ध्यान भी कहते हैं।

''मेरे शारीरिक एवं मुखमंडल के ओरामंडल का विकास हो रहा है। मैं शरीर एवं मन से बिल्कुल शांत हो गया हूँ। मेरा सूक्ष्म शरीर मेरे स्थूल शरीर से निकलकर पैर के पास खड़ा हो गया एवं मेरे शबवत् परे शरीर का पूरा निरीक्षन कर रहा है।''

''मेरे हृदय पर ''ऊँ'' का आभामंडल युक्त एक विमान तैयार हो गया है। स्थूल शरीर के ऊँ से अपने सूक्ष्म शरीर के ''ऊँ'' का आभामंडल का आदान-प्रदान हो रहा है।''

''मैं ''ॐ'' के विमान पर बैठकर मानसरोवर की तरफ उड़ चला हूँ, मानसरोवर में हंस किल्लोल कर रहें हैं। सूर्य की रश्मियाँ जल पर तारों की तरह झिलमिला रही है। सम्पूर्ण वातावरण से हिमालय की जड़ी-बुटी, पुष्प की सुगन्धें आकर मेरे मनो मष्तिस्क को ताजा कर रही है। प्रकृति के सन्नाटे में ॐ रब कर रहा है।''

''वहाँ के प्राकृतिक छटा से विभोरे हो रहा हूँ मैंने सरोवर से पाँच तरह का कमल लाल, गुलाबी, नीला, पीला, उजला तोड़ लिया हैं एवं ''ॐ'' के विमान पर चल कर हिमालय पर चढकर हिमालय के चोटी पर ध्यानस्थ शंकर के सामने पहुँच गया हूँ एवं भाव विभोर होकर नृत्य करने लगा हूँ।''

''शिव की जटा से गंगा की फुहार मेरे ऊपर बरसने लगी है। मैं गंगा स्नान कर धन्य-धन्य हो रहा हूँ।''

''शिव के हृदय से ॐ का आभामंडल निकलकर हम पर बरस रहा है। मैं कृत्य-कृत्य हो रहा हूँ। मैंने पाँचों कमल पुष्प को शंकर की जंघा पर सजा दिया है। मैं शंकर के आर्शीवाद से कृत्य-कृत्य हो रहा हूँ।''

''**ॐ** के विमान पर चढकर उड़ चला हूँ एवं वापस अपने शरीर के हृदय पर **ॐ** को स्थापित करते हुए पैर के पास खड़ा हो गया हूँ। मेरा सूक्ष्म शरीर अति निर्मल होकर मेरे स्थूल शरीर में जो शबवत् अवस्था में शरीर पड़ा है, उसमें प्रवेश कर गया हूँ।''

''मेरा स्थूल शरीर पूरा निर्मल और शांत हो गया। चेहरे का आभामंडल बिल्कुल प्रशांत एवं प्रसन्न मुद्रा में शांत पड़ा है, मेरा सारा शरीर चैतन्य होने लगा है।'' इसके बाद धीरे-धीरे आँख खोलकर बाँया करबट लेते हुए बैठ जाते हैं एवं शांत मन से आये-गए अपने विचारों का अध्यन करते हैं ।

वैसे तो इस प्रयोग में बीस मिनट में अभ्यास शुरू किया जा सकता है लेकिन जब शवासन में ध्यान लगेगा तो ऐभरेज 45 मिनट तक चला जायेगा।

11. **नाड़ी शोधन प्राणायाम** - यों तो चौरासी प्राणायाम की व्याख्या है। जिसमे नौ प्राणायाम मुख्यतः योगी करते हें। इनमें नौ प्राणायामों में लोम विलोम एवं प्राणाकर्षण प्राणायाम का कुण्डलिनी जागरण में बहुत महत्व है।

प्राणचक्र द्वारा ही शरीर के सभी चक्रों एवं नाड़ियों को प्राणऊर्जा मिलती है। बगैर इन दोनों नाड़ियों के शोधन का योग में कुण्डलिनी दर्शन सम्भव नहीं है।

जब शक्ति का अवतरण होता है तो अशुद्ध नाड़ियां उसके प्रवाह को विकृत कर देती है। हमारे प्राणवायु द्वारा ऑक्सीजन हर ब्लडसेल (रक्तकण) को पूनः शक्ति (रिचार्ज) प्रदान करने लगती है।

हम अगर 250 प्रतिशत सांस लेते हैं, तो उसका 150 प्रतिशत रक्त एवं कोषा से रिएक्सन करके कार्बनडायऑक्साइड के रूप में बाहर निकल जाता है।

हमारे नांक से आठ अंगुल तक जाते-जाते फिर वातावरण में घुलकर ऑक्सीजन बनाने लगता है। 100 प्रतिशत हमारे 72 करोड़ नाड़ियों एवं अरबों सेल, नाड़ियों तक प्राणवायु द्वारा ही, ऑक्सीजन पहुँचा पाती है।

जो प्रतिपल हमारे शरीर के गठन एवं विघटन में क्रियारूप में स्पंदित होता रहता है।

नाड़ी शोधन में हम बहुत ही धीरे-धीरे सांस लेते है एवं धीरे धीरे छोड़ते हैं। रूई का फाहा भी नाक के सामने रख दिया जाय तो उसका स्पंदन नजर नहीं आना चाहिए। ''ॐ'' का हमेंशा हृदय पर ध्यान रखना चाहिए।

लेकिन प्राणाकर्षण प्राणायाम में हम जितना आहिस्ते से सांस, जितनी देर में लेते हैं। उतना देर सांस फिर अन्दर रोकते हैं, फिर उतना ही देर में सांस छोड़ते हैं। यह क्रम ''ॐ'' का माला प्रतिकेंद्र पर जपते हुए एक माला जपने की मणिका फेरने की तरह ध्यानस्थ होकर तीन बार में लगभग बारह मिनट लग जाते हैं।

प्रति मनका फेरने पर या षटचक्र केन्द्रों पर ''ॐ'' के नैसर्गिक रूप का ध्यान जरूर होना चाहिए।

12. उदगित प्राणायाम - यह मूलाधार से आज्ञाचक्र तक **ॐ** का उच्चारण करते हुए करना है। सांस लेकर मूलाधार पर फन उठाये कृष्णवर्ण सर्पिनी के मस्तक पर नैसर्गिक प्रकाश वलय के साथ **ॐ** की स्थापना का दर्शन करते हुए, सांस मूलाधार पर रोकने का मनोभाव करना है।

एवं छोड़ते वक्त पिछला मेरूदण्ड के पोले भाग में दौड़ती सुषुम्ना नाड़ी के त्वरित नाड़ी के द्वारा हर चक्र का भेदन करते हुए **ॐ** को अपने ध्वनी कम्पन्न से, संगीत के सा, रे, ग, म प, ध नि की तरह लयबध करते हैं ।

सर्पिणी के सामने **ॐ** का वीण बजाने की तरह का भाव करते हुए आज्ञाचक्र में **ॐ** ध्वनी का प्रवेश बिल्कुल **"नि"** तक के कम्पन्न में करना हैं।

कामक्षेत्र यानि नाभि कुण्ड के तीन केन्द्रों से तमस् "ऊँ" का उच्चारण आज्ञाचक्र तक ले जाना है।

ज्ञानक्षेत्र के दो केन्द्र अनाहत से विशुद्धाय तक रजस् ऊँ का उच्चारण करके आज्ञाचक्र के गृह गहवर में ऊँ के प्रवेश पर पूरे शरीर के अणुओं में दिव्यज्योति का अनुभव करना है।

विशुधाय से आज्ञाचक्र तक सतज् ऊँ की ध्वणि करना है। ऊँ का सभी केन्द्रों पर माला फेरते उदगित प्राणायाम तीन बार करने में लगभग 15 (पन्द्रह) मिनट लग जायेंगे।

रात में भी भोजन के तीन घंटा बाद :-

(1)	**लोम-विलोम**	**10 मिनट**
(2)	**प्राणाकर्षण प्राणायाम**	**12 मिनट**
(3)	**भ्रामरी**	**12 मिनट**
(4)	**शवाआसन**	**20 मिनट**
	(योगनिद्रा)	**54 मिनट**

<u>भोजन</u> – भोजन की उचित व्यवस्था भी हमारे साधना कर्म को ऊर्जावान रखती है। शरीर को भी उर्जा चाहिए और मस्तिष्क एवं षटचक्र को भी ऊर्जा चाहिए जो भोजन के अन्न में या फल में उपस्थित तामसी, राजस् एवं सतज् ऊर्जा से काफी प्रभावित होती है।

भोजन में भी स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर को गतिमान रखने के तीनों तरह की ऊर्जा होती है। जो प्रकृति के प्राणऊर्जा से प्राप्त होती है।

भोजन में गर्भिनी के गर्भ में बच्चे को ऊर्जावान रखने की क्षमता उनके तामसिक, राजसिक एवं सात्विक भोजन के ऊपर बहुत निर्भर करता है। वे माता के द्वारा ही नाभिकुण्ड से जुड़े होकर श्वसन क्रिया एवं रसरसायन की ऊर्जा को ग्रहण करते हैं।

ऐसा व्यवहारिक रुप से देखा गया है कि लहसून, प्याज व तामसिक भोजन अगर गर्भिनी होने पर माता त्याग देती है, तो बच्चे बहुत संस्कारी होते हैं एवं वासनात्मक प्रवृत पर भी उनका बहुत नियंत्रण होता है। बच्चों के उच्च संस्कार के लिए ही माताएँ, धात्री (आँमला) का मुरब्बा एवं गोरा बच्चा के लिए उजला केसर का

प्रयोग करती है। सुबह में दही, दिन में मट्ठा एवं शाम में दूध पीना चाहिए। रात्रि में दही और शत्तू कभी नहीं खाना चाहिए।

भोजन हम साधकों को भी काफी नियंत्रण से खाना चाहिए। आसन प्राणायाम के आधा घंटा बाद भोजन करना चाहिए। आसन प्राणायाम करते वक्त हर क्रिया के बाद एक मिनट से पाँच मिनट तक, क्रिया के तनाव के अनुसार रेस्ट (विश्राम) लेना चाहिए।

हम अपने साधना के क्रम को ब्रह्ममुर्हुत में शुरु करें। ताकि साढ़ें सात बजे सुबह तक सारी क्रिया सम्पन्न हो जाय। आठ बजे कुछ पेय जूस लेने के बाद भोजन या नाश्ता करके हम अपने दैनिक कार्यों में लग जाय।

उचित तो लगता है, कि नौ से दस के बीच सुबह का भोजन एवं पाँच से छः के बीच शाम का भोजन किया जाय। दिन में कुछ हल्का चाय-नाश्ता लिया जाय। भोजन को पेट के तीनों आँतों से पचकर निकलने में पाँच से छः घंटा लग जाता है।

अगर बीच-बीच में कुछ-कुछ खाते रहेंगे तो हमारी सारी ऊर्जा भोजन को पचाने में लग जायेगी। और हम जो साधना क्रम करना चाहतें है उसमें बाधा आयेगी। दिन के सूर्य ताप में जठराग्नि ज्यादा सुपाच्चय होती है। लेकिन रात्रि के चन्द शीतलता में भोजन पचने में ज्यादा वक्त लगता है।

चूँकि साधनाक्रम मानसिक है। अगर मस्तिष्क के ऊर्जा का ज्यादा हिस्सा पाचन क्रिया ही ले लेगी, तो हम साधना के लिए ऊर्जा कहाँ जुटा पायेगें! भोजन के बाद निद्रा आने का कारण ऊर्जाशक्ति का आँतों के तरफ बह जाना ही है।

भोजन के तीन घंटा उपरान्त यह 54 मिनट का योग साधना करना चाहिए प्राणाकर्षन और भ्रामरी उदगित की तरह ही सातों केन्द्रों पर माला जपते हुए करना चाहिए।

भोजन करते ही हमारे शरीर में रक्तसर्करा, रक्तचाप, हृदय की धड़कन वगैरह तेज हो जाता है, जो अढाई घंटे में शांत होता है।

शरीर का स्वभाव है, कि भोजन करने पर हमारी सारी ऊर्जा आँत भोजन पचाने में लेने लगती है। आँत जब अपना दबाव भोजन पचाने के बाद कम करने लगती है, तो ऊर्जा मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होती है। मानसिक भाव, मस्तिष्क के प्रशांत रहने पर संभव है।

शीतलता से अग्नि मंद पड़ जाती है और उष्णता से तीव्र होती है, वह प्रभाव जठराग्नि पर भी पड़ता है। सूर्य-स्वर में पाचन शक्ति की वृद्धि रहती है, अतएव उसी स्वर में भोजन करना उत्तम है। भोजन के उपरांत बाएँ करवत से लेटे रहना चाहिए। उद्‌देश्य यही है, कि बाएँ करवट लेने से दक्षिण स्वर चलता है, जिससे पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है।

भोजन करके तुरंत ही मूत्रत्याग करना चाहिए, इससे कोई बीमारी नहीं होने पाएगी। पेशाब बाएँ स्वर में और मलत्याग दहिने स्वर में करना चाहिए। हाँ, शौच के समय पेशाब भी दहिने स्वर में करने में दोष नहीं है।

आसन - हमारा आसन भी पवित्र एवं अपना होना चाहिए। जो पूजा के निश्चित जगह में लगाने की सुविधा हो। पूजास्थल कुछ हवादार भी होना चाहिए। हम जो ध्यान पूजा करते हैं, वह मेरा आसन एवं जर्रोदिवाल भी उस ऊर्जा को पकड़ती है। जो हमें शुद्ध विचारों के आदान-प्रदान में सहयोग करती है।

बिना आसन के कोई भी आयाम-प्राणायाम या पूजा नहीं करना चाहिए। चूंकि जब कुण्डिलिनी जागरण की स्थिति आयेगी, तो त्वरित बिजली जो सहस्त्रार से आज्ञा चक्र द्वारा गिरती है, वह काफी पावरफुल होती है। वह गुदामार्ग से पृथ्वी में प्रवेश कर हमें मृत्यु भी दे सकती है।

शरीर शुद्धि - कुण्डलिनी को शारीरिक एवं मानसिक कोई भी गंदगी बर्दास्त नही है। अतः कुण्डलिनी योग की प्रतिक्रिया शुरु करने से पहले शास्त्रकारों द्वारा निर्धारित षटकर्म से पंचकर्मा जरुर करा लेना चाहिए।

सांस की गति को उचित कम्पन्न देने के लिए साईनस, थाइराइडग्लैन्ड एवं ललाट में कोई भी मल जमा रहने पर हम सफलतम "ऊँ" ध्वनि नहीं कर पाते।

मुद्रा - वैसे पद्‌मासन ही उपयुक्त आसन है। लेकिन साधक के सुविधानुसार सुखासन या वज्रासन में भी ज्ञान मुद्रा लगाते हुए साधना की जा सकती है। किसी भी आसन में रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी होनी चाहिए। पद्‌मासन में कुछ अधिक ऊर्जा बनती है।

स्नान - हमारा सम्पूर्ण शरीर रोम-रोम से भी साँस लेता रहता है। अतः 10 मिनट सूखे तौलिये से या गर्म पानी से रगड़कर करें, तो तौलिया बिल्कुल निचोर कर धर्षण स्नान करना चाहिए।

लगभग नाक एवं मुँह के श्वसन क्रिया के अनुपात में 15% श्वसन हमारे शरीर के रोम-रोम से होता रहता है एवं हमेशा हमारे सम्पूर्ण शरीर में कुछ न कुछ फैलाव एवं संकुचन होता रहता है। अतः वस्त्र बिल्कुल कसा हुआ नहीं पहनना चाहिए।

स्नान करते वक्त पहले जंघा एवं कमर पर पानी डाल कर उसके नीचे के ताप को शान्त करना चाहिए। फिर कंधा एवं छाती पीठ पर पानी डालकर शरीर का ताप कम करना चाहिए। सबसे बाद में सर पर पानी डालना चाहिए एवं वहाँ का ताप कम करना चाहिए।

इसके बाद दस ईंच दूरी वाले नल से सीधे नाभि कुण्ड पर पानी डालते हुए इन्द्री पर से होकर निकल जाने देना चाहिए। ताप कम हो जाने तक नाभि पर पानी डालने की क्रिया को **मेहर स्नान** बोलते हैं।

सोमरस पान – कुण्डलिनी जागरण में एक अव्यक्त अव्यस्था शारीरिक एवं मानसिक रूपों में दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए साधक को कभी-कभी नशापान की जरूरत पड़ जाती है।

स्वाधिष्ठान पार किये साधक के कान में एवं मस्तिष्क में हमेशा कभी कम कभी ज्यादा समुद्र के हहाने का आवाज आती रहता है।

लेकिन नशापान करने वाले को हम देखते हैं वह लड़खड़ाते चलता है, एक वस्तू को तीन या कई करके देखने लगता है। सड़क के बगल नाली में जाकर गिरता है। भाँग का नशा तो बिस्तर पर इतना उठा पटक करते महसूस होता है कि, एक अलग वेदना महसूस होने लगती है। तो हम फिर किस तरह ध्यानस्थ हो पायेंगे।

(अ) इसलिए नशापान में मेरा अनुभव है, कि भाँग मटर के दाने से ज्यादा कभी उपयोग नहीं करना चाहिए।

(ब) आयुर्वेद में भी सोमरस बनाने की व्यवस्था है, उसका सेवन का अनुपात भी हल्के मस्ती के सुरूर से ज्यादा न हो।

(स) होमियोपैथ में भी सोमरस को दवा के रूप में बनाया गया है। जिसका नाम काभा -काभा (Kava-Kava) या (PIPER MEHAY) पाइपर मेथी है। पन्द्रह से बीस बुन्द सुबह-शाम लेना चाहिए। इससे भी हल्का शरूर मानसिक रूप से महसूस होता है।

13. हस्तऊर्जा:- अपने ऊर्जा को अपने स्वास्थ्य लाभ एवं अध्यात्म लाभ की कामना से ''ॐ'' का उच्चारण करते हुए तीन बार हाथ से निकले ऊर्जा का प्रवाह मुखाकृति से लेते हुए पाद तक करते हैं।

जब हम आयाम प्राणायाम करते हैं, तो हमारे शारीरिक ऊर्जा का व्यास बढ़ जाता है और उसका कम्पन्न हाथ पर कुछ प्रबल महसूस होता है।

उदगित प्राणायाम की समाप्ति पर हम दोनों हाथ की तलहट्टी को आमने-सामने एक फीट की दूरी पर रखते हुए, अपने दोनों हाथ की ऊँगलीयां भी पूरा तानते हुए यह भाव करते हैं, कि मेरे सभी चक्रों के केन्द्र पर जमा ऊर्जा खासकर प्राण केन्द्र से प्राणशक्ति का प्रवाह दोनों हाथों से होते हुए अंगुली की नोक एवं तलहट्टी के मध्य से निकल रही है। (चित्र संख्या - 36) में दिखलाई गयी है।

प्राणायाम में वैसे ही ऊर्जा का प्रवाह हाथ की ऊँगलियों की ओर ज्यादा होने लगता है। लेकिन प्राणशक्ति का भाव का वेग मिल जाने से प्रवाह कुछ अधिक तेजी से होने लगता है एवं हाथ पर कुछ ही मिनटों में कम्पन्न होने लगता है एवं सिचाव पैदा होकर हाथ सटने लगता है।

जब कम्पन्न की गति तीव्र हो जाए तो, अपने उँगलियों एवं तलहट्टी को सर से लेकर बांह के नीचे से हाथ के पीछे रीढ़ की हड्डी से घुमाते हुए कमर जांघ से, फिर ऊपर नाभि हृदय होते हुए पूरे मुखमंडल पर तीन बार फेरना है।

यह क्रिया अपने स्वास्थ्य एवं मंगलकामना के लिए तो उपयोगी है ही। अगर सम्मोहन के लिए माध्यम पर पास देना हो तो ऐसी क्रिया ही करके उंगुलियों पर अपने शक्ति के प्रवाह को ले आना चाहिए। अगले रोगी पर अपने मनोभाव को केन्द्रीत कर पास देने से उसकी बीमारी एवं मनोदशा पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

14. **समाप्तिः**- आसन से उठने से पहले दोनों हाथ को उठाकर अपना मंगल कामना करते हुए, विश्व मंगल की भावना करते हुए अट्टहास करते हुए अपने ध्यान, आसन की समाप्ति करनी है। (आसन का क्रियारूप एवं उसे प्राण ऊर्जा का गमना-गमन भाग-3 के पृष्ठ संख्या 70 में दखें)

शैक्षणिक प्रकरण

स्वप्न

रात्री का तीसरा पहर था। मैं 3 बजे सुबह उठकर फिर सो गया। मैने देखा कि हॉल के बीच में निर्विकार भाव से मैं सोया था। चारो ओर मेरे प्रियजन खड़े उदास, कुछ आंखों में आंसू लिए खड़े स्तब्ध और मौन मेरी ओर देख रहे थे।

लेकिन मुझे आश्चर्य तब लग रहा था, जब मैं अपने सोये हुए शरीर से दूर हवा में तैरते हुए, अपने आपको बहुत आनन्दित एवं हल्का महसूस कर रहा था। मेरी पत्नी मेरे छाती पर अपना सर पटक-पटक कर रो रही थी एवं अपना दूहथ्थर भी चला रही थी।

लेकिन मुझे कोई चोट नहीं लग रहा था। मैं आश्चर्यचकित था कि इतने प्रेम से पत्नी ने सीने पर सर रखकर तो कभी नहीं प्रेम दिखलाया था। लेकिन आज क्यों इतना प्रेम दिखला रही है। मैं उनके आंसू पोछना चाहता था।

लेकिन मैं उनको छू नहीं पा रहा था। मैं बारी-बारी से अपने प्रियजन से बात करना चाहता था। लेकिन कोई मेरी बात नहीं सुन पा रहे थे।

लेकिन आश्चर्य मुझे तब और लगा, जब मैं अपने प्रियजन के शरीर से उठते कम्पन्न को पढ़कर सभी के मनोभावों को पढ़ रहा था। मैने कई प्रियजन के मनोभावों को पढ़ा और समझा कि वे बलात आँसू निकालकर अपने दुख को केवल जाहिर करना चाह रहे थे।

मेरे पास एक मित्र मेरी तरह ही हवा में तैरते हुए आ गये। जो कुछ माह पहले ही दुनिया छोड़ चुके थे। उन्होंने मुझे बहुत आदर से समझाया कि मैं मर चूका हूँ। सामने मेरी लाश पड़ी है। जिसको अन्तिम संस्कार के लिए लोग ले जाना चाहते हैं। अगर उस लाश को जल्द नहीं जलाया गया तो मेरा शरीर सड़कर गलने लगेगा।

मैने देखा कि, मैं उड़ चला हूँ और मेरे साथ एक मौलवी भी चलने लगा है। तुरंत मैं एक चौड़े रास्ते के दोनो ओर अद्वितीय सुन्दर महल और बाग-बगीचे युक्त परिकोटा के आगे एक दरवाजे पर खड़ा हो गया हूँ। जहां एक ओर तो यमराज जैसे दूत की तरह पहरेदार खड़े थे एवं दूसरे तरफ के महल पर देवदूत सरीखें पहरेदार खड़े थे।

मैं और मौलवी देवदूत जैसे खड़े पहरेदार के पहले द्वार के सामने खड़ा हो गया। मैने देखा कि मौलवी ने अकड़कर कहा कि "दरवाजा खोलो !"

''मैं पृथ्वी पर का बहुत बड़ा इस्लाम धर्म का मौलवी हूँ! मैं चौंतीस बार हज कर आया हूँ और मेरा स्थान तो स्वर्ग के सबसे अच्छे जन्नत में होना चाहिए!''

पहरेदार ने कहा ''मैं चित्रगुप्त से पूछकर बतलाता हूँ!'' उसने आँख मुन्दी और मौलवी से बताया कि ''तुमने जरूर चौंतीस बार हज किया है! लेकिन खुदा को याद करने से ज्यादा तुम अपनी मान-प्रतिष्ठा पर ज्यादा ध्यान दे रहे थे !

खुदा की याद तुम्हे आ ही कहाँ रही थी! जब भी हज को गये और हज करके आये तो हजारों लोगों ने तुम्हारे गले में फूल का गजरा डालकर **''हाजी मुल्ला जिन्दाबाद, हाजी मुल्ला जिन्दाबाद''** के नारे लगाकर तुम्हारा स्वागत किया !

तुम अभिमान से अपना सर उठाये, खुदा के सबसे बड़े बन्दे के रूप में अपने को एहसास किया! तुमने तो चौंतीस बार हज जाने का बदला हजारों लोगों का आत्मविश्वास जीत कर पा लिया! तुम्हारे लेखा जोखा में एक भी हज का धर्म नहीं लिखा है।''

मौलवी ने कहा कि ''मैं प्रतिदिन पाँच बार नवाज पढ़ता था!'' देवदूत ने कहा कि! ''तुम नवाज जरूर पढ़ते थे, लेकिन हर बार तुम्हारा ध्यान लगा रहता था, कि मुझे कितना लोग नवाजी जानकार मेरा सम्मान कर रहे हैं !''

''तुम्हारे नवाज में खुदा की इबादत तो थी ही नहीं! तुम तो कनखी से देख रहे थे, कि जमा लोग कितना तुझे तन्मय होकर नवाज पढ़ते देख रहे हैं!''

''तुमने हजारों इस्लाम धर्म के अच्छे आत्माओं को छला है! इसलिए तुम्हारा पाप का हिस्सा बहुत भारी है। तुम अगले दरवाजे में नर्क के महल में जाओ!'' उस मुल्ले को यमराज के दूत ने अपने नर्क के महल में ले जाकर उसके कर्मफल के अनुरूप स्थान में डाल दिया।''

उसी समय एक बहुत बड़े नेता देवदूत के दरवाजे पर आ गये। देवदूत ने आँख मुंदकर उसके कर्मो को पढ़ा एवं बैन्ड बाजे के साथ उसे स्वर्ग में दाखिला दे दिया।

मैंने देवदूत से पूछा कि बैन्ड बजाकर इतने सम्मान से इस नेता को क्यों ले जाया गया। तो उन्होने बताया कि सैंकड़ों हजारों साल में कोई लाखों में एक नेता तो स्वर्ग का अधिकारी आ पाता है।

"लाखों करोड़ों नेता तो लालची, कामी, हत्यारे दुनियां के सारे कुकर्म करके नरक के भागी होते हैं! पैसा और स्त्री के पीछे अपने संचित सारे अच्छे कर्म को गवाँ बैठते हैं! वे नर्क के सबसे निकृष्ट जगह के अधिकारी ही तो हैं!"

"इसलिए हजारों साल बाद एक नेता का सम्मान करने का मौका मिला है! जिसने समाज उत्थान के लिए सत्य, अहिंसा का वास्तविक कर्तव्य का रूप अपनाया एवं संसार का कल्याण करके स्वर्ग के अधिकारी हुए हैं!"

फिर मैने देवदूत से अपने लिए स्वर्ग में जाने का रास्ता माँगा! उसने तुरंत अपनी आँख मुंदकर बताया कि, "तुम्हारा स्वर्ग और नर्क का पलड़ा बराबर है। "पहले तुम कहाँ जाना चाहोगे!"

"देवदूत ने कहाँ कि चूंकि तुम्हारा धर्म और पाप का पलड़ा बराबर है, इसलिए तुम अपना चुनाव स्वयं करो कि, तुम पहले नर्क जाना चाहते हो या स्वर्ग!" मैंने निवेदन किया कि, "मुझे स्वर्ग और नर्क दोनों को देखकर निर्णय लेने का मौका दें!" देवदूत ने कहा कि "जितना समय तुम स्वर्ग या नर्क में गुजार लोगों वह तुम्हारे पाप पुण्य के कर्मफल में कम हो जायगा!"

मैने पहले नर्क के दरवाजे में प्रवेश कर वहां का दृश्य देखना चाहा और मैं नर्क के अन्दर इच्छा करते ही पहुँच गया। मैने देखा कि एक बड़े हॉल में सैकड़ों लोगों के सामने में छप्पन प्रकार के भोग की थाली लगी है।

लेकिन जितने मनुष्य है, सभी के दोनों हाथ में कांटेदार चम्मच बंधे है और सभी उस चम्मच से भोजन उठाकर खाना चाहते हैं। लेकिन किसी के चम्मच से भोजन मुंख में नहीं पहुँच रहा है, भारी चिल्ला पो मची है।

मैं अपने को बहुत हल्का और आनन्दित महसूस कर, हवा में तैरता महसूस कर रहा था एवं केवल इच्छा करने से ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाता था।

मैं आगे बढ़ा, तो देखा एक बोधी वृक्ष के नीचे गौतम बुद्ध बहुत शान्त चित्त से बैठे हैं। वृक्ष एक छोटे टापू पर है। चारों ओर पीब और खून से भरे नदियों में नरकंकाल जैसे व्यक्ति- पीबों, कीटों और नारकीय जानवरों से आक्रमित होकर चिल्ला रहे हैं ।

बहुत सारे मानव उस नारकीय यंत्रना से निकलकर उस छोटे टापू पर गौतम बुद्ध के चारों ओर पहुंचकर बैठते जा रहे हैं। वे नारकीय यंत्रणा को भुलाकर

शान्त चित बैठ गये हैं। **मैं अपने साथ लगे यमदूत से पूछा कि "गौतम बुद्ध और नर्क में?"**

उन्होंने बताया कि "गौतम ने तपस्या कर बहुत ऊँचाई तो पाई। लेकिन सन्यास लेने में अपनी पत्नी और बच्चों को बिलखते छोड़कर आने का कर्मबंधन तो रह ही गया !

मरते वक्त प्रेमवश ही जहर के प्रकोप में इनकी मृत्यु हुई। सो नर्क का कर्मबंधन तो उनको भोगना ही है! लेकिन उनके ओरामंडल के सतज़् प्रकाश क्षेत्र में जो भी उस टापू पर उनके चारो ओर सतज़् प्रकाश के परिधि में आ रहा है, सभी के पाप के कर्मबंधन कम हो रहे हैं।

वे मानव की आत्माएं गौतम के पाप के कर्मबधंन के कटते ही, स्वर्ग के कर्मबंधन को भोगने गौतम के साथ ही जायेगें!"

फिर कुछ आगे बढ़ने पर मैने देखा कि चार नरकंकाल, एक सिंहासन जैसे पालकी पर हिटलर को नरकंकाल की स्थिति में ही ढोये चले जा रहे हैं। उसने मुझे देखते ही चिल्लाया कि **"इसको पकड़ो और गैस की भट्टी में झोंक डालो।"**

यमदूत से पूछने पर यमदूत ने बताया कि, "मानव जिस परिस्थिति में मृत्यु को प्राप्त करता है। वह परिस्थिति नर्क या स्वर्ग में उसके कर्मबंधन में होने से कभी साथ नहीं छोड़ता! काम, क्रोध, लोभ, मोह की सारी परिस्थितियाँ उसे उसी कर्मबंधन के अनुरूप स्वर्ग या नर्क में झेलनी पड़ती है!"

मैने स्वर्ग देखने की इच्छा की तो देवदूत ने दरवाजा खोल मुझे एक देवदूत के साथ अन्दर कर दिया। मैने देखा कि बाग बगीचा से युक्त पहले जैसा ही एक हाल है ।

उसमें बैठे सैकड़ों मनुष्य के सामने छप्पन प्रकार के भोजन बड़े हॉल के टेबुल पर लगे हैं। लेकिन वहां भी उन मनुष्यों के हाथ में चम्मच बंधे हैं। जो अपने मुँख तक नहीं पहुंचा पा रहे हैं।

लेकिन वहां बिल्कुल शान्ति विराज रही है। सबों के चेहरे पर प्रसन्नता एवं आनन्द का झरना बह रहा है।

एक व्यक्ति दूसरे को अपने चम्मच से विभिन्न प्रकार के व्यंजन को उनके मुंह में डालकर, अपने आपको भी तृप्त कर पा रहे हैं।

सबों के मुँह में भोजन एक दूसरे के सहयोग से पहुँच रहा है। परम शान्ति व्याप्त हो रही है।

मैने देवदूत से पूछा कि यह शान्ति कैसी? तो उन्होंने बताया कि ये दया, प्रेम, मुदिता से जीने वालो मनुष्यों की आत्मा है। पृथ्वी पर भी उन्होंने समाज को, परिवार को, सबों को अपने प्रेम, करूणा, मुदिता दया से तृप्त किया है।

इसलिए वहां की परिस्थिति भी उनके कर्मबंधन में है एवं यहां भी वे उसी तरह के सहयोग देकर, पाकर परम शान्ति का अनुभव कर रहे हैं। मैं आगे उड़ चला तो देखा कि चारों ओर निस्तब्धता एवं शान्ति छायी हुई है।

आत्मस्वरूपा लोग वृक्षों और सरोबर के पास ध्यानस्थ आसन लगाकर बैठे हैं। चारो ओर का वातावरण सुगन्ध एवं निर्मलता से आनन्दित हो रहा है।

कुछ संत की पुण्यात्मा अपने चारो ओर, आश्रम की व्यवस्था की तरह पठन-पाठन का कार्य कर रहे हैं, कुछ यज्ञ वेदी के चारो ओर बैठे, हवन और मंत्रोचारण कर रहे हैं।

देवदूत ने बताया कि ''पृथ्वी की ये पूण्यआत्माएं समाज कल्याण, शिष्यों को उचित मार्ग पर लाकर, पूण्यात्माओं की श्रेणी में आकर, समाज की सारी व्यवस्था को उच्चतम स्थिति में लाकर, स्वर्ग को आये हैं।

वह परिस्थिति एवं कर्मबंधन तो इन्हें स्वर्ग में भी आनन्ददायी अवस्था में भोगना है। इन्होंने किसी का दिल नही दुखाया है। दान, पुण्य, तिरथ एवं समाज के कल्याण को सर्वोपरि माना है। अतः उनको वैसा ही कर्मबंधन यहां के स्वर्ग में भोगने को मिला है!''

मैं इच्छा करते ही स्वर्ग से बाहर दरवाजे पर आ गया। मैने देवदूत से पूछा कि अब मेरा स्थान कहां है। तो उन्होंने बताया कि आपने जितने देर में नर्क और स्वर्ग में घुमकर बिताया, और उसकी समीक्षा की ।

उतने देर में ही आपका यहाँ के स्वर्ग और नर्क का कर्मबंधन टूट गया। अब आपको उच्चे लोक के स्वर्ग में जाना होगा।

मैं इच्छाशक्ति को प्रबल करते हुए, कुछ ही क्षणों में व्योम में उड़कर एक बहुत बड़े गोलार्ध के क्षेत्र में प्रवेश कर गया। शायद दूसरी आकाश गंगा थी।

मैं एक बहुत बड़े दरवाजे के सामने पहुंचकर आवाज लगाने लगा कि ''मैं पृथ्वी से आया हूँ दरबाजा खोलो!'' दरबाजा इतना बड़ा था कि उसके छोर का पता नहीं चल रहा था। मेरे बहुत चिल्लाने पर एक छोटी सी खिड़की खुली।

उसके अन्दर से जो आंखे बाहर झांककर मुझे देख रही थी, उससे ऐसा लग रहा था, जैसे हजारों सूर्य मेरी ओर आंखें खोल कर देख रहा हो। उस हजारों सूर्य जैसी आँखों ने मुझसे पूछा कि ''तुम कहाँ से आये हो एवं तुमने कौन सा अच्छा काम किया है?''

मैने बताया कि ''मैं पृथ्वी से आ रहा हूँ और मैने मानवता के सारे कर्म करुणा, मैत्री मुदिता से निभाकर- काम, क्रोध, लोभ, मोह को जीतकर आपके स्वर्ग का उत्तराधिकारी होकर आया हूँ!''

उसने बताया कि ''कौन सी पृथ्वी से आये हो? कोई भी पृथ्वी इतने आकाश गंगा में अपने सूरज के सौरमंडल में घूमते हुए, करोड़ों नक्षत्र ग्रह जैसी पृथ्वी के कक्षा से गुजरते हैं। जिसमें करोड़ों नक्षत्रिय ग्रहों में कम से कम एक लाख पर जीवन विभिन्न रूपों में होता है!

तुम किस पृथ्वी से आये हो? उसका श्रृंखला (इन्डेक्स) नम्बर, एवं सूरज और सौरमंडल का श्रृंखला (इन्डेक्स) नम्बर, आकाश गंगा का श्रृंखला (इन्डेक्स) नम्बर बतावें, फिर तुम्हें उनके जैसे स्वर्ग में रखने की व्यवस्था मैं करूं!''

मैं तो केवल एक पृथ्वी की चर्चा को ही जानता था। इसलिए मैं उन्हें किस आकाश गंगा, और किस सूरज और पृथ्वी का इन्डेक्स नम्बर बताता। घबराहट में मेरी निन्द खुल गयी और मैने घड़ी में देखा की 3 बजकर 10 मिनट हो रहे थे।

तो क्या मैं इन्हीं दस मिनट में स्वर्ग, नर्क, नक्षत्र, इतने सूर्य और इतने आकाश गंगा की सैरकर वहाँ के अनुभव को प्राप्त कर लिया!

पहले ही व्याख्या कर आया हूँ, कि मनुष्य जो सौ वर्ष में जीवन जीता है, स्वप्नावस्था में वह केवल पांच से दस मिनट में देख लेता है। समाधि की अवस्था में हजारों वर्ष पहले के कई जन्मों को अपने आज्ञाचक्र के दृष्टिपटल पर कुछ क्षण में ही देख लेता है।

मृत्यु के बाद प्रेत की भाषा मध्यमा हो जाती है। जो हमारे आपके मनोविचारों के तरंग को पढ़कर प्रेतात्मा जान लेता है। लेकिन हम मनुष्यों की भाषा बैखरी होती है। जिसके कारण हम उनको न देख पाते हैं और न सुन पाते हैं। चूंकि मनुष्य से प्रेत का कम्पन्न क्षेत्र अलग हो जाता है।

जब हम द्वैत से अद्वैत में साधना के बलपर चौथे शरीर से ऊपर चले जाते हैं, तो हमारी भाषा पश्चियन्ति एवं परा में चली जाती है।

जिसमें हम पृथ्वी के हर प्राणी के विचारधारा को पढ़ सकते हैं एवं कम्पन्न क्षेत्र अरबों-खरबों कम्पन्न क्षेत्र एवं मेगासाइकल में चली जाती है। जिसके द्वारा हम कई आकाश गंगा के कम्पन्न क्षेत्र को पकड़ने की क्षमता रखने लग जाते हैं।

निर्वाण में जाने पर हमारा कम्पन्न क्षेत्र खरबों में चला जाता है। जो दिव्यराज के कम्पन्न क्षेत्र को पकड़ने लगता है। उसी तरह न्यूकिलियर के चारों ओर चक्कर लगाते इलेक्ट्रोन-प्रोटोन की दूरी भी ब्रहमाण्डीय स्तर की है।

न्यूकिलियर के न्यूट्रोन में धन और ऋण विद्युत तो साम्यावस्था में आकर अर्द्धनारीश्वर का रूप ले लेती है, एवं निष्क्रिय सा हो जाती है।

लेकिन इन ऋण और धन विद्युत की परिधि में बैठे रेणु के मध्य में अनन्त व्योम का सृष्टिकर्ता तक, इस पंचतत्व से निर्मित मानव के किसी भी कम्पन्न क्षेत्र से पहुँचना असंभव है।

नियन्ता तो बिल्कुल महारेणु के केन्द्र में कील पर ब्रहमाण्ड के रचयिता के रूप में एकाकार हो बैठी है। हम मानव ही अपने व्योम के सृष्टिकर्ता का आत्मा लिए आत्मस्वरूपा, एंव ब्रह्मस्वरूपा हुए बैठे हैं। तो फिर कहाँ ईश्वर को ढूढ़ने हम नदी, पहाड़ों, नक्षत्रों, ग्रहों पर जा रहे हैं।

ईथर की गति अगर आत्मगति 186000 मील प्रति सेकेण्ड है। तो वैज्ञानिकों ने उससे भी गतिमान न्यूत्रान को माना है। जो कुण्डलिनी की गति 345000 मील प्रति सेकेण्ड हो सकती है।

न्यूत्रान के लिए नदी, पहाड़, झरना या कोई सौर का ग्रह नक्षत्र रास्ते में अवरोध के रूप में नही आता है।

लेकिन महारेणु के मध्य में बैठे सृष्टि के नियन्ता की गति तो करोड़ो, खरबों कम्पन्न क्षेत्र में हो सकती है। जो अनन्त विशाल ब्रह्माण्ड के अनन्त

परिधि तक हो सकती है। इसलिए समय और दूरी की मान्यता तो पृथ्वी पर हो सकता है। लेकिन क्वानटम के सिद्धान्त के अनुसार सृष्टिकर्ता के लिए, कोई समय और दूरी का महत्व तो है ही नहीं !

ईश्वर और हमारे बीच तो केवल एक झीना सा मलमल आर पार दिखता पर्दा है। भाव का द्वार हृदय समझ में आता है। लेकिन हृदय तो पम्प स्टेशन है।

जहां मूलाधार जो भावलोक के झीने मलमल को गिराने का प्रवेश द्वार है। वहां सप्तधातु का निर्माण होकर, हमारे 70 ग्लैन्ड एवं 150 दिव्यज्योति एवं बहत्तर हजार नस नाड़ियों में, ब्रह्माण्ड के स्पेश एवं दूरी की तरह, पूरे शरीर में दौड़कर, हृदय रूपी पम्प स्टेशन से गुजर कर, हमारे शरीर के सारे चक्रवात एवं चक्रों को ऊर्जावान कर रही है।

हम नदियों, पहाड़ों, नक्षत्रों, ग्रहों में ईश्वर को ढूंढते फिर रहे हैं। ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' तो इसी ईश्वर और आपके हमारे बीच करुणा, मैत्री और मुदिता, का मंत्र लेकर झीना आत्मदर्शन का पर्दा गिराने का सिद्धान्त लेकर आपके सामने आई है।

उठो! जागो!
गिरा दो इस महीन झीने मलमल के पर्दे को !
स्वयं आत्मस्वरूपा और ब्रह्मस्वरूपा हो जाओ !

शिष्य

मेघा घनघोर बरसने को आतुर रहता है। लेकिन उसे भी उचित मौसम और उर्वरक भूमि चाहिए। वैसे ही गुरु ज्ञान की सघन संवेदना में बरसने को आतुर होते हैं। वगैर बाँटे सिद्धलोक एवं ऋषिलोक जा नहीं सकते! जिसके लिए प्रज्ञावान शिष्य की तलाश रहती है। लेकिन शिष्य कैसे नापेगा विश्वास और आस्था के घटा में खोयाा हुआ ?

प्रसन्न कब होओगे ?

चौरासी लाख भ्रमण के बाद तुम्हे सती-साध्वी, योगी-मुनि का रूप मिला था। लेकिन कामना- आकांक्षाओं ने फिर तुम्हे प्रेतयोनि, पित्तर योनि में ला पटका था एवं तुम जन्म-मरण के कर्मबंधन के चक्रवात में फँस चुके थे !

तुम कर्तव्यच्युत सती-साध्वी, जोगी-मुनि होकर अपनी इच्छाओं और कामनाओ की पूर्ति के लिए, उच्चतर कोख पाकर पृथ्वी पर जन्म लेने को विवश थे। क्योंकि! प्रकृति प्रदत शक्तिसता वगैर तुम्हे तृप्त किये अपने में मिलाने से असमर्थ है। अपने कर्मबंधन के अनुरूप उचित कोख पाकर तुमने गर्भ धारण कर लिया था! क्या तुम्हें प्रसन्नता हासिल हो गयी ?

अपने अवयवो के पूर्ण विकास के बाद तुमने गर्भ में तामसिक अवस्था में समाधि प्राप्त कर लिया था! समाधि हम मानव के ध्यान की उच्चतम शिखर है। जो मरकर फिर से जीवन का प्रारम्भ करना सिखती है।

जन्म प्रक्रिया के नौ माह और नौ दिन उपरान्त तुमने चिल्लाते हुए जन्म लेकर, भूलोक को स्पर्श किया। मानव का उच्चतम शिखर पाकर मुट्ठी बाँधे आये! भाग्य और कर्म का सौभाग्य लिए तुमने माता का स्तनपान किया! तो फिर तुम चिल्लाये क्यों! क्या तुम्हे प्रसन्नता नहीं मिली ?

तुम माँ-बाप के दुलारे, माँ की थपकियाँ और लोरी सुनकर सोते रहे! तुम खिलौने से खेलते रहे और उसे मानव जीवन के अन्त की तरह तोड़ते रहे!

तुम तो अज्ञानता से ज्ञान का प्रकाश लेकर बड़े हो रहे थे! सारी सुख-सुविधा माँ-बाप ने जुटा रखी थी, तो फिर तुम चिल्ला क्यों रहे थे? रो क्यों रहे थे? क्या तुम्हे प्रसनता नहीं मिली ?

माँ-बाप ने अपने पूरे कर्तव्य का निर्वाहन करते हुए तुम्हारा भरण-पोषण, लार-दुलार के साथ किया! तुम्हारे मानसिक एवं शारीरिक विकास के क्रम में तुम्हारी शिक्षा का भी उचित ध्यान रखा! उचित शिक्षा और जीवन यापन के लिए उचित अर्थ व्यवस्था, नौकरी, व्यापार तुम्हे मिल गयी! अब तो तुम सुखी हो गये !

तुम्हारी शादी भी सुन्दर एवं नवयौवना कन्या से हो गयी। तो क्या तुमने सुख का चरम उतकर्ष पा लिए? क्या तुम अपने माँ-बाप के कर्तव्य निर्वाहन का पुरस्कार पत्नी के वासनात्मक प्रेम में आकर तिरस्कार के रूप में तो नहीं दे रहे

साठ वर्ष में ही आजकल सरकार किसी को भी वृद्धा मानकर रिटायर कर देती है। तुमने भी अपने माँ-बाप को उनके जीवन के कर्तव्यों के पुरस्कार से भर कर जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया है ?

या उन्हें अपने कर्तव्यों के भुगतान के रूप में जिल्लत एंव अपमान की कालकोठरी में बन्द कर मझधार में छोड़ दिया है!

क्या पत्नी से हजारो बार सहवास करके आनन्द का चरम उत्कर्ष पाते रहे हो ? जबकि हर मनुष्य में किसी की चिता को जलते देखकर या सहवास के बाद जरूर बिरक्ती की भावना आती है ! तो क्या तुमने आनन्द का उँचतम उत्कर्ष पा लिया ?

अपने बच्चों की शादी बहुत धुम-धाम से करने के लिए, लाखो रूपया तुमने खर्च किये जो तुमने अपने अथक कमाई से जमा किया था। उसको चरम उल्लास के साथ पटाखे, फूल-पत्तियाँ, गाड़ी बंगला पर तुमने खर्च कर डाले !

अब तुम्हें सुख ढूढ़ने की जरूरत तो नहीं है! तो फिर "चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात" क्यों हो रही है !

बच्चे शादी करके क्या अपने को पूरा सुखी महसूस करते हैं। कुछ ही माह में फिर क्यों घर में इतना चिल्ल-पो एवं आतंक मचा है! क्या उनके लाड़-प्यार या सुख-सुविधा में कोई कमी रह गयी है?

नहीं-नहीं सुख तो इस मानव जीवन के आधार में स्थाई है ही नहीं ! सुखी होने के लिए हमें सच्चिदानन्द, चितानन्द, शक्ति स्वरूपा होने के लिए अपने प्राणशक्ति को उर्ध्वगति देना है। जो कुण्डलिनी जागरण से ही सम्भव है।

अब के बिछुड़े कब मिलोगे ?

हम संग-संग मच्छर की योनि में थे। दुष्टता में बहुत लोगो को हमलोगों ने डंक मारा। उन्होंने मसल कर हमलोगों को मार दिया ! गाय और बैल के रूप में जन्म लिया था। मैं कसाई के पिढ़ी पर गर्दन रख कट रहा था। आप पगुरा रहे थे !

जबकी आपको भी कटना था! आपलोग सिंह और चीते के रूप में जंगल पर राज्य कर रहे थे। मैं हिरण बनकर चौकड़ी मार रहा था। आपने मेरा शिकार कर भक्षण कर लिया। धन्यवाद! आपने मुझे पशुयोनि से मुक्ति दे दी !

मैं मयूर बनकर नृत्य कर रहा था। आप सर्प बनकर सामने आ गये। मैंने आपका अन्त कर दिया। सर्पयोनि से मुक्ति दिला दी। हम और आपने मनुष्य योनि में उँच्च महामना साधक-साधिका के गर्भ से जन्म लिया।

उच्चतम मनुष्यता की योनि पायी। तप किया, योगी और शक्तिरूपा सती का रूप लेकर प्रेम, दया, अहिंसा, करुणा, मैत्री का संदेश जन-जन में पहुँचाया !

अर्जुन के बचनो में "जो भी जोग या तप हम कर लेते हैं, वह बिनष्ट नहीं होता। लेकिन योग और तप करते-करते सांसारिक बिषयवासना के आकर्षण में आकर योग भ्रष्ट हो गये, तो क्या मेरा तप बिनष्ट हो जायगा?"

कृष्णा ने उत्तर दिया "नहीं ! वे पुनर्जन्म लेकर सदगृहस्थ, श्रीमन्त ऐश्र्ववान के यहाँ जन्म लेकर, पिछले जन्म की तृष्णा को शान्त कर, तृप्त होकर दान, पुन्य, धर्म, तप करते हुए अपने कर्मबंधन को काटते हैं।"

"हममें लीन होने की भिभिक्षा लिए अगले जन्म में योगी साध्वी का जन्म लेकर योग की साधना करते हुए ब्रह्मलिन होकर सच्चिदानन्द का स्वरूप लेते हैं।"

हम-आप वही योग से पथभ्रष्ट मानव योनि के ब्लैक होल (अन्धबिन्दु) पर खड़े हुए हैं, तो ही उच्च्व गुरु की स्थली पर योग साधना के लिए बैठे हैं। बगैर कुण्डलिनी साधना किये तो वैश्वानर जगत जा नहीं पायेगें!

जहाँ इच्छाशक्ति प्रधान है, योगी के अनुरूप ही वातावरण उपलब्ध हो जाता है। बाग बगीचा की कामना, शिक्षा, विज्ञान, प्रकृति का रहस्य सभी की उपलब्धि पाकर, हमारा सूक्ष्म शरीररूपा, मनःशरीर, आत्मशरीर तृप्त हो जाता है। वहाँ कर्मप्रधान लोक नहीं है। इच्छा प्रधान लोक है।

वैश्वानर लोक से ऊपर मनःलोक है एवं मनःलोक से ऊपर आत्मलोक है। आत्मलोक निज आत्मा का लोक है। वैश्वानर लोक से नीचे तो प्रेतत्व प्राप्त सूक्ष्म शरीर का वासनात्मक लोक है। जो हम आप पर आवेशित होकर तृप्त होते हैं। चाहे, साधु, संत, चोर, बेईमान, आंतकवादी इत्यादि ही क्यों न हों!

हमारा तो स्वगृह मनस शरीर है। जहाँ से साधना कर हम भवसागर से पार हो सकते हैं। मनुष्य की काया ही हमारी उच्च योनि के लिए साध्य है।

बन्धुओं!

"पत्ता टूटे डाल से जाने कहाँ ले जाय,
अब के बिछुड़े कब मिलें, ईश्वर ही बताय!"

बगैर कुण्डलिनी जागरण के तो मिलन सम्भव है ही नही !

जैसे सौ वर्ष की तपस्या से सर्प को मणि प्राप्त हो जाती है, वैसे ही कुण्डलिनी को उर्ध्वगति देकर, आज्ञाचक्र पर कब कौस्तुक मणि प्राप्त करोगे ?

अकेली किरण ही बहुत है

न सोचे अकेली किरण क्या करेगी !, तिमिर में अकेली किरण ही बहुत है !!
कठिन हो, जब एक पग भी बढ़ाना !
कठिन हो, जब कोई गीत गुनगुनना !!
थकावट भरे उन व्यथा के क्षणो में !, बरसता हुआ एक घन ही बहुत है !!
समय, भूमि की पात्रता बिन बिचारे !, निरर्थक गिरे मेघ जल बिन्दु सारे !!
समय पर अगर सीप में गिर सके तो !
अकेला मृदुल श्वाती कण ही बहुत है !!
अनेकों जगह तीर्थो में नहाया !, मगर आत्म संतोष कुछ न मिल पाया !!
हृदय भावना से भरा हो अगर तो !
विमल वारिष का आचमण ही बहुत है !!
न अब है समय, अब न सोचो निभिषभर !,
चलो चल पड़ो आत्म संकल्प लेकर !!
खड़ा ध्वंस के आखरी छोड़ पर जो !
सृजन के लिए एक क्षण भी बहुत है !!

आयु पर विजय

कुण्डलिनी जागरण की अन्तर चेतना ललाट के मध्य में स्थिति तीसरी आँख पर बहुत ज्यादा प्रभाव डालती है। वह पूर्वजन्म के संस्कारगत् अधोगमन से, अगल-बगल, आगे-पीछे अवस्थित रहती है।

वह कुण्डलिनी के तत्वरित प्रवाह वेग में मनुष्य के अपने स्वगृह स्थान, शिव के तीसरे नेत्र की तरह दोनों भौहों के ऊपर एवं ललाट के मध्य की ओर खींचकर अवस्थित होने लगती है।

इसी क्रम में दोनो भौहों के बगल से नाक के मध्य से सूर्य बिखराव एवं शिव के त्रिपुण्ड चन्दन की तरह धनुषाकार स्वरूप में मस्तक पर रेखा खींचने लगती है !

शास्त्रवीद् ऐसा बताते हैं कि मस्तक की रेखाये उम्र के द्योतक एवं विचार केन्द्रता और बिकेन्द्रीकरण के स्वरूप में खींची होती है। प्रतिरेखा पच्चीस साल के द्योतक में हैं। जैसे- अगर तीन रेखा है, तो चौथी रेखा कुण्डलिनी साधना के स्वरूप में ऊपर, वर्णित भौहों के मध्य में रेखा बनने लगती है।

हम दो चक्रो के अन्धबिन्दु पर पच्चीस साल के उम्र के विजेता हो जाते हैं। जहाँ हमारी कुण्डलिनी गति में एक कुण्डल खुलने पर विद्युतीय सर्किट पूरा होता है। (चित्र संख्या 16 में देखें)

भग समाधि की साधना कामक्षेत्र से निकलने तक वर्णित की गयी है। जो नाभिकुण्ड और अनाहत के बीच के मध्यस्थ बिन्दु के अंधबिन्दु पर है। जहाँ तक दो कुण्डल खुलने से पच्चास वर्ष तक के उम्र के विजेता हो जाते हैं।

जहाँ तक अधोगमन की सारी योनियाँ भस्म हो जाती है एवं मस्तिष्क में मृदंग की थाप की ध्वनि सुनाई देने लगती है।

ऋषि महात्मा के लम्बे उम्र तक तपस्या करने का यही राज है। चूँकिं वे तीसरा कुण्डल खुलने की गति में आत्मगति में पहुँच जाते हैं। हमारे मानव सृष्टि में उम्र पर विजय पाने का केवल मात्र यही एक रास्ता है।

चित्रणी एवं बज्रा नाड़ी जो नाभिकुण्ड के कामक्षेत्र तक की सभी तांत्रिक-मांत्रिक की साधना का विषय है। वह गुह्ययानी नाड़ी से इसी ब्रह्मग्रन्थि पर मिलकर, स्त्री में साढे तीन बुन्द का अन्तिम एक बुन्द एवं पुरूष में अढ़ाई बुन्द के अन्तिम एक बुन्द का अमृत क्षरण, प्रतिदिन हमें बुढ़ापा की ओर ले जाता है।

एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह की आन्तरीक भावदशा, अपने अमृत के ब्रह्मग्रन्थि पर जल जाने (भष्म हो जाने) के, ऊर्जा स्वरूप हमें प्राप्त होता रहता है एवं इस सृष्टि के योनिगत चक्रवात को गतिमान रखने में हमारे काम और रति के वर्तुल में जन्म और मृत्यु का भी कारण होता है।

लेकिन ऋषियो की एक बहुत गुप्त प्राणायाम की मुद्रा है जिसे 'जरबी प्राणायाम' की मुद्रा बोलते हैं। वह हमारे कुण्डलिनी जागरण एवं आयु पर विजय में बहुत सहायक होता है।

पूरे शरीर में रूधिर का प्रवाह हृदय के कमलदल रूपी यांत्रिक संस्थान से ही होकर गुजरती है एवं 'धप' और 'ठप' की आवाज करते हुए हृदय के संकुचन गति में बन्द एवं खुलती रहती है।

षट्चक्र की मेरूदण्ड पर उपस्थित चक्रों में अनाहत नामक चौथे चक्र को, सुषुम्ना के हृदय स्थल के पास से गुजरते हुए, अदृश्य सोलहदल के कमल चक्र के स्वरूप में विद्युत स्फुलिं के रूप में दिव्यदृष्टि से देखा जा सकता है।

लेकिन कबीर दास ने इस हृदय को भी, जो शरीर का पम्प स्टेशन है, अष्ट कमलदल के रूप में आठवें मुख्य चक्र के रूप में माना है। माँ गांयत्री के चित्रों एवं मूर्तियां में भी उन्हें अष्टदल के सिद्धदायनी स्वरूप में दिखलाने का प्रयत्न किया गया है।

मुस्लिम समुदाय के एक सिद्ध पुरूष 'मुशा' को सूली पर इसलिए चढ़ा दिया गया, कि वह अपने आप को ईश्वर मानना, खुदा का अधिकार मानता था। उनके आत्मचेतना जगाने का शब्द एवं साधना था कि **'हक् है ! हक् है !'**

यह **'हक्'** शब्द उच्चे आवाज में एवं **'है'** शब्द नीचे आवाज में ओऊम के उच्चे शब्दावली से मध्यमा होते हुए सामवेद के सा, रे, ग, म, प, ध के 'नि' में विलय होते शब्द की तरह ही, जैसे "ओऊ ऊ म्", लगभग एक सेकण्ड के अन्तराल पर प्राणायाम की मुद्रा में श्वॉस लेते हुए, उच्चारण किया जाता है एवं गर्दन के दाहिने तरफ से ऊपर की गति से होते हुए, कुछ गर्दन को बायें तरफ के नीचे की ओर झटका देते हुए "ओ ऊ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ म्" शब्द का उच्चारण किया जाता है !

तो जो अमृतबुंद स्त्री में एवं पुरूष में बनने के अनुपात में, पाँच हजार न्युरॉन सेल के प्राण बलिदान से हमें प्राप्त होता है और ललना

चक्र पर गिरते हुए, कण्ठ के पास के रूद्रग्रन्थि से हृदय ग्रन्थि तक गुह्मायानी नाड़ी द्वारा पहुँचती है।

जो रूद्र ग्रन्थि विष्णुग्रन्थि, ब्रह्मग्रंथि पर क्रमशः आत्म शक्ति, मनः शक्ति एवं प्राण शक्ति एवं विचार शक्ति के रूप में हमारे प्राण ऊर्जा प्रवाह में प्रवाहित रहती है।

वह इस "जरबी प्राणयाम" की साधना में 'ॐ' के नाभिकुण्ड से उठते तरंग ध्वनि को रूद्रग्रन्थि से गुह्मयानि नाड़ी द्वारा आत्मकेन्द्र के प्रवाह पर हृदयचक्र पर ही, इन अमृत बुन्दो के प्राण ऊर्जा को रोक कर, संग्रहित करने लगती है।

हमारे हृदयकमल का अष्टदल जो कोष्टक बनाये हुए, अपने पंखुरी के अष्टदल में आत्मा के पोस्तक दाना बारबार हृदय में निवास स्थल में काम, क्रोध, लोभ, मोह स्वरूपा तमस् भाव सर्पिल परिधि में आत्मप्रकाश को धुंधला किये रहता है। उसके मोह आच्छादित स्वरूप को अपने सतज् भावदशा स्वरूप में निर्मल करने लगता है।

जो इन्द्रियाँ मन के तमस् भाव के चाबुक से चलती रहती है, उसके स्वरूप का रूपान्तरण विशुद्धआत्मा के रूप में करने लगती है।

हमारे हृदयदल के अष्टकमल खुलने से इन अमृतबुन्द के सुवाश एवं अमृतदायनी स्वरूप में अष्टकमल की पंखुरीयाँ खुलने लगती है एवं हम ब्रह्म की सुवास एवं उपलब्धियों से भरने लगते हैं।

हृदय जो रूधिर का पम्प स्टेशन है एवं शरीर के नस नाड़ियों द्वारा करोड़ो कोशा को प्राणावान एवं जीवन्त रखती है, वह इन अमृतबुन्द के क्षरण को अपने हृदय के विष्णुग्रन्थि पर ही अमृत के अमरत्व ऊर्जा स्वरूप में प्राप्त कर, पूरे शरीर के कोशा-कोशा तक को जीवनदायनी प्राणऊर्जा से भर देती है।

विष्णुग्रन्थि, गुह्मयानि नाड़ी पर उर्ध्वगमन में रूद्रग्रन्थि होते हुए, हमारे मस्तिष्क में, जो सेरेब्रल नामक तरल भूरा पदार्थ भरा है, उसमें ब्रह्माण्ड की सारी चेतना को समेटे हुए 1008 मटर दाने के अण्डाकार स्वरूप में ऊपरीमूल से जुड़ी होती है।

जो इस 'जरवी प्राणयाम' की मुद्रा में हठयोग के प्रयोगत्मक स्वरूप में, हमें अनन्त से ही नही जोड़ती है ! बल्कि हमें इस स्थूल शरीर के पूर्णायु उम्र के अन्तिम छोर तक भी पहुँचा सकती है।

चूंकि इस स्थूल जगत में कुछ भी स्थिर नहीं है। इसलिए इस शरीर की पूर्ण आयु जो ऋषियों ने तीन सौ वर्ष का माना है। वहाँ से फिर इस स्थूल शरीर को हिमालाय की कंदरा एवं कुछ गुप्त रूप से स्थापित मठों में शिष्यों की सूरक्षा में छोड़कर, या तो फिर पूनर्जन्म ले लेते हैं, या परकाया प्रवेश की गुह्म विद्या द्वारा अपने प्राण ऊर्जा के प्राणगति को नवीकृत कर लेते हैं।

अपने कर्मबंधन को इस संसार के भोग, लिप्सा में शांत करते हुए, इस मानव समाज को उचित मार्गदर्शन देते हुए, उस पुराने जर्जर शरीर में प्रवेश करके, तपस्या में लीन हो जाते हैं। कुण्डलिनी गति में जन्म जन्मान्तर के कर्मबंधन को भष्म कर, कुण्डलिनी के तीसरे कुण्डल को खोलते हुए, आत्मगमि में पहूँच जाते हैं।

स्थितिप्रज्ञ स्वरूप में अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप लिए हुए, समाधिस्थ योगी के श्रेणी में चिदानन्द का स्वरूप ले लेते हैं।

अतः इस गुप्त रहने वाली प्राणायाम की मुद्रा का भी इस कुण्डलिनी जागरण एवं आयु पर विजय प्राप्त करने में अहम् भूमिका है।

चूँकि जो अमृत बुन्द, ब्रह्मग्रन्थि से जलकर हमारे अपानक्षेत्र के कामक्षेत्र में पड़ने वाले आधा नाभिकुण्ड, स्वाघिष्ठान एवं मूलाधार को काम, क्रोध, लोभ, मोह में बल दिये रहता है, उसका रूपान्तरण इस अमृत क्षरण के बुन्द को, इस हठयोग के प्राणायाम मुद्रा द्वारा, जिसमें प्राणवायु के ठोकर से ही प्राण ऊर्जा में हृदयग्रन्थि द्वारा, जहाँ प्रवेश का मार्ग है, उसी पर रोक लेने से हमारी अधोगति की प्रवृतियाँ सत्य, अहिंसा, प्रेम करूणा, मैत्री, मुदिता में रूपान्तरित होने लगती है।

नाड़ियों की विशेष चर्चा तीसरे भाग के पृष्ठ संख्या 193 के नाड़ी संस्थान एवं दिव्यदृष्टि नामक शिर्षक में वृहत रूप से की गयी है। पुस्तक में बराबर चर्चा कि गई है कि सृष्टि में किसी भी कण या ऊर्जा को नष्ट नहीं किये जा सकते हैं। उसका रूपान्तरण ही किया जा सकता है।

इसी ऊर्जा शक्ति के स्वरूप को देखते हुए। इस **"हक् है ! हक है !"** स्वरूप में ओ ऊ ऊ ऊ म् का दाहिने से बायें बगली भारंते हुए झटके से प्राणवायु के प्राणायाम की मुद्रा में प्रति सेकेण्ड के निशचित एवं समरूपता के अन्तराल पर प्राणवायु में लिया गया उच्चारण, हमें अनन्त के ऊर्जा स्रोत से जोड़ सकता है।

जिस तरह कपालभाँति का प्राणायाम नाभिकुण्ड के ब्रह्मग्रनिथ को जगाकर नमनियता बिन्दु के ताण्डेन बिन्दु तक स्वशँन स्पर्श पहुँचाने का माध्यम है एवं प्रति

सेकेण्ड पर एक (स्ट्रौक) धक्का मारा जाता है।

उसीतरह यह 'जरबी' प्राणायम' हृदय के विष्णुग्रन्थि को सक्रिय कर हृदय के अष्टकमल को ज्योतिर्मय करते हुए, कुण्डलिनी गति से आत्मगति में ले जाने का सफलतम् प्रयोग है।

यह **'जरबी प्राणायाम'** हमें आत्मिक स्वरूप में विशुद्धात्का का स्वरूप देते हुए, दिर्घायु उम्र के दहलीज पर खड़ा कर, हमें ईश्वर पथ पर अग्रसर होने के लिए, ईश्वरीय वरदान स्वरूप पूर्ण आयु का योग दे सकता है।

लेकिन यह प्रयोग हमेशा गुरू के सानिध्य में करना श्रेष्कर है। चूंकि प्राणवायु का आधात सीधे-हृदय के खुलने एवं बन्द होने वाले 'धप' एंव 'ठप' शब्द बाले भल्भ पर सीधा आघात है।

जो कमजोर हृदय के रोगी, डरपोक एवं रूग्न शरीर वाले के मस्तिष्क के स्नायुतंत्र पर सीधा आधात करता है। गलत एवं अव्यवस्थित ढंग से किया गया प्रयोग, भयंकर परिणाम दे सकता है।

इसलिए स्वास्थ की सावधानी रखते हुए, सक्षम गुरू के निर्देशन में ही यी प्रयोग करना आवश्यक प्रतीत होता है। साधनामय जीवन में सम्यक भोजन, सम्यक निंद्रा, सहृंजता की भावदशा एवं ओममय हृदयावृति से आकच्छादित हृदयाकाश में करूणा, प्रेम, मैत्री, मुदिता का होना भी अपने लक्ष्य तक पहुँचने का सुगम एवं प्रशस्त मार्ग है।

कुण्डिलनी जागरण की स्थिति में, जब प्रथम कुण्डल कामक्षेत्र के मूलाध ाार और स्वाघिष्ठान के अन्धबिन्दु की शून्य स्थिति ताण्डेन बिन्दु पर, अपानक्षेत्र में अपना एक परिधीय सर्किल बनाती है एवं थलचर, जलचर को अपने कुण्डलिय ताप में सदा के लिए भस्म कर देती है।

समुद्र के हहाने का आवाज मस्तिष्क में बन्द होकर मृदंग की थाप का स्वर सुनाई देता है, तो यह कुण्डलिनी ऊर्जा अपना आकाश ही बदल लेता है ! तभी हम पच्चीस साल के उम्र के विजेता हो पाते हैं ।

यह कुण्डलिनी गति जब दूसरा परिधीय सर्किल अपने त्वरित ऊर्जावेग में खोलने लगती है, तो अनाहत चक्र एवं आधा नाभिचक्र के अन्धबिन्दु (ब्लैक होल) पर **'समान प्राण'** क्षेत्र में, कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में छलॉग लगाने के शून्य बिन्दु तक, नभचर एवं मनुष्य के अधोगमन के पशुभावदशा की योनियों को भष्म कर

देती है।

सर्प के दूसरे कुण्डलिनी स्वरूप में दो कुण्डल का आवृत परिधीय गति में आने पर विद्युत स्फुलिंग स्वरूप में कम्पन्न तरंग पर मृदंग की थाप मस्तिष्क में सुनाई देने लगती है।

कुण्डलिनी अपना गति बनाते हुए, सूर्य चक्र (प्राण चक्र) पोजोटिभ एवं चन्द्र चक्र निगेटिभ के अदृश्य प्राण ऊर्जा में कुण्डलिनी गति में सर्पिल अण्डकार परिधीय गति हमारे- काम, क्रोध, लोभ, मोह के रूपान्तरित ऊर्जा का स्वरूप- दया, प्रेम, क्षमा, करूणा, मैत्री का स्वरूप पकड़, हमें आत्मवान, क्षमतावान, अमुल्य मानवयोनि के कील पर लाकर खड़ा कर देता है एवं हम पच्चास साल के उम्र के विजेता हो जाते हैं। (चित्र संख्या 9 एवं 16)

उससे ऊपर तीसरा कुण्डलिय गति अनाहत और विशुद्धाय जो पूर्णरूपेन ज्ञानक्षेत्र में है एवं उदान प्राणक्षेत्र में है, वहाँ तक खुलकर अपना सर्किल जब पूरा कर लेती है, तो हम आत्मगति के स्थितिप्रज्ञ स्थिति में पहुँच जाते हैं एवं इच्छामृत्यु की ईश्वरप्रदत ब्रह्माण्डीय सर्किल को छुने लगते हैं।

लेकिन सभी कामनओं, इच्छाओं का योनिगत संस्कार इन तीनों कुण्डलिनी गति में भस्म हो जाने से, इस शरीर की महत्ता ही निरर्थक लगने लगती है।

प्रायः यहाँ के चक्रो की स्थिति में पहुँचे संत्, ऋषि समाधिस्थ होकर स्वयं इस जर्जर शरीर को छोड़ देते हैं या आत्मगति में विशुद्धाय एवं आज्ञा चक्र में अपनी साधना को ले जाते हुए, ब्रह्मचक्र में अवस्थित हो, निर्वाण की गति पाते हैं।

इस काम-रति द्वारा तो कुण्डलिनी जागरण के कई चित्रो से विषयवस्तु को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस 'जरबी- प्राणायाम को निम्नाकित चित्र द्वारा पृष्ट संख्या - 267 पर दिखलाया भी जा रहा है।

कुण्डलिनी गति जब साधक के साधना स्वरूप में होती है, तो साधक में स्वाभिमान, सत्य के ज्यादा नजदीक, आवाज में टनक एवं निणर्य की क्षमता बहुत प्रबल हो जाती है।

आत्मचेतना सजग एवं चेहरा ओजवान एवं कर्तव्य परायणता की चेतना उसमें ज्यादा प्रवाहित होने लगती है। निजता का स्वाभिमान एक अलग-थलग व्यक्त्वि के श्रेणी में साधक को ला खड़ा करता है।

इस प्रयोग में सारा केन्द्रीभूत ऊर्जा का केन्द्र अनाहत एवं हृदयकमल पर

हो जाता है। झटका दाहिना तरफ थोड़ा ऊपर के कोण से बाये तरफ साँस लेते हुए नीचे के कोण पर झटका मारने में प्रबल वेग से श्वॉस छोड़ने से एक साथ तीन मणिबन्द में, उड्यानबंध-नाभि पर, जालंधरबंध गर्दन पर एवं मूलबंध-मूलाधार पर लग जाता है। झटके के प्राणवायु का केन्द्र सीधे हृदयकेन्द्र पर प्रबलवेग से लगता है।

यह प्रयोग बह्ममुहुर्त में करना चाहिए। चूंकि मानसिक भार स्वप्न निष्काशन से एवं अन्नभार मल निष्काशन से भी उस समय संतुलित हो जाता है। अमृत का क्षरण का दस मिनट का समय भी उसी समय स्वप्नभार से मुक्त होने पर साम्यावस्था की स्थिति में ललना चक्र पर गिरने की सम्भावना बनी रहती है।

इस अमृत क्षरण के ऊर्जा को भी यह प्राणायाम इस झटके के प्रबलवेग में रूद्रग्रन्थि से विष्णुग्रंथि पर ऊर्जा स्वरूप में केन्द्रीत करने लगती है।

इस क्रिया को करने में पद्मासन, सिद्धासन, बज्रासन या सुखासन जिस विधि में हो, मेरूडण्ड की हड्डी बिलकुल सीध में एवं शरीर में बज्र की तरह हो जाने की मुद्रा हो ! ध्यान मूलाधार पर अपने इष्ट पर लगाना चाहिए। चूंकि अनाहत का बीज मंत्र 'यँ' है एवं विशुद्धाय का बीज 'हं' मंत्र है'' जो क्रमशः रूद्रग्रन्थि एवं विष्णुग्रन्थि का कम्पन्न तरंग का केन्द्रीत बिन्दु है।

इसलिए साधना का क्या स्तर है एवं सिद्धियों का क्या स्वरूप है; इसको देखते हुए भी इन उच्चारण के प्रबल वेग में **''जरबी प्राणायाम''** किया जा सकता है। कोई भी ध्यान नाभिकुण्ड के ब्रह्मग्रंथि पर लगाकर हृदयकेन्द्र पर अवस्थित करना चाहिए।

चूंकि यह एक तरह से रिफ्कसोलोजी (पलटवार) की प्रतिक्रिया है। जो अमृत क्षरण ब्रह्मग्रंथि पर आकर भस्म हो जाती है, उसके ऊर्जा को वायुवेग के प्रवल प्राणवायु में झटके से, हृदयकेन्द्र की ओर मोड़ लेना है !

इस क्रिया को करने में शरीर में अपार ऊर्जा का स्रोत हृदय केन्द्र पर केन्द्रीत होकर, शरीर के नस नाड़ियों को जीवन्त करने लगती है। जिसका प्रबलवेग अनियमिता से साधनारत साधक को सम्हालना अति मुश्किल काम है। इसलिए इस 'जरबी प्राणयाम' को सिद्ध पुरूषों

ने बहुत ही गुप्त रखने का प्रयास किया है।

काम-रति के प्राकृतिक ऊर्जा स्रोत को कुण्डलिनी जागरण हेतु संकलित करने की विधि पुस्तक में बताई गयी है। उसमें श्वॉसायाम की व्यवस्थित प्राणायाम की प्रणाली में लोम, विलोम, प्राणाकर्षन, कपालभॉती के साथ विशिष्ट ऊर्जा प्राप्त करने हेतु यह **'जरबी प्राणायाम'** बहुत ही कारगर सिद्ध हो सकता है।

लेकिन इसमें अधिक से अधिक अन्तराल पर समागम की व्यवस्था में, अपने को ब्रह्मचारी की श्रेणी में रखना एंव सहजता की भावदशा में प्रशान्त शान्त, मुदिता अवस्था बनाये रखना परम आवश्यक है।

कुण्डलिनी जागृत साधक में तो इस **'जरबी प्राणायाम'** का आधात मिनटों में कुण्डलिनी गति को अति तीव्रकर सक्रिय कर देती है। चूंकि कुण्डलिनी का सर्पिल त्वरित विद्युत वेग तो ध्वर्गगति पकड़े ही रहता है ! इसलिए यह प्रयोग कुण्डलिनी साधक को बहुत क्षमतावान कर देता है।

आर्टआफ लिभिंग में भी श्वॉसो की तेज प्रक्रिया में सायनस पर काफी बल पड़ता है एवं रूद्रग्रन्थि पर काफी दबाब पड़ता है। यह प्रयोग भी कपालभाँति की तरह श्वॉसों को धक्का मारते हुए, बारह आयम में हाथ, पैर एवं शरीर की मुद्रा बनकार बहुत तेज रफ्तार में दोनों हाथों को आगे-पीछे ले जाकर ताली मारते हैं। **'जरबी प्राणायाम'** की तरह ही गर्दन को ऊपर से बाएँ की ओर करते हुए **'सोऽऽऽऽऽ'** और **'हमऽऽ'** गर्दन को दाहिने ओर एक निश्चित समय के अन्तराल एवं शैली में अपने आप को संयमित एवं नियोजित करते हुये नीचे की ओर झटका मारकर शब्द उच्चारण कर प्राणायाम की एक प्रक्रिया पूरा करते हैं।

यह प्राणायाम **'सूर्दशनक्रिया'** के नाम से जानी जाती है एवं कई प्राणायामों के समिश्रण से यह प्राणायाम सुलभ विधि से करने की प्रतिक्रिया अपनाई गई है। यह एकाएक करने की विधि नहीं है। पहले कई सप्ताह एक्टीभेट (संयामित एवं नियोजित) करने के बाद अभ्यास में आना चाहिए।

इस प्राणायाम में भी सायनस पर काफी बल पड़ता है। जिसके पीछे ललना चक्र एंव कंठ के पास रूद्रग्रन्थि होते हुए हृदय के पास तक विष्णुग्रंथि की प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

साधक मन की चेतना खोकर अन्तर्मन की दशा में आ जाता है एवं भावना के प्रबल आधात में कभी रोता है, तो कभी हंसता है, कभी चिल्लाता है।

इस प्रयोग में मन का भार वाहर निकलकर चला आता है। डिप्रेशन का शिकार साधक अपने आप को बहुत हल्का महसूस करने लगता है। इस क्रिया के बाद सवासन की प्रक्रिया में २० मिनट तक रहना परम आवश्यक है। **सुर्दशनक्रिया** की सारी प्रक्रिया 30 मिनट की है। पातंजलि योग में कपालभाँती नाभिकुण्ड पर वायु को केन्द्रीत कर उसे काफी ऊर्जावान करती है।

लेकिन इस 'जरबी' प्राणायाम में सीधे हृदय के पम्प स्टेशन पर आधात पड़ता है। जो रूधिर प्रवाह में सप्तरस का रसायन, प्राण प्रवाह में आनन्त के ऊर्जा स्रोत का प्राणशक्ति एवं बहत्तर हजार नस नाड़ियों एवं करोड़ो कोशों को एक क्षण के नियंत्रित नियमित प्राणवायु के चोट पर पूर्ण ऊर्जावान कर देती है।

इस क्रिया को प्रति एक सेकेण्ड के अतराल पर एकारह स्टौक (धक्का) से शुरू करना चाहिए। मध्यम स्थिति तक में पच्चीस बार से ज्यादा नहीं करना चाहिए। जब साधना की उच्च स्थिति समझ में आवे, तो फिर ज्यादा भी किया जा सकता है।

इस क्रिया को करने में शुरू-शुरू में गर्दन की माँस पेशिया दूखने लगती है। कभी-कभी हृदय में दर्द करने लगता है। घबराहट पैदा हो जाती है। मुर्छा की भी स्थिति आ सकती है।

इस स्थिति में तुरंत क्रिया को रोककर पूरे शरीर को ढ़ीला छोड़ते हुए, आसन की मुद्रा में ही तलहट्टी को जॉध पर ऊपर की ओर फैलाकर रखते हुए, प्रकृति से ऊर्जा प्राप्त करने की भावना करना चाहिए। हृदय (स्टौक) धक्का ठीक करने के लिए कभी-कभी हाथ की तलहट्टी से हृदय को चॉटा मार-मार कर हृदय गति को व्यवस्थित करने की जरूरत पड़ती हैं। मोहम्डन में सिया और सुन्नी के धार्मिक पंथो में हृदय पर चॉटा मारने की प्रथा है।

तत्पश्चात् पुस्तक के दूसरे भाग में वर्णित पृष्ठ संख्या- 171 चित्र संख्या 9 की ''अपानवायु या हृदय रोग मुद्रा'' की तरह सहजता में ध्यान लगाते हुए तर्जनी को अगुँठा के मूल पर एवं मध्यमा, अनामिका, अंगुठा के ऊपरी मूल को एक दूसरे से सटाते हुए, अपने को सहज करने का प्रयास करना चाहिए।

विशेष कष्ट होने पर योग्य गुरू से सम्पर्क कर इसके निदान की व्यवस्था करनी चाहिए।

जरूरत पड़े तो डाक्टर वैद्य से भी परामर्श लेना चाहए। चूंकि अगर हृदय

पर हृदय रोग के प्रारम्भिक स्थिति में लोकेज बनने लगता है, तो यह **"जरबी प्राणायाम"** अपने आघात से उसको खोलने की अपनी क्रिया को पूरा करने लगता है। जिसके कारण हृदय आधात को व्यवस्थित करना परम आवश्यक है।

साँढ़ (बूल) के वीर्य (सीमेन) को नाईट्रोजन फ्युजन में छत्तीस साल तक जिन्दा रखा जा सकता है एवं इसी सिद्धान्त पर आज गायों का कृतिम गर्भधान सम्भव है।

उसी तरह अमेरिका की कई कम्पनियॉ नाइट्रोजन फ्युजन की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा तावूत में लाशों को सुरक्षित रखने की वैज्ञानिक शोध अपने प्रयोगशाला में अपना रहे हैं। धनवान लोग अपने लाश को सुरक्षित रखने का ट्रष्ट कर पूणजीवन की आशा में तावूत में बन्द पड़े है। लेलिनग्राद रूस में लेलिन के लाश को अस्सी वर्ष से सुरक्षित रखा जा रहा है। पूणर्जीवित होने की आशा में।

विज्ञान कभी इस प्रयोग में सफल नहीं हो पायगा। वैज्ञानिक प्रयोग में वस्तू और कर्त्ता का होना आवश्य है। वस्तू के रूप में आत्मा का तो भार है ! लेकिन इतना सूक्ष्मान्तर में है, जो कुण्डलिनी एवं आत्मगति के पकड़ में आकर स्पंदित हो सकती है।

जो अणुवाद के न्युक्युलिर सिद्धान्त से भी ऊपर का आत्म सिद्धान्त है जो आत्मवाद से ही इसकी गति में आया जा सकता है।

वैज्ञानिक शोध में एक टिशु भी कृतिम प्राणऊर्जा के पकड़ से बाहर है। वह ईश्वरीय स्वरूप में ही प्राणवान हो पाती है।

लेकिन अध्यात्मवाद में ऋषियों का यह शोध प्रकरण बहुत पुरातन है। जहाँ आयु पर विजय पाया जा सकता है। परकाया प्रवेश द्वारा मुर्दों में भी जान फुकी जा सकती है। चूंकि कुण्डलिनी जागरण की पद्धति तो जन्म-जन्मान्तर के कर्मबंधन एवं योनिगत चक्रवात को भस्म कर तोड़ देती है। तब जाकर हम आयु के विजेता हो पाते हैं !

लेकिन विज्ञान में इस जन्म के कर्मबंधन को भी काटे नहीं जा सकते हैं ! अगले और पिछले जन्म की बात ही असम्भव है !

मान सहित अमृत पीयो, शम्भू भये जगदीश !
बिना मान अमृत पीयो, राहू कटायो शीश !!

सुविधन !

कुण्डलिनी जागृत लोग में अभिमान नहीं ! आत्म स्वाभिमान की भावना बहुत प्रखरता से उदय हो जाती है। वे परतंत्र रह नहीं सकते ! चाहे प्राण की आहुती हँसते-हँसते देना पड़े !

इसलिए ज्यादे अवतरीय महामना या तो सूली पर चढ़ा दिये गये, गोली मार दिये गये, या अपमानित किये जाते रहे ! जब कुण्डलिनी की शक्ति उर्ध्वगति पकड़ लेती है, तो पीछे की कर्मबंध्िता अधोगमन की योनियाँ सदा के लिए भस्म हो जाती है।

उनका पुनर्जन्म उच्च से उच्च महामना के स्वरूप में मानव के स्वगृह, मनस शरीर द्वारा होता रहता है। इसलिए उर्ध्वगमन को गई उच्च आत्मा भी मानवयोनि में आकर समाज एवं राष्ट्र को अपने वरदान स्वरूप ईश्वरीय और, सौर वीरता एवं प्रेम थपकी से तृप्त कर पाते हैं।

उनका मृत्यु भी एक वरदान है। चूंकि उन्हें तो उर्ध्वगति ही पकड़ना है और यह कुण्डीलनी की जगी हुई अर्ध्वगति बुझ नहीं सकती ! साधना के अभाव में मंद पड़ी रहती है। जन्म-जन्मान्तर तक वह अपने ईश्वरीय कील में समाहित होने हेतु आत्मावान उच्च नर-नारी में जन्म लेते ही रहते हैं।

इसलिए- राम, कृष्ण, गौतम, कबीर, जिसेस, मोहम्मद, लाओत्से, महारानी लक्ष्मीबाई, मीरा, गाँधी, सुभाष चन्द्र, भगत सिंह एवं गुरूदेव स्वरूप में बाबा साहब सुशील वैद्य को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। जो पुनः-पुनः जन्म लेकर, हम मानव समाज एंव राष्ट्र को तृप्त करते ही रहेगें !

बन्धुओं !

केवल बोलने एवं भाषण में कुछ भी नहीं रहता है ! बोल-बोल कर ही हमारे राजनेता एवं शास्त्रों के मायाजाल में साधु-संत अपने वाक्‌जाल में फँसाकर विदेशी शाक्तियों की तरह, हमें शोषित करते आये हैं एवं लूट रहे हैं। हम भी अपने मृगतृष्णा एवं मायाजाल में, उनके व्याधा गति में फॅसते चले जा रहे हैं।

राजनेताओं के हमारे राष्ट्र के शोषन से जमा हो रहे काले धन, विदेशों के बैकों में एकत्र हो रहे हैं। जिससे हमारे राष्ट्र के कई सालों के परियोजनाओं को चलाया जा सकता है। सैकड़ों साल से विदेशी लुटेरों द्वारा लुटे खंडहर हुए राष्ट्र को, फिर से एक नयी चेतना एवं जागृति में समृद्धिशाली राष्ट्र बनाया जा सकता है !

प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचे साधु, संत, महात्माओं की उच्चतम् श्रेणी में, अरबों-खरबों के धन-सम्पदा से आश्रम चालये जा रहे हैं। किलो में ही नहीं ! क्वीटलों में सोना-चाँदी, जवाहारात एवं डालर, रूप्या इनके आश्रम में पाये जा रहे है।

समृद्धिशाली आश्रम विदेशों में भी चलाये जा रहे हैं। मठो में मठाधीश राजे-राजवाड़ों की तरह वैभवशाली साधु-संतों की फौजी जमात, समाज के आस्थावान नर-नारी पर छाये हुए, आस्था का दोहन कर रहे हैं !

सब हमारे आस्था, विश्वास, हमारें प्रेमाभक्ति, हमारे साधुता की सहज भावदशा का दोहन कर, हमारे ये राजनेता और संत-महात्मा केवल स्थूल जगत की माया को ही अपने ध्यान, भक्ति का केन्द्र बना लिये हैं। जबकि यहाँ से एक सुई बराबर या रेणु भी ले जाने की प्राकृतिक व्यवस्था नहीं है !

हम बचे !

अपने निजता को स्वीकार कर अपने कामनाओं, ईच्छाओं, अपनी भावनाओं को अहं का स्वरूप दे !

स्वाभिमानी बने !

इन लोलुप राजनेता एवं साधु-संतों को लल्कार कर अपने मनोदशा से बाहर फेंक दें ! इनके मृगतृष्णा के व्याधा जाल से निकल ! बना डाले अपने राष्ट्र को फिर से महामना के आगमन का तीर्थ स्थल ! बारह सौ साल के बाद मिली आजादी को इन विदेशी पृष्टपोषक राजनेताओं एवं पाखंडी साधु-संतों से बचावें !

इन विदेशी ताकतो से हमारा स्वाभिमान, हमारी सुख-सुविधा बेचने वाले राजनेताओं एवं भक्तिभाव में दोहन करने वाले साधु-संतों को देशद्रोही माने ! अपने 'स्व' में जीये ! फिर से वही नारा दे, जो महात्मा गाँधी के समय हमने दी थी !

न कोई रहा है, न कोई रहेगा !
है तेरे जाने की बारी चापलुसो !!
भष्ट्राचार देश से मिटाकर रहगें !
न कोई बचा है, न कोई बचेगा !!

कालेज की प्रोफेसर कवित्रि महादेवी प्रसाद वर्मा एक दिन अपने कॉलेज के कक्ष में देर से पहुँची । एक उत्साही युवक ने पूछा "मैम" हमलोग बहुत व्यग्रता से क्लास में आपका इन्तजार कर रहे हैं !

कवित्री एकाएक मौन हो गयी एवं बहुत गम्भीर मुद्रा में उन्होंने अपने मर्माहत शब्दों में, कवितमय मुद्रा में उद्घोष किया !

देर भई चित् लेटी थी !

उसपर से कोई लेटा था !!

पूरा क्लास बेंच की थपथपाहट एवं अट्टहासो से हास्यापद भावदशा में कामात्मक भावना का भार लिए उपहास से गूँज उठा !

कवित्री मौन और गम्भीर मुद्रा में अपने कुर्सी के पास खड़ी रही ! जब क्लास का कामात्मक, वासनात्मक एवं उपहास भरा मनोदशा का गूंज समाप्त हुआ ! तो उन्होंने बाँया हाथ अपने बाँए कलेजे पर रखा एवं दाहिना हाथ खुले रूप में, ऊपर आसमान की ओर प्रेमात्मक, भावनात्मक, भावदशा में, अवरूद्ध गले से, उठा कर बोली !

हा, विधि का विधान यही !

कि,मैं माँ और वह बेटा था !

पूरा क्लास एकाएक स्तब्धावस्था में पीन ड्रोप साईलेंस (सूई के गिरेन से भी आवाज नहीं) की स्थिति में स्तब्ध रह गया।

जो मनोदशा कामात्मक, वासनात्मक भावदशा में उपहास बनकर ऊभर रही थी, वही भावदशा सेकेण्डो, मिनटो मे ममत्व, अपनत्व एवं ममतामयी आँचल में सिमटने को आकुल-ब्याकुल हो उठी !

क्लास वही थे, छात्र-छात्राये वही थी, कवित्रि प्रोफेसर भी वही थी ! लेकिन भावना का आधात कामात्मक एवं ममत्व के प्रेमात्मक अंधबिन्दु पर एकाकार होकर, अपना आकाश ही बदल लिया ! जो भावदशा वासना से बींध रही थी, वह मॉ की लोरी में तबदिल हो गयी।

उसीतरह हमारे राजनेताओं, संत, महात्माओं का शोषन, भावनात्मक अत्याचार, धृणात्मक राजनीति का दावपेंच प्रेमाभक्ति के ढकोसला द्वारा हमारे भावनाओं एवं सम्पति का दोहन, सब-जब हमारी भावदशा बदल जायगी ! तो ये राजनेता शिंकचों में बन्द पड़े नजर आयगें एवं आश्रम खाली-खाली लोलुप शोषनकर्ता का खंडहर बनकर रह जायगा !

कई राज्यों में अग्रणी श्रेणी में गिने जाने वाले बिहार को ही उदाहरण स्वरूप में लिया जा सकता है !

जब राज्य अन्धंकार के आदिम युग, सड़के गढढ़ों में तबदिल, शिक्षा की ज्ञानगंगा गन्दे नालो में बन्द होकर रह गयी थी ! तो एकाएक स्वर्णिम आभा का मोड़ लिए हमारे राजनेताओं का उदय हुआ। वही बिहार केवल सात वर्षों मे राष्ट्र का ही नहीं !

विश्व का मोडेल (नमुना) राज्य बनने जा रहा है। सड़के, शिक्षा, व्यापार, कृषि, विज्ञान सबों में सकारात्म्क प्रगति देखी जा रही है। एक व्यक्ति या संत या राजनेता पूरे राष्ट्र क्या ! पूरे विश्व को अपने दिव्य आभा के वलय में ले लेने जा रहा है !

कुछ तो नहीं बदला !

जैसे कवित्रि का न क्लास बदला और न छात्र-छात्रायें बदली ! वैसे ही केवल हमारी मनोदशा ही तो बदल गयी है !

हम करोड़ रूपया लेकर भी हारे-हारे से जीन्दगी बीताते हुए, मुर्दो जैसी चाल में जीवन गति चला रहे होते हैं। लेकिन केवल भावदशा बदल जाने से हजार रूप्या लेकर, हम विजेता की श्रेणी में अपने मनोदशा को लाकर, मस्ती भरे चाल से चल सकते है !

सबाल है !

हमारे संतुलित जीवन के उपयोगिता की ! और हमारे आत्मविश्वास और निजता की ! कृष्ण जैसे निहथ्थे सारथी को लेकर, अर्जुन जेसे आत्मावान योद्धा, महाभारत जैसे महाविनासक युद्ध का विजेता हो गये !

वैसे ही हमारे लिए अंसभव शब्द केवल हमारी कायरता का उदघोष है। हम उम्र के विजेता के साथ अपने सभी अधोगमन के कर्मबंधित योनियों को तोड़ सकते हैं ! जहाँ, कुछ तो विज्ञान से सम्भव है, तो कुछ अध्यात्मिक प्रयोग से सम्भव है।

इसलिए हम राष्ट्र के प्रत्येक नर-नारी जहाँ खड़े हैं, वहीं से अपने निजता का अहंभाव अपने में पैदा कर इस राष्ट्र को फिर से 'राम राज्य' में तबदिल कर सकते हैं।

हम प्रत्येक नर-नारी, राष्ट्र की अन्तिम ही नहीं ! प्रथम पुरूष एवं नारी हैं, जो अपनी निजता में राष्ट्र का काया पलट कर अपना इतिहास स्वयं सृजन कर

स्वर्णाक्षर में लिख सकते हैं।

कवित्रि ने अपना एक हाथ बाँये कलेजे पर रखा था एंव दाहिना हाथ आकाश की ओर उठाकर ममत्व भरा सम्बोधन किया था !

उसीतरह जब भी कोई सम्बेदनशील भावदशा बनती है एवं हमारी भावदशा के अनुरूप हमारी धड़कन-तमस्, रजस् एवं सतज् भावदशा में शरीर के कोशा-कोशा, रेणु-रेणु में अपनी प्राण ऊर्जा पहुँचाकर, अपने स्वरूप में हमें देवत्व या दानवत्व में पहुँचा देती है।

हमारी भोग्या समझी जाने वाले स्त्री समाज में पत्नी, प्रेमिका जब कवित्रि के शब्द आधात की तरह, कुण्डलिनी के समन्वय बिन्दु पर स्पर्श बिन्दु बनाती है, तो वही दिव्या का स्वरूप लें, हमें- थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य के अधोगमन की योनियों से सदा के लिए बाहर निकाल कर, हमारा आकाश ही बदल देती है !

प्रत्येक नारी माँ दुर्गा, माँ काली, माँ सरस्वती के स्वरूप में मातंगी योग की भावदशा में मुक्तदायनी स्वरूप ले लेती है।

यह 'जरबी प्राणायाम' कुछ इसी तरह के प्रयोगात्मक स्वरूप में है। जहाँ मिनटो नहीं, सकेन्डों में हम इतना ऊर्जावान हो जाते हैं, कि अगर व्यवस्थित शारीरिक स्थिति एंव व्यवस्थित भावदशा में यह प्रयोग नहीं किया जाय, तो तो साध्का का बहुत अनिष्ट हो सकता है।

इसलिए अपने अनुभव के आधार पर भी इसकी व्याख्या निम्नाकिंत शब्दों एवं प्रायोगिक, व्यवहारिक स्वरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऐसा लगता है कि **'हं'** शब्द विशुद्धाय का बीज मंत्र एवं वहाँ से सम्बन्धित देवी-देवताओं का कम्पन्न तरंग है। **'यं'** शब्द अनाहत के हृदयावृत का बीज मंत्र एवं वहाँ से सम्बन्धित देवी-देवताओं का बीज मंत्र है। इनके शब्द उच्चारण में तीर की तरह तीव्रता है।

जब झटके से श्वॉस लेते हुए, ऊपर की ओर गर्दन झटकते हैं, तो **'हं'** का उच्चारण झटके में करना चाहिए एवं नीचे की ओर कोण बनाते हुए झटकते हैं, तो स्वयं श्वॉस झटके से बाहर निकल जाती है।

उस समय **'यं'** शब्द का उच्चारण करने से **''हक् है ! हक् है !''**

की तरह हृदयवृत का रूद्रग्रन्थि एवं विष्णुग्रंथि विद्युतिय सर्किट बना लेती है। जो अमृत बुंद से प्राप्त ऊर्जा हमें ब्रह्मग्रंथि पर जलकर बुढ़ाया, काम, क्रोध, लोभ, मोह का अधोगमन सर्किल बनाती है।

वह रिफ्कसोलोजी (उलटवार) के सिद्धान्त की तरह हृदय केन्द्र पर क्षमा, दया, प्रेम, आस्था, विश्वास, करूणा, मैत्रेय, मुदिता का स्वरूप पकड़ लेती है एवं हमें आयुष्मान भी बनाती है।

कुण्डलिनी जागृत साधक में तो ऊर्जा उर्ध्वगति पकड़े ही रहता है ! अगर वह इस **'जरबी प्राणायाम'** के प्रयोग को विधिवत् करता है, तो कुछ ही सेकेन्डों में इतनी ऊर्जा प्राप्त हो जाती है, कि पहाड़ सा काम राइ की तरह लगने लगता है।

इच्छाशक्ति बहुत प्रबल हो जाती है, उस समय उनकी वाणी एवं बातों में बहुत ताकत एवं वजन चली आती है। बिचारना शक्ति की तीव्रता केन्द्रीत एवं नियोजित होकर वाक्य के रूप में उद्भाषित होने लगती है।

अतः कुण्डलिनी साधक को व्यवस्थित ढंग से सम्यर्क भोजन, नींद, ध्यान, साधना, आयाम, प्राणायाम एवं सहजता की भावदशा में आकर यह प्रयोग करना चाहिए।

अतः इस ऋषिसम्मत विज्ञान को आप सुधिजन के बीच प्रस्तुतिकरण इस अकिंचन का सफलतम् एवं व्यवहारिक प्रयास है। चित्रों एवं एक मित्र के अनुभव द्वारा भी विषयवस्तु को समझाने का प्रयास किया गया है।

आशा है !

प्रिंय बन्धु !

आप भी इस दूलर्भ मानवयोनि को अपने कर्तव्य के मूल समाधिस्थ, ध्यान, साधना स्वरूप में काम-रति का मूल सिद्धान्त समझते हुए, इस दूर्लभ एवं गुप्तातित प्राणायाम विद्या के सहयोग से कुण्डलिनी जागरण द्वारा आयु पर विजय प्राप्त करते हुए, अधोगमन की सारी कर्मबंधित योनियाँ तोड़ते हुए, इस मानव समाज एवं राष्ट्र को, स्वर्णिम भोर की आभामय आत्मप्रकाश से भर देंगे !

ध्रुव

आयु की पूर्णाता में जरबी प्राणायाम की भूमिका
(एक साधक मित्र द्वारा)
''जरबी प्राणायाम''

''जरबी प्राणयामा'' एक प्राणायाम की विशेष प्रक्रिया है। यह एक प्रकार का हठयोग है। प्राणायाम की अनेको विधियों में से यह विधि एक कठिन विधि है। जिस प्राणायाम में जिस प्राणवायु या अंगविशेष को प्रयोग में लाया जाता है; वैसा ही नाम दिया गया है।

यह प्राणायाम जीव के प्रत्येक अवगुण को योग अग्नि में जला डालती है। जीव सोना से कुंदन हो जाता है शनैः शनैः वह जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

प्राणायाम के लिए आवश्यक तैयारी :-

1. व्यक्ति योगी होना चाहिए। वह अंतर्मुखी हो !
2. व्यक्ति को जीवन का ध्येय एवं उद्देश्य प्राप्ति की ललक हो ! व्यक्त्वि लोभी एवं कामी की तरह नहीं होना चाहिए !
3. व्यक्ति साधना के मार्ग में आनेवाली कठिनाईयों का सामना करने के लिए तैयार रहे !
4. साधक पूर्ण गुरू से दीक्षित होना चाहिए !
5. साधक को गुरू, गुरूमंत्र, साधना विधि एवं ईश्वर में पूर्ण विश्वास होना चाहिए !
6. साधक इस संसार को साधन माने ! साध्य नहीं !
7. प्राणायामा नियमपूर्वक एवं समर्पितभाव में होकर करना चाहिए।
8. अष्ठांग योग का पालन करना चाहिए।
9. बाहरी चिन्ताओं को त्याग कर श्वॉस प्रश्वॉस में प्रभु का चिन्तन-मनन करना चाहिए !
10. साधक अपने आपको ब्रह्म में अवस्थित करें !

श्री गुरूनानक का वाक्य है ''श्वॉस-श्वॉस उचरो गोविन्द, मन अंतर की उतरे चित् !

श्री गुरूदेव भगवान, इस प्राणायाम को गुप्त रखते हैं। गुप्त विद्या होते हुए भी, जीव कल्याण के लिए, इसे पूर्ण समर्पित शिष्य को ही इसका हकदार बनाते हैं !

सावधानियाँ :- साधक पवित्र, तन, मन से रहे ! सुपाच्य भोजन करें ! इस प्राणायाम के समय मन को एकाग्र रखें!

श्री गुरूमहाराज जी के सन्मुख ब्रह्ममुहुर्त में ही इसका अभ्यास करें ! प्राणायाम के समय होने वाले परिवर्त्तन पर नजर रखें एवं श्रीगुरूदेव से सम्पर्क बनायें रखें ! किसीसमय मुर्च्छा का भाव या उद्वेलित करनेवाले भाव से सावधान रहें

विधि :-इस प्राणायाम को करने के लिए साधक को सिद्धासन, पद्मासन या फिर सहज आसन में बैठना चाहिए। शरीर अविचल चट्टान की भांति रहना चाहिए। **'जरबी प्राणायाम'** में नाक से श्वॉस लेकर नाभिचक्र (मणिपूरक चक्र) से श्वॉस को वापस अनहात चक्र पर प्रहार करते हैं। अनाहत चक्र पर प्रहार करते समय अनायास ही मूलाधार चक्र में संकोचन होता है।

मूलाधार चक्र से वायु ऊपर उठकर स्वाधिष्ठान चक्र को जाग्रत करते हुए, मणिपूरक चक्र में जमा होता है। वहाँ से प्राणवायु पुनः और शक्ति संचय कर, अनाहत चक्र पर प्रहार करता है। इस प्रकार इस प्राणायाम में पाँच कुण्डलिनी चक्र एक साथ काम करती है।

यह प्रक्रिया एक फोर/4 Four Stroke Engine यानी चार धक्के वाली ईंजन के समान काम करती है। एक झटके में सारा काम हो जाता है। साधक नासिका से श्वॉस भरते समय गरदन को पहले दाहिनी ओर ले जाता है। फिर 'हं' की आवाज के साथ तीव्र गति से गरदन को बाँये छाती की तरफ घुमाता है। बाँयी ओर सिर एवं गरदन को घुमाते समय श्वॉस से श्वॉस द्वारा, नाभि से हृदयकमल पर आधात करता है।

साथ में **'हं'** की आवाज निकालता है। यह प्रक्रिया मध्यम गति से एक लाय में होना चाहिए। प्राणायाम के समय मन को पूर्णतः हृदय में अवस्थित अष्टदल कमल पर केन्द्रीत रखना चाहिए। हृदयकमल में गुरूदेव का ध्यान सर्वोत्तम है। गुरूदेव सब सिद्धियों को देने वाले हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में कमल पुष्प के समान एक अष्टदल कमल गुप्त रूप से रहता है। ऋषि मुनि इस कमल का उपयोग कर देहाभ्यास से छूट जाते हैं। उनको काम, कोध्र, लोभ, मोह एवं अहंकार ग्रसित नहीं कर पाते है। हर समय हमारे ब्रह्मरंध्र से एक कसैला तरल पदार्थ निकलते रहता है।

यह तरल पदार्थ गले से होते हुए मूलाधार तक जाता है। यह पदार्थ स्वाद

में कसैला एवं विकार को पैदा करने एवं बुढ़ापा देने वाला है। योगी जब 'जरबी' प्राणायाम द्वारा 'हृदय में अवस्थित अधोमुखी कमल को उर्ध्वमुखी बना देते है। फिर सारे विकार पैदा करने वाले तत्व हृदय कमल में अवशोषित हो जाते हैं।

इस प्रक्रिया द्वारा भूलोक से होने वाले व्यवधानों से साधक मुक्त होकर, भुवलोक में अवस्थित हो जाता है। निरंतर प्रयास से यह प्रयोग सफल एवं सिद्ध होता है। नीचे की पाँचों षट्चक्र का कमल दल कुण्डलिनी शक्ति द्वारा जागृत हो जाती हैं।

शास्त्रों में आठ पहर, आठ याम की बातें आती हैं। हमारे हृदय में स्थित अष्टदल् कमल पर चित् का वास होता है। जिस समय जिस दल पर चित् होता है, वैसा ही मन होता है एवं संसार भी वैसा ही भाषता है।

'जरबी प्राणायाम' की सिद्धि के बाद ऋषिजन, मन को वश में कर, अपने आत्मा गुरू पर ध्यान लगाते हैं और फिर बाद में उसे निराकर ब्रह्म का मार्ग मिलता है।

''जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय !
सुरत समानी शब्द में, ताको काल न खाय !!

इस्लाम में **'हक'** शब्द का उच्चारण किया जाता है। **'अल हक या अल्लाह हक्'** । साधक कभी-कभी अपनी बाँयी छाती पर अपने दाँये हथेली से प्रहार करता है एवं **'हक्'** शब्द का उच्चारण करता है। बहुत संताप की स्थिति में माताएँ छाती पीट-पीट कर रोती है।

अत्यंत दुःख या संताप की स्थिति में भी मन एकाग्र हो जाता है। संसार असार प्रतीत होता है एवं मन शांति एवं शक्ति चाहता है।

कोई-कोई तो वेसुध हो जाते हैं। वह अनायास ही समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है। तत्वज्ञान न होने की वजह से व्यक्ति उसे मूर्छित समझता है एवं उसको उपचारित कर पुनः होश में लाता है।

इस प्राणायाम में मूर्च्छा आ सकती है, हृदय के काम करने की प्रक्रिया में बाधा आ सकती है। हृदय कमल जब उर्ध्वमुखी होने लगता है, तो उस वक्त हृदय में भयंकर पीड़ा होती है। श्वसनक्रिया मन्द होने लगती है। घबडाहट होती है। पूर्ण गुरू इन चीजों को सम्भाल लेते है।

इस अवस्था में साधक को आराम से लिटा देना चाहिए। श्वॉस को जारी

रखने का प्रयास करना चाहिए। प्राणायाम के दौरान शरीर में खुश्की आ जाती है। अतः खाने में गाय का घी, व बादाम रोगन का प्रयोग करना चाहिए।

शरीर को स्वस्थ रखें व नियम एंव ब्रह्मचर्य का पालन करें ! ब्रह्मचर्य साधक के लिए संजीवनी का काम करता है। ब्रह्मचर्य पालन से साधना के दौरान साधक का पौरूष कायम रहता है। शरीर बलवान एवं पुष्ट रहता है।

वीर्य अधोगामी न होकर उर्ध्वगामी पथ पर चल पड़ता है एवं साधक को एक अत्यंत सुखद आनंद की स्थिति में ले आता हैं साधक अन्दर अपने आप को प्रफुल्लित एवं ऊर्जावान महसूस करता है।

'जरबी प्राणायाम' एक हठयोग एवं सात्विक प्रक्रिया है। मनुष्य के अन्तकरण एवं बह्वाय विकारों का नाश होता है। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। इस प्राणायाम के साधना एवं प्रभाव से साधक कभी अधोगामी नहीं हो सकता है। केवल पुरूषार्थ साध्य ही नहीं है अणितु पूर्ण गुरू के परमकृपा की भी आवश्यकता है, यानी कृपासाध्य है।

सहयोग सेः-

राम शंकर सिंह ग्राम- रजवाड़ा बेहड़ी

पो०- इनाई जिला- दरभंगा (बिहार)

मुद्रा - प्रथम

मुद्रा - द्वितीय

मुद्रा - तृतीय

स्त्रियों के लिए कुण्डलिनी जागरण की प्रतिक्रिया स्वरूप-व्रत, उपवास, प्रेम, प्रार्थना में प्रेमावृत होने के साथ हृदयावृत में आस्था का होना भी परम आवश्यक है। उसी नारी को दीक्षित स्वरूपा इस काम-रति के मूल प्रयोग में माना जा सकता है, जिनमें ऊपराकिंत भावदशा एवं कर्मशीलता को पालन करने की क्षमता हो एवं मानसिक उद्वेग पर नियंतत्रण हो !

स्त्रियों में इस साधना का सबसे उपयुक्त समय तीसरे सूक्ष्म शरीर के विकासक्रम में होता है जो 16 से 21 वर्ष तक की अवधि में है। पुरूष में चौथे मनस शरीर के विकासक्रम में इसकी उपलब्धि परम ऊतकर्ष पर मानी जा सकती है। जो 21 से 28 वर्ष तक है।

इन सूक्ष्म शरीर एवं मनस शरीर के विकासक्रम में प्राकृतिक सुगन्ध एवं अमृत बनने की प्रक्रिया संतुलित एवं परम उत्कर्ष पर रहती है। इसलिए बंगाल में जिस युवती के केश की बृद्धि ज्यादा होती है, उस युवती को काफी, ऊर्जावान मान, माँ काली और दुर्गा स्वरूप में मानते है।

चूंकि उनका आन्तरीक विकास पूर्ण प्राण ऊर्जा के कम्पन्न तरंग पर रहता है एवं बरकेशा रानी के नाम से ऐसी युवतियो को ही सम्बोधित किया जाता है !

लेकिन इस 'जरबी प्राणायाम' के करने में स्त्री या युवतियों को कुछ विशेष सावधानी की जरूरत होती है। पुरूष के धमनियों में दौड़ते रक्त की मात्रा 5½ (साढ़े पाँच लीटर) ली० के लगभग सामान्य स्थिति में होती है।

उसीतरह स्त्रियों के धर्मनियों में 4½ (साढ़े चार लीटर) लगभग रक्त का प्रवाह सक्रिय रहता है। विदेशों में अमेरिका जेसे देश के नर-नारी में एक लीटर ज्यादा का रक्त प्रवाह रहता है।

इन्हीं रक्त के कम मात्रा के कारण तेज गति वाले वाहनो में, उन्हें चक्कर या उल्टी करने की प्रवृति ज्यादा रहती है। हम व्यवहारिक स्वरूप में भी देखते है कि स्पतालो एवं औषधलयों में बेहशी या चक्कर की प्रवृति रोगी में आती है, तो उनके सर को नीचे एवं पैर को कुछ ऊपर करके लिटाते हैं।

ताकि रक्त प्रवाह धमनियों द्वारा मस्तिष्क के नस नाड़ियों पर ज्यादा प्रवाह बना सकें। चूंकि यह चक्कर एंव बेहोशी मस्तिष्क पर रक्त प्रवाह कम एवं अवव्यवस्थित ढंग से पहुँचने के कारण ही होता है।

स्त्रियों का अनहात चक्र, जो इस हृदय चक्र के बगल में ही होता है एवं चित्‌शक्ति बहुत ही मजबूत एवं प्रवल होती हैं। इसलिए वे तुरंत ध्यानावस्था के मध्य बिन्दु पर आ सकती है।

लेकिन हृदय पर रक्त संचार की मात्रा कम होने से, तुरंत भयभित भी हो जाती है। अगर व्रत, उपवास, प्रेमावृत हृदय के साथ वे दीक्षित हैं, तो उनका मानसिक एवं शारीरिक चुम्बकीय आवृत बहुत प्रबल हो जाता है।

वैसी साधिका भी अपने ध्यान संध्या के साथ, इस **'जरबी प्राणायाम'** को ग्यारह सेकेण्ड में ग्यारह आवृत के धक्के (स्टौक) से ज्याद न करें !

चूंकि यह बहुत शक्तिशाली ऊर्जा का आवृत तैयार करता है। प्राणायाम करने में, अपने मानसिक स्थिति एंव शारीरिक स्थिति पर जरूर ध्यान रखें एवं बिल्कुल सहजता की भावदशा में निश्चल भाव से करें !

प्राण चिकित्सक की अन्तरमन की साधना हो, या सम्मोहनकर्त्ता की बहिर्मन की साधना हो ! यह जरबी प्राणायाम उनके साधना स्वरूप में अपार ऊर्जा पैदा करती है। चूंकि दोनों साधना में आन्तरिक ऊर्जा का ही खपत है। अतः प्रतिदिन के खपत के बाद भी यह ''जरबी प्राणायाम'' साधक को काफी ऊर्जावान किये रहता है। यह प्राणायाम अति गुप्त प्राणायाम प्रणाली है; जो साधु-संत ऋषि महात्मा अपने प्राण ऊर्जा को तरोताजा बनाने के लिए प्रयोग करते रहते हैं।

तांत्रिक-मांत्रिक भी कुण्डलिनी जगाने के प्रयोग में काम-रति का सहारा लेते हैं। लेकिन उनके और सद्‌गृहस्थ के कुण्डलिनी जागरण में सिद्धांत एक रहते हुए भी, उपलब्धि की दिशा उनके भावनात्मक एवं कर्मनात्मक प्रयोग के कारण अलग-अलग हैं।

उनकी साधना गति षट्‌दल के पंखुरी स्वरूप अनेक कम्पन्न तरंग के शब्दाबली से उनके सम्बन्धित लोको से सम्बन्धित उपलब्धियों से चलती है। ज्यादातर वे इस पृथ्वी के आवागमन के निम्न आत्माओं के वैश्वानर जगत के नीचे के प्रेतात्मा से सम्बन्ध स्थापित किये रहते हैं। इसलिए उनकी मुक्ति नहीं है। वे चौथे शरीर मनस शरीर के द्वैत से ऊपर जा नहीं सकते !

लेकिन सद्‌गृहस्थों की साधना, ध्यान एवं काम के समन्वय बिन्दु से सुषुम्ना द्वारा गमन करती है एवं पृथ्वीतल के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र के समन्वय बिन्दु से ऊपर वैश्वनार जगत या उससे ऊपर के लोको की

आत्मा या विशुद्धात्मा से सम्पर्क बनाये रखते हैं।

जिनमें स्वयं में अपने कल्पनाओं, इच्छाओं के अनुरूप सृजन की क्षमता एवं ज्ञान-विज्ञान के अच्छुन्न भंडार की पराकष्टा भरी रहती है।

तांत्रिको-मांत्रिकों के कर्मबंधित योनियाँ काफी मजबूती से पकड़ती है। क्योंकि उनकी साधना ही अभिच्छा, कामनाओं, आकांक्षाओं एवं मारण-उच्चारन के प्रयोग विधि में चलती है।

लेकिन सद्गृहस्थ की साधना-सहजता, प्रेमाभाव, दया, क्षमा, कुरूणा, मैत्री मुदितावस्था में चलती है। जो षट्चक्रो एवं अक्षर दल को प्रकम्पित करते चलती तो है ! लेकिन केवल कर्मबंधित अधोगमन की योनियों को भस्म करते आगे बढ़ती है।

उन योनियों को सदा के लिए भस्मकर (रिभुम) उस कमलदल स्वरूपा कम्पन्न पर कोई योनिय भार नहीं रहने देती है। मणिपुरक चक्र के सूक्ष्म शरीर एवं अनाहत चक्र के मनस शरीर के अंधबिन्दु (ब्लैकहोल) पर अपना समन्वय बिन्दु बनाते हुए, कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में छलाँग लगा लेते हैं।

सतज् भावदशा के देवी-देवता उनकर अनुगृहित हो रहते हैं ! लेकिन साध ाक की कोई कामनाओं एवं इच्छाओं की पूर्ति की भावदशा नहीं रहती है। वे तो इस मोहआच्छादित मायावी संसार की वासनात्मक, कामनातम्क, भावदशा से ऊपर उठकर, परमानन्द के आनन्दास्वरूप में लीन होकर, ईश्वर के केन्द्रक होने लगते है।

अतः इस कुण्डलिनी जागरण के सतज् काम-रति के प्रयोग में सद्गृहस्थ के सहयोगनि में प्रेम अह्लादित दीक्षित ऊर्जावान नारी का सहयोग ही, हमें कर्मबंध ान एवं मोहअच्छादित संसार के भव सागर से इस भग समाधि द्वारा मुक्त कर सकता है।

विषय से विशेष सम्बंधित संदर्भो को इस भाग प्रथम के आयु पर विजय, पृष्ठ संख्या- 249, मनुष्य जन्म चक्र में नारी की प्रधानता पृष्ट संख्या-217 एवं भाग तृतीय में कुण्डलिनी शक्ति पृष्ट संख्या-78, कुण्डलिनी से रूपान्तरण पृष्ट सं०-84, कुण्डलिनी जागरण की सफलता पृष्ट सं०-85, कुण्डलिनी शक्ति में स्त्रैण पुरूषत्व पृष्ट सं०-103 एवं विशेष चर्चा उपसंहार भाग-तृतीय में अवश्य देखें !

जीयो तो ऐसे जीयो !
जैसे तुम्हारा कुछ भी नहीं !

प्राकृतिक रूप से मानव जीवन, योनिगत चक्रवात का उच्चतम् श्रेणी प्राप्त, देवत्व-दानवत्व के बीच खड़ा सृष्टि का एक अनुपम उपादेय है। आणविक सिद्धान्त पर खड़ा ब्रह्म का प्रत्येक अणु एक छोटी ईकाई में भी मानवस्वरूप में हमें ईश्वरीय स्वरूप देने को उत्सुक है। हम इतनी गरिमापूर्ण ब्रह्म सिंहासन पर बैठकर भी भिखाड़ी के भाव में क्यों मर्माहत हो रहे हैं ? सृष्टि का प्रत्येक अणु हमें प्रेमाभक्ति, राष्ट्रभक्ति, मातृ-पृति भक्ति, भागवतभक्ति के अह्लादित हृदयावृत के लोरी में मंत्र-मुग्ध करने को सतत् क्रियाशील है।

लेकिन हमने अपने तमस् के काम, क्रोध, लोभ, मोह के ईश्वरीय चक्रवात में, अपने निजता के भाव को खो दिया है। जबकि यह तमस् चक्रवात ही मेरे शान्ति पूर्ण साधनामय जीवन का सीढ़ीगत् संस्कारगत् नींव है।

हमने अपने मूढ़ता में इसका दूरुॅपयोग कर धृणित मोहआच्छादित दावनल अपने भावनात्मक परिवेश पर डाल लिया है। अपने 'स्व' की स्थिति को अभिमान अंधता, क्रोध अंधता, वासना अंधता के सुनहरे जाल में, अहंकार का स्वरूप दे दिया है।

जबकि यही अहंकार मेरा **'मैं'** होने का स्वभाविक **'तू'** में विलय होने का ईश्वरीय वरदान है। **'मैं'** और **'तू'** का मिलन ही तो हमें इश्वरीय भक्ति, रामा भक्ति, कामा भक्ति, श्यामा भक्ति का समन्वय बिन्दु होकर शान्तिदायक रति-काम का स्वरूप ले, हमें सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के प्राकृतिक ऊर्जा स्रोत से जोड़ **'अहं'** का भाव लाकर, हमें **'स्व'** की स्थति में अवस्थित कर देता है।

हम अपना मालिकत्व समझ राष्ट्र का सिंहासन ही नहीं ! ब्रह्म के सिंहासन पर बैठने के उत्तराधिकारी हो जाते हैं ! परिस्थिति कोई नया रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित नहीं होती है ! वह तो अवाधगति से प्राकृतिक ग्रहदशा एवं हमारे कर्मबंधन में, हमारे चारो ओर अपना चक्रवात चलाती ही रहती है। हमारी जैसी मनोदशा एवं मनोभाव होते हैं, हम उसी के अनुरूप ढ़ल जाते हैं।

ऋषि हो या गणिका सभी अपने निजता स्वरूप में ब्रह्म के नजदीक हैं ! दूर्वाशा ऋषि तो क्रोध की निजता में ही ब्रह्मऋषि के श्रेणीं

में थे। थे तो बहुत बड़े ऋषि ! लेकिन क्रोध की निजता इतनी प्रखरता से उनपर छा जाती थी, कि कथित भगवान कहे जाने वाले हमारे अवतरीय पुरूष भी उनके श्राप या आर्शिवाद से नहीं बच पाते थे !

मानवस्वरूप में कृष्ण एवं अर्जुन भी अपनी निजता के स्वरूप में मानवस्वरूप में रहते हुए भी, नर और नारायण का ईश्वरीय स्वरूप ले लिये !

राजा जनक में काम की निजता ने ही राजप्रसाद के धन-वैभव का उपयोग करते हुए, पत्नी के स्थन पर हाथ रखकर भी होम में आहुती देते रहे। स्थन पर हाथ रखकर बारह वर्ष तक की तपस्या कर, राजा के सम्बोधन में भी सदेह रहते हुए, विदेह आत्मज्ञानी के रूप में हम मनाव समाज पर एक मिशाल छोड़ गये।

अप्सराओं की निजता ने देवता राजाइन्द्र के दरबार में नृत्यगायन को ब्रह्मस्वरूप दे, हम मानवस्वरूपा इन्द्र को देवताओं के राज्यसिंहासन पर बैठा दिया।

देवराजइन्द्र की तरह ही,हमें धन-धान्य से पूर्ण कर, समृद्धशाली वैभवशाली राज्यप्रसादों में रखते हुए भी, हमें आत्मज्ञानी के स्वरूप में अवतरीय पुरूष बनाडाला ! उदाहरण स्वरूप में कृष्ण, गौतम, महावीर को लिया जा सकता है।

सम्राट अशोक के दरबार की राजनर्तकी की वेश्यावृति की निजता ने, गंगा प्रवाह की दिशा को मोड़कर एक आत्मकेन्द्रीत नारी के स्वरूप में उसका चित्रण प्रस्तुत किया। मीरा की प्रेभाभक्ति की निजता ने उसे मीरा वाई बना ईश्वर कहे जाने वाले, कृष्ण को भी प्रेमाबंधन में बाँध लिया एवं अमर गाथा में उसके प्रेमाभक्ति को बहुत सम्मान से देखा एवं लिया जाता है।

निजता चाहे हमारे काम की हो, या क्रोध की हो ! जब केन्द्रीत होकर हमारे अहं का स्वरूप पकड़ती है, तो उसमें असीम शक्ति चली आती है। उसी निजता के स्वरूप में यह काम-रति के मूलबिन्दु पर तीनो भाग पुस्तक लिखि गई है।

जो काम इस मैथुनी सृष्टि के ब्यलिस लाख स्थूल जगत को थामे हुए है। वही जब हमारे सहजता के भावदशा में काम ही जब ध्यान का स्वरूप पकड़ता है, तो उसका योग ही हमें रावण से राम बना देता है।

मेरा **'मैं'** होने का अभिमान ही **'तू'** में समाकर प्रेमाभक्ति का स्वरूप ले कामशक्ति से रामशक्ति का रूप पकड़ पशु भावदशा से वीर भावदशा में आकर, कामक्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र (रामक्षेत्र) का स्वरूप पकड़ लेता है।

जिस कामरस, प्रेमरस, भक्तिरस को हम असम्भव मानते हैं। संसार के कुछ महामना एवं देवियों की थाती समझते हैं ! वह तो कण-कण में समाई हुई, हमारे कोशा-कोशा, रोम-रोम में ज्योर्तिमय प्रकाश लिए, प्रकृति के प्रत्येक असंभव कहे जाने वाले उपादानो को, सम्भव और सहज करने के लिए, हमारी काम और राम की निजता का केन्द्रीभूत ऊर्जा का ही स्वरूप है।

हमारी दासता एवं अविश्वास की मनोवृत ने ही हमें भिखारियों की श्रेणी में ला खड़ा किया है।

नहीं ! नहीं ! हम अपने 'स्व' की निजता को समझें !

अपने मालिकत्व का अहसास अपने अहंभाव में महसूस करें !

फिर हम ही तो काम, क्रोध, लोभ, मोह के विजेता स्वरूप में, ईश्वर कहे जाने वाले तथा कथित भगवान का स्वरूप ले लेगें !

जैसे ऋण विद्युत का धन विद्युत के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। वैसे ही सृष्टि में काम, क्रोध के बिना शान्ति, प्रेम, दया, क्षमा का कोई अस्तित्व नहीं है ! अगर हम न हों तो भगवान कैसे ? भगवान को कौन प्रेम करेगा ! कौन पूजेगा !

उन्हें भी हमारे जैसे कामाभक्ति, रामभक्ति, प्रेमाभक्ति, गुरूभक्ति की सख्त जरूरत है। क्योंकि अकेला तो उनका कोई अस्तित्व है ही नहीं

बन्धुओं ! तुम जहाँ भी खड़े हो ! जो भी परिस्थितियाँ तुम्हारे सामने हो, उसको अंगीकार करो ! न काम से भागो ! न क्रोध से भागो ! केवल उसके मूलभूत सिद्धानत को समझ, उसका रूपान्तरण अपने साधनामय जीवन में उतारकर एक प्राकृतिक शिव-शक्ति रूपा, नर-नारी होने का प्रकृतिसम्मत सिद्धान्त को अंगीकार करो !

इस सुन्दर संसार के मोह आच्छादित मायाओं को अपने सहजता के भावदशा में रूपान्तरीत कर, हो जाओं अवतारीय शिव-शक्ति के स्वरूप में सीता-राम, राधा-कृष्णा के श्रेणी में, इस समाज एवं राष्ट्र का केन्द्रक !

एवं इस सृष्टि के दूलर्भ योनि में

''जीयो तो ऐसे जीयो, जैसे तुम्हारा कुछ भी नहीं !

रोगी के रूप में औषधालय इलाज कराने हेतु जाया करता था। पन्द्रह साल पहले एकाएक बाबा साहब ने कहा कि ''चलो ध्रुव नारायण दिखलाता हूँ।'' मैं ऊपर का साधनाकक्ष देखकर दंग रह गया ! शाम में सामुहिक वेदाध्वनि की तरह 'ऊँ' ध्वनि गूंजकर सभी व्यवस्थित ढ़ग से सजी औषधियों को प्राणवान कर रही था। यह मेरे जीवन का अनूठा अनुभव था।

बाद में सपत्नीक उपचार कराने जाता रहा एवं गोष्ठी में 'ऊँ' ध्वनि, श्वॅासायम, प्राणायाम के अचम्भित मुद्रा को अपनाता रहा ।बारह साल पहले अचानक मेरे कई आपरेशन हो गये और मैं व्यापार से भी हटने लगा। लेकिन उच्चमनोबल एवं लिप्सा के कारण व्यापार भी नहीं छोड़ पा रहा था।

दस साल पहले मैं सपत्नीक इलाज कराने आया; तो गोष्ठी में मुझे 'ऊँ' ध्वनि कैसे करना चाहिए, इसकी शिक्षा बाबा साहब 'शेखर जी' के सहयोग से देने लगे। कैसे उलटा-सीधा 'ऊँ' का माला फेरते हुए चक्र चलाऊ और सधे प्राणायाम की मुद्रा में ध्यान करूँ, इसकी विधिवत् प्रक्रिया मुझे समझाने लगे।

मैं शिष्यवत् दीक्षा लेकर अनजाने ही गुरू कृपा से जुड़ गया। मेरे प्रश्न करने पर कि ''अगर मैं गलत योग विधि करूँ तो क्या होगा ?'' तो उन्होंने मनोबल को बढ़ाते हुए कहा ''मेरे रहते तुम गलत कैसे कर सकते हो !''

प्रेमी सुधिजन !

चार साल पहले मैं नाभिकुण्ड सुखकर उलटा हुआ, कृष्काय होकर औषधालय के कक्ष में पहला कदम रखा ही था, कि बाबा साहब ने फौरन मेरे आज्ञाचक्र पर हाथ रखकर कहा ''अरेऽ ध्रुव नारायण तुमने क्या कर डाला !

''तुम्हारी मृत्यु हो सकती थी ! तुम्हारी गर्दन टूट सकती थी ! मस्तिष्क की नस फट सकती थी ! तुम पागल हो सकते थे !''

मैं उनकी बात सुनकर अचंभित, विष्मृत हो रहा था ''मैंने क्या कर डाला ! पन्द्रह साल पहले ध्यानकक्ष में प्रवेश करते वक्त एवं कृष्काय अवस्था में मुझमें क्या देख पाये ? किस तरह देख पाये ?

सफल प्राणचिकित्सक कुण्डलिनी जागृत पुरूष ही हो सकते हैं। उनके तप की ऊर्जा उर्ध्वगमन में प्रेतत्व प्राप्त सूक्ष्म शरीरधारी से, सूक्ष्मतम् वैश्वानर लोक से भी ऊपर देवतव प्राप्त आत्मपरक शक्ति से जुड़ जाती हैं।

उनका कम्पन्न तरंग उन आत्मपरक शक्तियों से प्राणऊर्जा एवं ज्ञानपरक शकितयाँ पश्यन्ति एवं परा वाणी में ग्रहण करने लगती है। अचेतन में दिये गये उनका आर्शिवाद का ऊर्जा-स्रोत लेन्सीकृत सूर्य किरण की तरह वात्सल्य एवं प्रेम का स्वरूप

लेकर अगले पर बरस जाती हैं।

ओरामंडल एवं आभामंडल के वलय तरंग को देखकर ही, वे अगले की स्थिति भाँफ जाते हैं। उन्हें ही पता नहीं होता है, कि ऐसा क्यों होता है !

बाद में उन्होंने बताया कि कुण्डलिनी गति में ऊर्जा ने उर्ध्वगति पकड़ ली है। जिस तरह सर्प हड्डी रहित होकर भी केवल माँसपेशिया के बल पर पूँछ के बल खड़ा हो जाता है। उसी तरह कुण्डलिनी ऊर्जा, ईंगला-पिंगला के सम्यक् श्वसनक्रिया पर, सुषुम्ना द्वारा केवल शक्ति प्रवाह में उर्ध्वगमन पकड़ लेती है।

मैं अनजान ठगा सा रह गया ! पाप-पुण्य कर्म-कुकर्म किसी भी ऊर्जा का विनष्टिकरण नहीं हैं, जिसका रूपान्तरण केवल कुण्डलिनी साधना द्वारा-क्षमा, प्रेम, करूणा, मुदिता, में किया जा सकता है। इसी रूपान्तरण प्रक्रिया में जिस स्त्री को हम भोग्या मानते हैं, वह साधना स्वरूप में दिव्या का स्वरूप ले लेती हैं।

सैतीस साल से प्रखरता से किये गये, दिव्य ओरामंडल की दिव्यता में पत्नी गीता देवी के गायत्री जाप का सतज् तप का फल एवं सौहादर्यपूर्ण प्रेम चपकी में, मुझे काम थपकी का वरदान इस तरह प्राप्त हुआ; की बाबा साहब के प्रोत्सहान एवं प्रेरणा से तीन भाग में लगभग नौ सौ पन्ने की पुस्तक सचित्र वर्णन के साथ, आप सुधिजन के बीच प्रस्तुत करने का अवसर मिल पाया है।

बाबा साहब ने प्रतिबंधित कर दिया था कि जबतक तीन भाग में- पशु भावदशा, वीर भावदशा एवं दिव्य भावदशा में पुस्तक नहीं लिख ली जायेगी तब तक पुस्तक नहीं छपेगी ! मैं अचेतन में संकल्पवद्ध हो चुका था और इस कठिन तपस्या से आज साढ़े तीन वर्ष बाद निकलकर आप सुधिजन के बीच एक अमुल्य निधि के रूप में कामशक्ति भी मुक्ति का मार्ग है !

इस सिद्धांत को राजा जनक के विदेह स्वरूप एवं कृष्ण के नर से नारायण होने के आपके स्वरूप वर्णन में, लिखने का इस अकिनचंन का एक छोटा सा प्रयास है। मन में लिया गया संकल्प तो हमेशा टुटता ही रहता है। लेकिन यह संकल्प अचेतन चित् में लिया गया था।

राजा जनक जो सदेह विदेह कहलाये। योगिराज कृष्ण जो बहुत सारी रानियो के बीच पुत्र-पौत्र से भरे-पूरे रहकर भी, ब्रह्मचारी स्वरूप में राधा-कृष्ण की प्रेमाभक्ति में पूजे गये।

उन्हीं के सांख्ययोग में इस काम थपकी पर वेदानुमोदित सूत्रों पर आधारित यह कुण्डलिनी जागरण के मूलभूत सिद्धान्त पर विंहगमयोग का नया विज्ञान एवं उम्र पर विजय के रूप में अतिगुप्त **"जरबी प्राणायाम"** का कुण्डलिनी जागरण के साथ योग का प्रयोगिक प्रस्तुतिकरण, इस अकिंचन का एक छोटा प्रयास है।

भोग्या स्त्री जब दिव्या के प्रमेमय स्वरूप में हो जाती है, तो इस काम थपकी (थेरापी) के योग में थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्ययोनि के कर्मबंधन भी सदा के लिए नष्ट होकर, काम-रति भी शिथिल पड़ जाते हैं एवं पशु भावदशा के पुरूषत्व को भी वीर भावदशा से दिव्य भावदशा में पहुँचाकर अवतारीय स्वरूप दे देती है। मनुष्य की सृष्टि में केवल एक यही कुण्डलिनी योग है-

जो होती तो है स्थूल जगत के अधोगमन में ! लेकिन साधना के बल पर हमें उर्ध्वगमन के पथ पर डाल, सूक्ष्म शरीर के केन्द्र बिन्दु पर आघात करती है एवं उर्ध्वगमन करते हुए, हमें दीर्घायु बनाती है।

मैंने अपने मकान के खिड़की में सूर्य के रथ के पहिया पर 30 साल पहले षट्चक्र का चित्र बनवाया था। लेकिन आज तक कोई पूछने नहीं आया कि यह क्या है ? चूंकि इसके ज्ञाता अब लुप्त-गुप्त विद्या स्वरूप में कहीं हो सकते हैं !

अनजाने में मेरे कदम कुछ इस तरह के योग पद्धति पर बढ़ चुके थे, जो लाखों साधक में कोई एक कर पाता है। ऋषि, मुनि, इस कुण्डलिनी ऊर्जा की प्राप्ति के लिए जन्म-जन्मांतर तक लालायित रहते हैं।

जिसमें 'ॐ' के ध्यान ऊर्जा एवं काम ऊर्जा के समन्वय बिन्दु से ज्ञान गंगा की प्रबल ऊर्जा प्रवाह फूट पड़ती हैं। जहाँ से साधक प्रति कुण्डल की परिधीय गति पूरा कर लेने पर ऋषि-मुनियों की तरह आयु का भी विजेता हो सकता है।

पूर्ण रूपान्तरण होने से शिव शक्ति स्वरूपा अपने दामपत्य जीवन के आत्मखंड से जुड़ते हुए, सफल प्रेमपूर्ण जीवन में ऐश्वर्यवाण होकर भी- ब्रह्मा, विष्णु, महेश का कर्तव्य निर्वाहन कर, शक्तिरूपा माँ के आँचल में समा, उनके आगोश में शान्तिदायक थपकी पाकर, केवल आनन्द सागर में डूब सकता है। स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य सबके प्रतीति से बाहर जा सकता है।

आश्रम के साधक कहते हैं, कि बाबा साहब किसी को भी शिष्य नहीं बनाते हैं ! लेकिन वगैर योग्य शिष्य को अपने कम्पन्न तरंग में लाये, सिद्धलोक की यात्रा कैसे कर सकते हैं ! सिद्ध पुरूषों का, सिद्धि भी एक भार है! वास्तव में निष्ठावान गुरू वात्सल्य प्रेम में क्या सोचते हैं और क्या करते हैं, वह हमारा विषय नहीं है !

कौन कहता है कि गुरू आते नहीं !
पार्थ, अर्जुन की तरह तुम बुलाते नहीं !

उनके आर्शीवाद, वात्सल्य पर तो मेरा अधिकार नहीं है ! लेकिन अपनी पुकार, अपनी आस्था, अपने विश्वास पर तो अधिकार है !

यही 'स्व' की स्थिति मेरे अहंभाव को अर्पण का स्वरूप दे, प्रार्थनामय, ध्यानमय, प्रेमाभक्ति में गुरूभक्ति का स्वरूप दे सकती है।

शिष्य ध्रुव

उपसंहार

इस छोटी पुस्तक में जो कुण्डलिनी, प्राणशक्ति एवं सम्मोहन की व्याख्या क्रियात्मक एवं प्रयोगात्मक रूप में की गई है, उसमें दिव्य आभामंडल युक्त देवतुल्य महर्षि सम्मत

(1) स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती (2) पंडित अरूण कुमार शर्मा

(3) आचार्य राम शर्मा (4) आचार्य रजनीश

(5) नारायण दत्त श्री माली (6) सुरेन्द्र नाथ सक्सेना

ऋषि सम्मत सिद्धान्त एवं विज्ञान सम्मत अन्वेषण के संकलन की प्रशंसनीय व्याख्या बहुत ही आदरभाव से देखा एवं ग्रहण किया जा सकता है ।

इन दिव्य आत्माओं ने, जो ज्ञान-विज्ञान की श्रृंखला परम तत्व से तोड़कर, हम मानव समाज के कल्याणार्थ इस पृथ्वीवासी मनुष्य को दिया है, उसी के कुछ बिन्दुओं को अपने अध्ययन, अनुभव एवं प्रयोगात्मक स्वरूप में इस पुस्तक में दर्शाने का प्रयास किया गया है । हमें तो ऐसा लगता है, कि केवल मेरी लेखनी चल रही है। लेकिन इन महान आत्माओं के प्राण संचरण का मैं केवल माध्यम हूँ ।

आज के सामाजिक एवं अध्यात्मिक परिवेश में राष्ट्र और राज्य जब सृजनात्मक चहुमुखी प्रगति के रूप में करवट बदल रहा है, इन नाजुक क्षणों में ।

"इस कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी" भाग-प्रथम, "कुण्डलिनी जागरण आधार है प्राणशक्ति एवं सम्मोहन" भाग-द्वितीय एवं "कुण्डलिनी जागरण उपहार है-दिब्य भावदशा" भाग-तृतीय; इन जीवित एवं स्वर्गारोहित आत्माओं के ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति,साधना के अनुरुप हमारी प्राणशक्ति द्वारा बैखरी वाणी में उद्धृत हो रही है। उन्हीं का टेलीपैथिक संदेश, अध्यात्मिक एवं विज्ञान के नये आयाम में, आत्मावान साधक एवं पाठक के बीच प्रस्तुत करने का प्रयास है।

मेरी प्रेम अहलादित पत्नी के सहयोग के भी उपेक्षा नहीं की जा रकती है ! चूँकि उनकी दैनिक तपोबल का तप एवं प्रेम पूर्ण अहलादित सहयोग ने ही मुझे इस ऊँच श्रेणी और महान पुस्तक लिखने की प्रेरणा प्रदान की है । साधना में उनका सहयोग अवर्चिनिय आत्म सुगन्ध की तरह ब्रह्मपथ पर डाला है ।

गुरूदेव सुशील बैद्य की प्रेरणा दायक एवं उत्साह वर्धक प्रेम तपकी ने, इस पुस्तक को एक आत्मबोधक आधारभूत स्वरूप देने का प्रयास किया है ।

पाँच हजार वर्ष पहले महाभारत की लड़ाई लड़ी गयी और हमारी भारतीय संस्कृति का एक स्वर्णिम युग के, स्वर्णिम अध्याय का पटाक्षेप हो गया ।

हमारी मानसिक गति जो रजस् और सतज् भाव में चल रही थी, वह युद्ध की विभिषिका के फल स्वरूप, तमस् भाव में चलने लगी । अधोगति एवं निम्न संस्कार की गति में, बहुत तांत्रिक-मांत्रिक ने समाज को भयभित कर दिया । उनकी विकृत भावदशा के सामाजिक गति में, समाज और राष्ट्र कुपोषित हो गया ।

साबर नदी के किनारे के साबर समुदाय का मंत्र, आसाम के कामरूकमख्या एवं बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों का मारण-उच्चाटण मंत्रों की विभिषिका में, इस संस्कारयुक्त सामाजिक परिवेश को, तहस-नहस करने की रूपरेखा तैयार हो गयी

बराबर चर्चा की जा रही है कि शक्ति ऊर्जा से प्राप्त मानसिक ऊर्जा का बिनष्टीकरण नहीं होता है । इन्हीं सिद्धान्तों की प्रगाढ़ता में, महावीर और गौतम ने जब सत्य और अहिंसा का शंख फूँका, तो समाज झुलसते अपने तमस् भावदशा को दवाकर, रजस और सतज् भावदशा का आवरण ओढ़ना चाहा ।

लेकिन साधनागत ढ़ांचे से जबतक प्राण का संचरण, प्राणवायु क्षेत्र से प्राण ऊर्जा क्षेत्र में गमन करते हुए, ज्ञान ऊर्जा का कारण नहीं बने ! तब तक सामाजिक परिवेश को कैसे बदला जा सकता है ? गौतम और महावीर के बहुत सारे अनुयायी बौध भिक्षु एवं जैन के रूप में इन महामना के संदेश की सत्य और अहिंसा की भाव-अभिव्यक्ति में जन-जन संदेश को देने लगे ।

लेकिन यह मानव जीवन जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के चक्रवातीय प्राण ऊर्जा से चल रही है; उसके प्रवाह बिन्दु पर किन्ही महामना का ध्यान नहीं गया ।

सभी ने एक नाद से समाज में - काम छोड़ो! क्रोध छोड़ो! लोभ छोड़ो! मोह छोड़ो! की अध्यात्मिक परिवेश तैयार करने की व्यवस्था की । लेकिन मनुष्य तो शब्दभेद ही नहीं, द्वन्द्वात्मक प्रयायवाची संस्कारों से घिरा है । एक छोर तो- काम, क्रोध, लोभ, मोह का है !

लेकिन इसके दूसरे छोड़ पर ही, उसकी प्रयायवाची उपलब्धियाँ- करूणा, मैत्री, मुदिता और अहिंसा है एवं इन्हीं के मध्य बिन्दु पर काम और अकाम बिन्दु है । जहाँ हमारी सारी स्मिता खो जाती है !

इन महामना का ईश्वरीय परा वाणी से उतरा संदेश, बैखरी वाणी के स्थूल स्वरूप में आते-आते शब्दभेद में शिष्यों में रूपान्तरित हो, जन-जीवन के प्राण ऊर्जा प्रवाह पर कोई प्रभाव नहीं बना पाया !

कर्मगाँठ पर पड़ी, दबी ज्वालामुखी में तमस् ऊर्जा का प्रवाह पकड़ पूरा देश; हिंसा-द्वेष, मान-अपमान,. घृणा-अहंकार का स्वरूप पकड़, आपसी फूट एवं घृणा के तमस् स्वभाव के बिकृत स्वरूप में धधकने लगा ।

जिसका लाभ उठा विदेशी लुटेरे एवं शासक, इस देश के सामाजिक संस्कारयुक्त व्यवस्था को तोड़ कर शारीरिक रूप से ही नहीं, मानसिक रूप में भी देश और राज्य को गुलाम बना लिया । केवल सत्य और अहिंसा का विजयघोष काम न आया ! सभी देशीय राजा एवं जनता आपसी फूट और घृणा, द्वेष का शिकार हो रहे थे । विदेशी शासक, पहले मुगल और बाद में अंग्रेज पूरे भारतवर्ष के धन सम्पदा को लुटकर, इस देश को नरकंकाल बना रहे थे । हमारी संस्कृति एवं मानसिकता को भी बुरी तरह कुचल डाला था ।

पुस्तक में चर्चा की गयी है, कि पृथ्वी सभी नक्षत्रों एवं चन्द्रमा के साथ भी अपना डिग्री, कोण बदलता रहता है। शायद उसी महादशा का शुभ मुहूर्त था, जब वीर शिवाजी, मंगल पाण्डे और महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने स्वाभिमान का बिगुल फूँका । प्रत्येक भारतीय नागरिक के हृदय में स्वतंत्रता का दीप जला परत्रंतता के तंद्रा से जगाने का प्रयास किया ।

नब्बे वर्ष बाद, विश्व पर टूटते अंग्रेजी साम्राज्य के टूटते मनोबल पर, महात्मा गाँधी के प्रयत्न स्वरूप, एक बार फिर हममें, जागृति का सैलाव आया ।

देश तो आजाद हो गया ! लेकिन आज भी हमारी मनोवृति दुराचार, अनाचार, घुसखोरी, हिंसा, द्वेष के दलदल से नहीं निकल पा रही है ।

हमेशा पृथ्वी के समय की गति प्राकृतिक ढ़ंग से आगे की ओर होती है

सुभाषचन्द्र बोस की आत्मगति से निकलते उद्घोष- "तुम मुझे खून दो ! मैं तुम्हें आजादी दूँगा !" एवं प्रधानमंत्री इन्द्रागाँधी का अन्तिम अभिभाषन- "मेरे खून का कतरा-कतरा मरते दम तक देश की समृद्धि में काम आयगा!" के बलिदानी स्वरूप में आज देश ने फिर करवट ले लिया है ।

आज फिर से, देश को सोने की चिड़ियाँ बनाने का संदेश लेकर हमारे कई

राजनायिक नेता, जन्म लेकर इस भारत वर्ष की काया पलट करने वाले है । बिना बलिदान के तो आधार नहीं बनता । उसी के प्रतीकात्मक हमारे महामना एवं उच्च क्रान्तिकारियों का बलिदान निरर्थक नहीं गया ।

हम कई प्रदेशों के स्वर्णिम युग में बिहार का भी उदाहरण ले सकते हैं । बिहार हमेशा से ज्ञान-विज्ञान के प्रादुर्भाव का केन्द्र रहा है । यहाँ पातंजलि, चरक, बाल्मीकी, गौतम, महावीर जैसे परम तत्व से टूटे महामना ने जन्म लिया ।

सारी गरिमामय संस्कार के कुचल देने के बाद भी-आई-एस. , आई.पी.एस एवं भारतीय उच्चपद पर बिहार के गरिमामय व्यक्तित्व के लोग, अपनी प्रखर ज्ञान-विज्ञान एवं आत्मदर्शन की प्रतिभा बिखेर रहे हैं ।

इस स्वर्णिम युग के संदेश को हम आदरनीय महामना के रूप में भी देख सकते हैं; कि अब बिहार क्या ? पूरा भारतवर्ष एक स्वर्णिम आभा की ओर करबट लेने वाला है । शिक्षा-दीक्षा में ही नहीं हरित क्रान्ति में भी कई प्रदेश के साथ बिहार भी अग्रणी होने का दावा कर सकता है । विद्यालयों के ताले ही नहीं खुल गये हैं! अपितु आज नारी शक्ति भी उभर कर सामने आयी है । जो हमारे इस अध्यात्मिक लेख का मुख्य केन्द्र बिन्दु रहा है।

लडकियाँ, लड़को से ज्यादा संख्या में साईकिल पर चढ़कर विद्यालय एवं महाविद्यालय जाते देखे जा रहे हैं । नारियाँ भी सामाजिक परिवेश एवं हरित क्रान्ति एवं ज्ञान क्रान्ति का संकल्प ले, समाज में बराबर की साझेदारी बना रही है ।

नारी सशक्तिकरण का जो विगुल महारानी लक्ष्मीबाई ने फूँका, वह इन्द्रागाँधी तक ही नहीं समाप्त हुआ ।

आज हमारे गौरवान्वित भारतवर्ष के कई राजनायिका हमारे राजनेता के कदम में कदम मिलाकर, इस स्वर्णिम युग के बहुमुखी सप्त क्रान्ती के अग्रणी नारी शक्ति के उदाहरण स्वरूप सामने आयी हैं ।

आज तक नारी शक्ति का केवल बिगुल ही फूंका गया । लेकिन उसका सशक्तिकरण कार्यरूप में आज देखा जा रहा है । नारी शक्ति को सृष्टि के आधार

में ही नहीं, युग-युग से उसके विकास क्रम पर ही, किसी भी देश या राष्ट्र का संस्कारयुक्त निर्माण हो पाया है । अनादिकाल से नारी को शक्तिरूपा एवं माँ स्वरूप में - काली, दुर्गा, सरस्वती के रूप में देखा गया है ।

बच्चें तो माँ के गर्भ से ही प्राण ऊर्जा से पोषित होते है एंव स्थूल जगत में आते ही, माँ के सीने से लग दुग्धपान कर अपने संस्कारयुक्त व्यक्तित्व में पल पाते हैं ।

किसी भी व्यक्ति का मानसिक एवं शारीरिक विकासक्रम को माता-पिता के संस्कार से कैसे अलग माना जा सकता है ! उसी आधार के नींव के सींचने का काम हमारे राजनेता ने, ईश्वरीय संवाद के रूप में कार्यवाहक स्वरूप ले अपने संकल्प में लिया है ।

तीन बजे से पाँच बजे सुबह तक चन्द्र मंडल के चन्द्रीकरण के कारण ही नहीं, बल्कि हमारे शरीर का तापमान भी प्राण ऊर्जा के संचरण के कारण बिलकुल शीतलता के साम्यावस्था में आ जाता है । स्वप्न द्वारा सारे दैनिक तनाव, जो कर्मगाँठ पर नहीं जा पाते हैं, हमारे नाड़ियों (नर्भ) को शान्त कर दस मिनट के लिए बिलकुल शान्त हो, प्रकृति से ऊर्जा प्राप्त कर लेती है ।

इन मंडलों की क्रमबद्धता के डिग्री-कोण के अनुसार इनकी प्राण ऊर्जा का कम्पन्न, हमारे स्नायुक्षेत्र के कम्पन्न में संचरण की व्यवस्था बनाने लगती है । लेकिन हमारी साधना का जो स्वरूप है, उसी के अनुपात में हम प्रवाहित प्राण ऊर्जा को ग्रहण कर पाते हैं । इसलिए पुस्तक में प्राण ऊर्जा के ग्राह्य शक्ति को बढ़ाने के लिए लोम-विलोम एवं प्राणाकर्षण प्राणायाम की सूक्ष्म व्याख्या की गयी है ।

हम दैनिक रूप से श्वसनक्रिया प्रतिपल प्रतिक्षण लेते रहते हैं । लेकिन इसकी सूक्ष्मता की ओर हमारा ध्यान कभी नही जाता है ।

चौबीस घंटा में कम-से-कम बारह बार हमारा श्वसनक्रिया सूर्य, चन्द्र के डिग्री, ताप अंश एवं चुम्बकत्व क्षेत्र बदलते रहने के कारण, चन्द्र और सूर्य स्वर के रूप में पाली बदलता रहता है ।

श्वसनक्रिया तो हम वायुमंडल से प्राणवायु द्वारा ही लेते हैं । लेकिन जो ऑक्सीजन हम वायुमंडल से लेते हैं, उसको हमारे अंदर संचरित प्रत्येक कोषा अपने प्राण ऊर्जा संचरण की व्यवस्था के अनुकूल ही उसके तत्व को विलगित कर,

हमारी ग्रंथि अपनी उपयोगिता के अनुरूप ग्रहण कर लेता है । 250 प्रतिशत में, निष्कासन व्यवस्था स्वरूप कार्वनडाईऑक्साइड 150 प्रतिशत बाहर निकल आती है एवं 100 प्रतिशत ऑक्सीजन हमारे कोषाओं एवं ग्रंथिओं द्वारा अवशोषित कर ली जाती है; जो हमारे षटचक्र के नियंत्रण में होता है ।

प्राकृतिक ढ़ंग से हमारा षटचक्र भी श्वसनक्रिया द्वारा प्राण ऊर्जा का क्षेत्र बनाए रहता है । टूटती श्वॅास व्यवस्था, मेरे स्थूल शरीर की अनित्य परिधि की टूटने से मृत्यु का कारण है ।

परिधि तो टूटती रहती है ! लेकिन केन्द्र को तोड़ा नहीं जा सकता !

कितना भी बिन्दु को बाँटे, तो बिन्दु तो बचेगा ही !

अणु टूटकर इलेक्ट्रॉन ऋण विद्युत (-) पोट्रॉन धन विद्युत (+) एवं न्यूट्रॉन धन+ऋण का मिलन बिन्दु केन्द्रस्वरूपा निष्क्रिय बिन्दु के रूप में बचेगा ही ! बिन्दु कितना भी तोड़ दिया जाय, समाप्त नहीं हो सकता ! ईश्वर तत्व में विलिन होने का सम्माधि बिन्दु, ब्रह्मबिन्दु, स्थितिप्रज्ञ बिन्दु, निःशब्द बिन्दु, निरअहंकार बिन्दु सब परिधि का टूटकर बिन्दु में समा जाने पर ही सम्भव है ।

ठीक उसी तरह हमारी श्वसन व्यवस्था अगर कम से कम प्राणवायु का कम्पन्न बिन्दु बनाती है, तो कम से कम प्राण ऊर्जा क्षेत्र के बिन्दु में समाकर, अनन्त प्राण ऊर्जा क्षेत्र का कम्पन्न पकड़ पाती है ।

स्थूल शरीर की भौतिक व्यवस्था, हमारे प्राणवायु क्षेत्र की व्यवस्था है । लेकिन काम, क्रोध, लोभ, मोह जो हमारे योनिगत चक्रवात का कारण है, वह प्राण ऊर्जा क्षेत्र से गमन करती है एवं प्राणवायु का संबल पकड़ हम पर प्रगट होती है

इसलिए हम इन प्रवृतियों को अगर दबाते हैं, तो प्राण ऊर्जा क्षेत्र में प्रवेश किये वगैर, यह हमारे प्राणवायु संचालित स्थूल शरीर के मनोविकार के रूप में, हम पर कर्मबंधन का गाँठ तो डालती ही है ! लाखों साधु, संत- दया, प्रेम, क्षमा, अहिंसा दिखलाते देखे जाते हैं । लेकिन बिना प्राण ऊर्जा क्षेत्र में प्रवेश किये-काम, क्रोध, लोभ, मोह का दमन असंभव है ।

अव्यक्त और छुपे रूप में भी वह, साधु प्रवृत के रूप में भी, अपना अस्तित्व कायम किये रहता है । चूँकि उसका आगमन तो सूक्ष्म शरीर से है ।

गोमुख से निकली गंगा-शहर, देश का कूड़ा-करकट, गंदगी

लिये ही समुद्र में मिल जाती है । लेकिन उसका गंगा स्वरूप होने की व्यवस्था, फिर से वाष्पीकृत होकर ग्लेसियर बन जाने में ही है ! काम, क्रोध लोभ, मोह प्राण ऊर्जा प्रवाह क्षेत्र के अनन्त बिन्दु से ही आती है।

फिर उलटी प्रवाह के रूप में जबतक मूलाधार चक्र पर कुण्डलिनी जागरण की व्यवस्था से सुषुम्ना द्वारा, अनन्त प्राण ऊर्जा क्षेत्र को पकड़, उसका रूपान्तरण दया, प्रेम, क्षमा, प्रार्थना में नहीं हो जाता! तबतक इस काम, क्रोध, लोभ, मोह के अतिक्रमित वेग को नहीं रोका जा सकता है ।

यह हमारे अन्दर प्रतिपल, प्रतिक्षण अपना अस्तित्व बनाए ही रखता है । लेकिन बहिर्मन के प्राणवायु में संचरित द्वेष, घृणा, अहंकार अत्याचार सब हमारे मानसिक ताप के रूप में अवसर पा कर प्रगट हो जाते हैं **इसलिए ऋषियों एवं मनिषियों ने अपने ज्ञान-विज्ञान एवं मनन द्वारा श्वसनक्रिया को ही, उच्च आत्मा एवं निम्न आत्मा के गर्भ में आने के कारण में देखा ।**

हम दैनिक विधिवत प्राणायाम की अनायास व्यवस्था में आ जाते हैं, तो स्वतः हमारा श्वाँस प्राणायाम की मुद्रा में चलने लगता है । प्राणायाम के मूलबिन्दु अनाम बिन्दु पर आने पर, जहाँ गुरुत्वाकर्षण बल एवं अग्निताप समन्वय बिन्दु पर चला आता है, तो उच्च से उच्च आत्मा के आगमन का कारण बनता है !

कुण्डलिनी जागृत लोग प्राणवायु के केन्द्र बिन्दु और प्राण ऊर्जा के केन्द्र बिन्दु के एकाकार बिन्दु पर समन्वय होने पर, अनन्तगामी, ऋषिक्षेत्र, सिद्धक्षेत्र, देवक्षेत्र, वैश्वानरक्षेत्र इत्यादी की अनेक आत्माओं को निमंत्रित कर गर्भधारण से, उच्च व्यक्तित्व के पुत्र-पुत्री प्राप्ति करने की व्यवस्था में, सर्वोपरि भूमिका निभाते हैं ।

लेकिन स्त्री जो प्राकृतिक रूप से पूर्ण होती है, शक्तिरूपा होती है । उनका भी प्रेममय, प्रार्थनामय सहवास, उन उच्च आत्माओं के जन्म की पृष्टभूमि बनाती है ।

हमारे श्वसनक्रिया में ताप का भी बहुत महत्व है । योगी हिमालय पर जा कर ही शीतल प्रान्त में तप कर अपनी श्वाँस व्यवस्था को कायम ही नहीं करते! वरन हम गृहस्थ भी शीतल समव्यवस्था में ही, अपनी मानसिक दशा को प्राण ऊर्जा

के शीतल व्यवस्था में ले जा सकते हैं ।

गर्मी के समय में हमारा खून ज्यादा पतला हो जाता है, जो मानसिक ताप को बढ़ाये रखता है एवं हमारी कार्य क्षमता को गिरा कर रखता है । लेकिन जाड़ा में खून में गाढ़ापन चला आता है और हमारी मानसिक दशा क्षमतावान होकर कार्यक्षमता भी बढ़ा लेती है ।

जब हम लोम, विलोम या प्राणाकर्षण प्राणायाम करते हैं, तो दस मिनट मन्दगति में श्वसनक्रिया से गर्म श्वाँस ही निकलता है । लेकिन बीस मिनट होते-होते श्वाँस शीतल होकर निकलने लगता है । तो ही प्राण ऊर्जा में जाने की गति मिलने की सम्भावना बनती है ।

स्थूल शरीर में गंगा स्नान कर, हम अपने शरीर और मन को शीतल करना चाहते हैं । सूक्ष्म शरीर की गति में जाकर, गंगा स्नान करने के लिए; कपालभाँती, अनु, लोम-विलोम, प्राणाकर्षण, योगनिद्रा, भ्रामरी, उद्‌गित प्रणायाम ही मुख्य रूप से श्वसन क्रिया की प्राणायाम गति है । वैसे कुण्डलिनी जागरण के व्यवस्था के लिए मुख्य चौदह तरह की प्रयोग विधि पुस्तक में बताई गई है ।

हम सुबह की पहली किरण के साथ लोटापात्र या अंजुली में जल लेकर सूर्य को अर्घ्य देते हैं, तो जल का हर अणु एक प्रिज्म का स्वरूप ले, सूर्य किरण को सात रंगों में बिखेर देता है । जो सात रंग सात ग्रह के प्राण संचरण का माध्यम है एवं हम अर्घ्य देने के साथ ही सूर्य के सप्तग्रह के सप्त आयामी प्राण ऊर्जा के ग्रहण की प्रात्रता प्राप्त कर लेते हैं ।

ठीक उसी तरह हमारे राज्य और देश का प्रत्येक बच्चा-बच्चा, आज हमारे राजनेता के सप्त आयामी सूर्य किरण के बिखराव की तरह क्रान्ति का अग्रदूत होकर सामने आने वाला है । चूँकि आज देखा जा रहा है कि छोटे-छोटे बच्चों में अद्‌भुत प्रतिभा का सैलाव आया है ।

जिस तरह समुद्र के एक बून्द पानी में पूरे समुद्र का गुण होता है । उसी तरह बच्चा-बच्चा प्रकृति का अनुपम संदेश, राज्य और राष्ट्र को देने जा रहा है । जिसका आधार नारी सशक्तिकरण है । हमारे माननीय राजनेता, जो हजारो बलिदानी एवं क्रान्तिकारी के तप से हमारे राज्य को प्राप्त हुआ है । उनके हाथ में राज्य का वागडोर थामने की गति बता रही है, कि पूरे विश्व के लिए स्वर्णिम

आभा बिखेरती हुई सूर्य की लालिमा आकाश पर छा गयी है ।

''पल भर का है, मेहमा अंधेरा !

किसके रोके रूकेगा सवेरा !

की प्राण ऊर्जा में संचरित पश्यन्ति वाणी का संचरण हमारे देश के प्राणवायु में समा गयी है । यह विकास का सप्त आयामी शान्ति का लहर राज्य ही नहीं ! देश और विदेश के झुलसते मानसिकता को शान्त करने की एक गंगा प्रवाह का परिचायक है ।

जिस तरह कृष्ण के जन्म के साथ, ऋषियों ने भी गोपियों के रूप में जन्म ले, आस्था और प्रेम का आकाशगंगा तैयार किया । जैसाकि शास्त्रों में वर्णित है । उसी तरह जब प्रदेशों से सप्त आयामी विकास क्रान्ति की लहर उठी है,

तो देश में ऋषिसम्मत अष्टाँग योग से कई महात्मा स्वास्थ थेरापी (थपकी) एवं आर्ट आफ लिभिंग के परिवेश में कई संत ने प्रेम थेरापी (थपकी) का संदेश जन-जन में बिखेरने का अथक प्रयास ही नहीं किया! बल्कि स्वाँस विज्ञान और प्रेम विज्ञान को जन-जन की प्राण ऊर्जा तक पहुँचाने के प्रयास में सफलता पायी है ।

आज इन्हीं विखरे पुष्प कमल को एक धागे में पिरोकर पुष्पमाल्य तैयार करने की श्रेणी में- ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी भाग-प्रथम एवं ''कुण्डलिनी जागरण आधार है प्राणशक्ति एवं सम्मोहन भाग-द्वितीय एवं कुण्डलिनी जागरण उपहार है दिब्य भावदशा भाग तृतीय को, काम थपकी (थेरापी) के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

इस काम थपकी (थेरापी) से तो पूरा देश, राज्य क्या ? पूरा ब्रह्माण्ड ही मैथुनी जगत का रूप लेकर, पूरे जगत में प्राण संचरण कर रही है । इनसे वंचित किसी देवता का स्वरूप भी सामने दिखलाई नहीं देता ।

न सृष्टि संचालन की ही कोई भी व्यवस्था, वगैर काम-कामेश्वरी की प्राण ऊर्जा से, काम ऊर्जा में संचरण के वगैर सम्भव है !

हमारे शंकर भी कामदेव को तीसरे नेत्र से भष्म करते दिखलाये गये हैं। लेकिन उन्हें भी पूरा शिव परिवार पार्वती, क्रार्तिकेय, गणेश, नन्दी के साथ व्याघ्रचर्म पर हिमालय में पारीवारिक परिवेश में दिखलाया गया है । तो फिर कामदेव का दहन कैसा !

वह तो वासनात्मक एवं पिचाशात्मक प्रवृतियों के दहन की रूपरेखा दिखलाई गयी है । जो प्रत्येक मानवजाती के प्रवृत का चित्रण है । व्याघ्रचर्म भी तो हिंसा से ही प्राप्त होती है, जो दूष्टता को समाप्त करके ही प्राणीमात्र के पालनकर्त्ता का स्वरूप शंकर लिए हुए है ।

खुले जटा से गंगा प्रवाह को एवं ललाट पर त्रिपुण्ड चन्दन के लेप को दिखलाया गया है । जो कुण्डलिनी जागरण के गंगा-प्रवाह के स्वरूप, प्रत्येक साधक में सिर के बाल- जटा-जुट के खड़े हो जाने की तरह एवं मस्तक पर नाभिकुण्ड की साधना से निकलते-निकलते त्रिपुण्ड चन्दन की तरह, सूर्य के बिखराव के स्वरूप में ललार पर दृष्टिगोचर होता है । जैसे प्रकृति ने गंगा प्रवाह सम्हालने की शंकर की तरह एवं त्रिपुण्ड भस्म के लेप की तरह साधक को आशीर्वाद देकर स्वयं शंकर बना दिया हो !

लेकिन जब हम कुण्डलिनी साधना से अपने चक्रों का भेदन कर चक्रों को जागृत कर पाते हैं; तो यह प्राण ऊर्जा का क्षेत्र होता है और जो अनन्त गामी है । हमारी चित्शक्ति और मनःशक्ति पर आत्मनियंत्रण हो जाता है और हम अपने मालिक ही नहीं! बल्कि जगत के मालिक होकर जगतकर्त्ता का रूप पकड़ने लगते हैं ।

हमारे सपने और कल्पना साकार होने लगते हैं । विष्णु के योगनिद्रा में योगमाया सृष्टि की तरह, हमारा स्वप्न और कल्पना भी नियन्ता की श्रेणी में चला आता है । हमारी वाणी भी पश्यन्ति और परा वाणी का प्रवाह रूप पकड़, परम सत्य से उद्भाषित होता रहता है । हमारे इस स्थूल शरीर के बैखरी वाणी में निकला प्रत्येक शब्द, अनन्त के प्राण ऊर्जा के संचरण से आती है और आशिर्वाद स्वरूप में दया, प्रेम, करूणा, मैत्री, मुदिता का निर्झर झरना, भावप्रवाह में भी आता रहता है । प्रकृति भी अनहोनी को होनी स्वरूप में प्रगट कर पाती है ।

हमारे देवताओं, ऋषि-मुनि, हमारे अवतार स्वरूपा ईश्वरीय संदेश देने

वाले महामना, इसी श्रेणी में आते हैं । इसलिए जबतक हम स्थूल शरीर के भौतिक दुनिया से जुड़े अपने प्रवृति के चक्रवाती संस्कार में हैं, कहाँ भागकर जा सकते हैं !

ऊर्जा का बिनष्टिकरण तो है नहीं ! हम इन काम, क्रोध, लोभ, मोह के ऊर्जा का रूपान्तरण- प्रेम, आस्था, विश्वास, करूणा, मैत्री, मुदिता की अवस्था प्राप्त करने के लिए कर सकते हैं !

लेकिन रास्ता एक ही है ''कुण्डलिनी जागरण'' ! हम अपने मन से लड़ नहीं सकते ! लड़ने का मतलब है, कि इन भावनाओं के रूपान्तरीत अतिरिक्त ऊर्जा का गाँठ, हमारे कर्मबंधन पर पड़ना ! दूष्परिणाम स्वरूप हमें रोग, संताप, दुख, नर्क का भोग भोगना पड़ेगा !

तो क्यों नहीं हम काम, क्रोध, लोभ, मोह के चक्रवाती ऊर्जा को, अपने आत्मिक आकर्षण केन्द्र में रूपान्तरित कर प्रेम, आस्था, विश्वास, करूणा, मैत्री एवं मुदिता की कुण्डलिनी जागरण कि स्थिति में प्राणक्षेत्र के अनन्तगामी ऊर्जा में प्रवेश कर आनन्दावस्था प्राप्त करें !

जिसका सारा आधारभूत साधन, प्रकृति ने हमारे दाम्पत्यमय प्रेम और आस्था से सरावोर, गृहस्थ जीवन में परिक्षेपित एवं परिलेखित किया है । ईश्वरीय, शिव और शक्ति रूप के परिवेश में लाखों योनियों के चक्रवात से स्वर्ग-नर्क के अग्नि में तप कर निकलने पर, इस मानव जीवन को दिया है ।

हम प्रतीकात्मक शंकर के गृहस्थ जीवन के स्वरूप में अपने मूलभूत स्वरूप को शिव और शक्ति के रूप में देख रहे हैं ।

प्रतीकात्मक विष्णु को भी-काम, क्रोध, लोभ, मोह स्वरूपा-शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए शेषनाग के सर्पसैया पर सोये अध्यात्मिक संगिनी, पत्नी स्वरूपा लक्ष्मी के प्रेममय चरणस्पर्श में आनन्दमय परमानन्द के स्वरूप, में हम अपने ही प्रेम, प्रार्थना, करूणा, मैत्री, मुदिता के नैसर्गिक अवस्था को देख रहे हैं ।

कोई भी नैसर्गिक देवी-देवता, पवित्र बस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित दिव्य-भावदशा में स्वर्णिम आभामंडल का ओरामंडल लिये मुदिता की अवस्था में दिखलाये गये हैं ।

वह हमारे दामपत्य जीवन के सृजनात्मक एवं आकर्षणात्मक

स्वरूप के नैसर्गिक स्वरूप का ही दिव्यस्वरूपा चित्रण है । जो हमारी इस स्थूल जगत की सांसारिक व्यवस्था में, हमें वैभवयुक्त; पति-पत्नी, बच्चे, कार, बंगला, बस्त्र, आभूषण एवं संस्कारयुक्त सामाजिक परिवेश में तृप्ति की भावदशा में है ।

हमें कमलवत् पानी में रहकर भी पानी से विलग स्वरूपा अपने उपादानो के उपयोगिता के फलस्वरूप भी- थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि तक के जन्म-जन्मान्तर के चक्रवात से मुक्ति के उपाय में, यह कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी भाग-प्रथम एवं कुण्डलिनी जागरण आधार है प्राणशक्ति एवं सम्मोहन भाग-द्वितीय एवं कुण्डलिनी जागरण उपहार है दिब्य भावदशा भाग-तृतीय,

मैंने अपने अनुभव अध्ययन-मनन एवं व्यवहारीक प्रयोगात्मक स्वरूप में, आप साधक पाठक के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

भोगवाद से तृप्त होकर अपने सारे कर्मबंधन को तोड़ते हुए, परमानन्द हो जाने के व्याख्या में प्रस्तुत किया गया है ।

यह तप तो ऋषि, मुनि एवं साधु, अवधूत के लिए अति दुष्कर ही नहीं बल्कि असम्भव भी है ।

लेकिन हम अपने साधु प्रवृत एवं संत स्वभाव में, दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग बनाते हुए, इस गरिमामय स्वर्गगंगा स्वरूपा कुण्डलिनी जागरण की साधना कर परमगति प्राप्त कर सकते हैं ।

अपने श्वसन विज्ञान के संस्कारयुक्त साधना के आधार पर राष्ट्र को ही नहीं, पूरे विश्व को वैज्ञानिक, तत्ववेत्ता, ऋषि, मनिषी, संत, राजनेता के सारगर्भित जन्म स्वरूप में उपहार दे, विनाश के कगार पर खड़ी मानवजाति को शान्ति के, स्वर्गीय गंगा प्रवाह से शीतल कर सकते हैं ।

आत्म निवेदक

ध्रुव

सुधिजन !

आरोग्य भारती, जयपुर के आत्मनिष्ठ प्राणीप साधक, परमपूज्य गुरुदेव सुशील बैद्य की प्रेरणा एव मेरे अनुभव , अध्ययब एवं मनन से लिखे गये इस पुस्तक में , कुण्डलिनी जागरण द्वारा हम नैतिकता प्रधान गृहस्थ भी , किस तरह साधना कर इहलोक और परलोक सुधारते हुए, दिव्यज्योतिर्मय आत्मप्रकाश जलाकर, गौतम, महावीर जिसेस, मुहम्मद, रजनीश जैसे आत्मावा पुरुष के सतज् कम्पन्न में आकर; इस साधना से थलचर जलचर, नभचर एवं मनोमय शरीर से ऊपर जाने प मनुष्य योनि से भी मुक्त होकर देवता एवं ऋषि के श्रेणी में अपने आप को ला पायें; कुण्डलिनी जागरण, प्राणशक्ति एवं सम्मोहन का प्रायोगिक रूप अपने में समाहित कर पायें, इसका व्यवहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आशा है! आप सचरित्र एवं कर्त्तव्यनिष्ठ साधकगण इससे अपनी साधना को उच्चतर स्तर देकर आत्मनिष्ठ की श्रेणी में आकर ,हमें श्रद्धा पुष्प बरसाने का मौका देगें।

ध्रुव

कुण्डलिनी जागरण
द्वार है गृहस्थी
भाग-प्रथम
थलचर जलचर से मुक्ति के
नभचर मनुष्ययोनि सहज उपाय
साधना